भिखारीदास

(ग्रंथावली)

द्वितीय खंड

(काव्यनिर्णय)

संपादक

विश्वनाथप्रसाद मिश्र
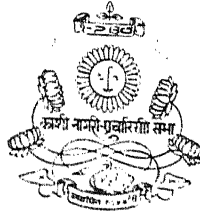
नागरीप्रचारणी सभा, काशी ।

प्रथम संस्करण : १००० प्रतियाँ

संवत् : २०१४

मूल्य : ७॥)

मुद्रक—मायापति प्रेस, काशी ।

माला का परिचय

नागरीप्रचारिणी सभा ने अपनी हीरक-जयंती के अवसर पर जिन भिन्न-भिन्न साहित्यिक अनुष्ठानों का श्रीगणेश करना निश्चित किया था उनमें से एक कार्य हिंदी के आकर-ग्रंथों के सुसंपादित संस्करणों की पुस्तकमाला प्रकाशित करना भी था। जयंतियों अथवा बड़े-बड़े आयोजनों पर एकमात्र उत्सव आदि न कर स्थायी महत्त्व के ऐसे रचनात्मक कार्य करना सभा की परंपरा रही है जिनसे भाषा और साहित्य की ठोस सेवा हो। इसी दृष्टि से सभा ने हीरक-जयंती के पूर्व एक योजना बनाकर विभिन्न राज्य सरकारों और केंद्रीय सरकार के पास भेजी थी। इस योजना में सभा की वर्तमान विभिन्न प्रवृत्तियों को संपुष्ट करने के अतिरिक्त कतिपय नवीन कार्यों की रूपरेखा देकर आर्थिक संरक्षण के लिए सरकारों से आग्रह किया गया था जिनमें से केंद्रीय सरकार ने हिंदी-शब्दसागर के संशोधन-परिवर्धन तथा आकर-ग्रंथों की एक माला के प्रकाशन में विशेष रुचि दिखलाई और ६-३-५४ को सभा की हीरक-जयंती का उद्घाटन करते हुए राष्ट्रपति देशरत्न डा० राजेंद्रप्रसादजी ने घोषित किया—'मैं आपके निश्चयों का, विशेष कर इन दो (शब्दसागर-संशोधन तथा आकर-ग्रंथमाला) का स्वागत करता हूँ। भारत सरकार की ओर से शब्दसागर का नया संस्करण तैयार करने के सहायतार्थ एक लाख रुपए की सहायता, जो पाँच वर्षों में, बीस-बीस हजार करके दिए जायँगे, देने का निश्चय हुआ है। इसी तरह से मौलिक प्राचीन ग्रंथों के प्रकाशन के लिए पचीस हजार रुपए भी, पाँच वर्षों में पाँच-पाँच हजार करके, सहायता दी जायगी। मैं आशा करता हूँ कि इस सहायता से आपका काम कुछ सुगम हो जायगा और आप इस काम में अग्रसर होंगे।'

केंद्रीय शिक्षामंत्रालय ने ११-५-५४ को एफ ४-३-५४ एच ४ संख्यक एतत्संबंधी राजाज्ञा निकाली। राजाज्ञा की शर्तों के अनुसार इस माला के लिए संपादक-मंडल का संघटन तथा इसमें प्रकाश्य एक सौ उत्तमोत्तम ग्रंथों का निर्धारण कर लिया गया है। संपादक-मंडल तथा ग्रंथ-सूची की संपुष्टि भी केंद्रीय शिक्षामंत्रालय ने कर दी है। ज्यों ज्यों ग्रंथ तैयार होते चलेंगे, इस माला में प्रकाशित होते रहेंगे। हिंदी के प्राचीन साहित्य को इस प्रकार उच्च स्तर के विद्यार्थियों, शोधकर्ताओं तथा इतर अध्येताओं के लिए सुलभ करके केंद्रीय सरकार ने जो स्तुत्य कार्य किया है उसके लिए वह धन्यवादार्ह है।

संपादन-शैली

संवत् १९८३ की विजयदशमी को अपने गुरुवर्य स्वर्गीय लाला भगवान-दीनजी के आदेशानुसार मैंने भिखारीदास के **काव्यनिर्णय** का संपादन आरंभ किया था। विजयदशमी के दिन कार्य आरंभ करने का हेतु यह था कि **काव्यनिर्णय** की रचना विजयदशमी को हुई थी।* उन दिनों यह एम० ए० कक्षा के पाठ्यक्रम में नियत था। इसका एक संस्करण श्रीमहावीर मालवीय 'वीर' द्वारा संपादित होकर उसी वर्ष प्रकाशित हुआ। पर लालाजी उससे संतुष्ट न थे। भारतजीवन और वेंकटेश्वर प्रेस के संस्करण मिलते थे, पर वे अर्थ करने में पूरी सहायता नहीं कर पाते थे। श्री 'वीर' का संस्करण भी अर्थ की दृष्टि से भरपूर सहायता नहीं करता था। दो उल्लासों का संपादन करके लालाजी से मैंने उस पद्धति की परिपुष्टि करा ली। पर कार्यप्रवाह ऐसा बदला कि मैं संपादन-कार्य आगे न बढ़ा सका। कई वर्षों तक काम रुका रह गया। सं० १९८७ के श्रावण मास में सहसा लालाजी बीमार पड़े और उनका देहावसान हो गया। उनकी शिष्य-मंडली ने प्राचीन ग्रंथों के संपादन का क्रम जारी रखने का निश्चय किया और भिखारीदास, केशवदास, भूषण और पद्माकर के ग्रंथों का संपादन सबसे पहले करने का निश्चय हुआ। पद्माकर के ग्रंथों का संपादन तो मैंने अकेले ही करने का बीड़ा उठाया, पर अन्य कवियों के ग्रंथों का संपादन करने में अन्य मित्रों ने भी सहायता देने का वचन दिया। **भूषण-ग्रंथावली** के संपादन में सर्वश्री रमाकांतजी चौबे, श्रीदेवाचार्य, मोहनवल्लभ पंत और बजरंगबली गुप्त ने योग दिया। दोनों कवियों के ग्रंथ संपादित हुए, प्रकाशित भी कर दिए गए। पद्माकर की ग्रंथावली **पद्माकर-पंचामृत** नाम से प्रकाशित की गई और भूषण की रचना **भूषण-ग्रंथावली** नाम से। केशवदासजी के ग्रंथों के संपादन में श्रीमोहनवल्लभजी पंत ने हाथ बँटाने का निश्चय किया। तदनुसार **रसिकप्रिया** के संपादन का कार्य आरंभ किया गया। पर तीन 'प्रभाव' तक कार्य होने के अनंतर पंतजी को अन्य कार्य-गौरव के कारण उसमें सहयोग करने का अवसर न मिल सका। इसलिए मैंने अपने ही बल-बूते पर उसका संपादन कर डाला। पर उसे छापे कौन। कोई प्रकाशक उसे प्रकाशित करने को प्रस्तुत न

---

* अट्ठारह सै तीनि हो संवत आस्विन मास।
ग्रंथ काव्यनिर्नय रच्यो बिजै-दसैं दिन दास॥ १-४

था। पहले रसिकप्रिया एम० ए० के पाठ्यक्रम में नियत थी। अब वह हट गई थी। इसलिए वह कार्य किया कराया भी पड़ा रह गया। जब काशी में हिंदी साहित्यसंमेलन का अधिवेशन हो रहा था, तब श्रीधीरेंद्रजी वर्मा ने केशव-ग्रंथावली के संपादन की चर्चा चलाई और कुछ दिनों के अनंतर उसके संपादन का भार मुझे सौंपा। वह ग्रंथावली उनके आदेशानुसार मैंने संपादित कर दी, जिसके दो खंड प्रयाग की हिंदुस्तानी अकदमी से प्रकाशित हो चुके हैं। तीसरा और अंतिम भी शीघ्र ही प्रकाशित हो जाएगा।

सं० १९८७ की विजयदशमी को फिर से काव्यनिर्णय के संपादन में हाथ लगाया गया। इस बार श्रीदेवाचार्यजी ने भी हाथ बँटाया। कुछ दूर तक कार्य करने के अनंतर मैंने यह कार्य उन्हें पूर्ण करने के लिए दे दिया। निश्चय हुआ कि इसके जितने संस्करण प्राप्त हैं उनके पाठांतरों की नियोजना के साथ इसका संपादन हो और आवश्यक टिप्पणियाँ अर्थ को खोलने के लिए लगा दी जायँ। आचारीजी ने यह कार्य परिश्रमपूर्वक संपन्न कर दिया। फिर उसके दुहराने का कार्य मैंने आरंभ किया। लगभग एकतिहाई दुहराने के अनंतर काम रुक गया। उसके प्रकाशन की समस्या भी जटिल थी। कोई प्रकाशक यह कार्य करने को प्रस्तुत न था। जब मैंने कुछ अन्य प्राचीन कवियों के ग्रंथों के संपादन में हाथ लगाया और घनआनंद, रसखानि, बोधा, आलम, ग्वाल आदि के ग्रंथों का संपादन आरंभ किया तो भिखारीदासजी की रचनाओं में भी हाथ लगाया। यह कार्य भी पड़ा पड़ा धूल फाँक रहा था। जब आकर-ग्रंथमाला की स्थापना सभा में हुई और मुझे उसका संपादक नियुक्त किया गया तो शीघ्र से शीघ्र प्राचीन ग्रंथों को संपादित करके छपाने की समस्या खड़ी हुई। जिन मित्रों को आकर-ग्रंथमाला की योजना के अंतर्गत प्राचीन ग्रंथों के संपादन का कार्य सौंपा गया है उनसे यथोचित समय के भीतर ग्रंथों को पा सकने में विलंब देख मैंने भिखारीदास की ग्रंथावली स्वयम् ही संपादित करके सबसे पहले प्रकाशित कराने का निश्चय किया। उसके संपादन की सामग्री का विवरण पहले खंड में दिया जा चुका है। यहाँ संपादन-शैली पर विचार प्रसंग-प्राप्त है।

प्राचीन ग्रंथों के संपादन में हस्तलेखों की सामग्री सबसे अधिक काम की होती है। यदि किसी ग्रंथकर्ता के हाथ की लिखी प्रति मिल जाय तो बहुत से झगड़े-बखेड़ों से छुट्टी मिल जाय। कम से कम संपादन में उतना श्रम न करना पड़े जितना करना पड़ता है। वैसी स्थिति में विचार की दूसरी सरणि को

अवकाश मिले और साहित्य के क्षेत्र में बहुत सी बातें निश्चित हो जायँ। मैं बहुत दिनों से प्राचीन ग्रंथों के चक्कर में पड़ा हूँ। मुझे सहस्रावधि हस्तलेखों के देखने का अवसर प्राप्त हो चुका है। पर बहुत इधर के ग्रंथकारों को छोड़कर किसी कवि के स्वलिखित हस्तलेख प्राप्त नहीं होते। इसका हेतु क्या है। जो स्थिति आज है कुछ कुछ वैसी ही स्थिति उस समय भी थी। आज कोई व्यक्ति अपनी पुस्तक लिखकर प्रेस में छपने के लिए भेज देता है। छप जाने के अनंतर कर्ता की स्वहस्तलिखित प्रति अनावश्यक समझकर फेंक दी जाती है।*

संप्रति मेरे मित्र श्रीमुरारीलालजी केडिया वर्तमान लेखकों की स्वहस्तलिखित प्रति के संग्रह में दत्तचित्त हैं, पर बहुतों की पांडुलिपियाँ नहीं मिलतीं। प्राचीन काल में कवि अपनी स्वहस्तलिखित प्रति उस समय निष्पन्न समझकर परित्यक्त कर देता था जब 'लिखक' उसे सुंदर अक्षरों में लिख देता था। पहले प्रेस नहीं थे, लिखक छापेखाने का-सा कुछ कार्य करते थे। किसी ग्रंथ की प्रतियाँ लिखक लिखते थे। पर उन हस्तलेखों की संख्या परिमित होती थी। एक एक हस्तलेख के प्रस्तुत करने में महीने और वर्ष तक लगते थे। कवि या कर्ता की स्वहस्तलिखित प्रति से अनुलिपि होने पर यह भी संभावना है कि कर्ता उसको देखकर शोध दे। पर ऐसी शोधित प्रतियाँ भी प्राप्त नहीं होतीं। यदि प्राप्त हों भी तो बिना किसी उल्लेख के यह निश्चय करना कठिन है कि कर्ता ने उसका शोधन किया है। हस्तलेख कर्ता के लिए भी लिखे जाते थे और धनी महाजनों या राजाओं के लिए भी।

उस समय के किसी कवि के हृदय में स्वामित्व (कापीराइट) की भावना नहीं थी। वे अपनी रचना के प्रचलित-प्रसरित होने मात्र से संतुष्ट हो जाते थे। कोई धनी या राजा महाराजा किसी रचना से रीझकर उस कवि या कर्ता का उसके जीवनकाल में संमान कर दे तो कर दे, अन्यथा उसके जीवनकाल के अनंतर कोई स्वामित्व (कापीराइट) नहीं रह जाता था। हस्तलेख की अनुलिपियाँ जिनके पास होती थीं वे ही उसके स्वामित्व (कापीराइट) का कुछ लाभ उठा लें तो उठा लें। अन्यथा 'लिखक' को ही उससे आय होती थी। वे दो चार आने सैकड़े (अनुष्टुप्) के भाव से हस्तलेख लिख देते थे। अनुष्टुप् में

* प्रतापसाहि ने संवत् १८९४ में अलंकारचिंतामणि लिखी। उसी वर्ष उनके पठनार्थ उसकी अनुलिपि हो गई—इति श्रीकवीस्वकुलभूषणरतनसाहिसिरोमनि तस्यात्मज प्रतापसाहिविरचितायां अलंकारचिंतामणि अर्थ-शब्दालंकारवर्ननो नाम संपूर्ण प्रकास। मिति श्रावण बदि ४ सुक्रे संवत १८९४ लिपितं प्रतापसाहिपठनार्थं चिरंजीव बिहारीलाल पारीक्षतेन श्रीरामो जयति (खोज, ०६-९१ ई)।

बत्तीस अक्षर होते हैं। किसी रचना के अक्षरों की गिनती करके और ३२ अक्षरों का भाग देकर अनुष्टुप् के शतकों का निश्चय कर लिया जाता था। ये 'लिखक' सुंदर अक्षर तो अवश्य लिख सकते थे पर किसी रचना का अर्थ करने में समर्थ नहीं होते थे। मक्षिकास्थाने मक्षिका लिख देते थे। अंत में प्रायः लिख दिया करते थे कि 'यादृशं पुस्तकं दृष्टं तादृशं लिखितं मया। शुद्धं स्यादशुद्ध स्यान्मम दोषो न दीयताम्' आदि आदि।

हस्तलेख में चलनेवाली लिपियाँ प्रदेशभेद से भिन्न-भिन्न होती थीं। एक लिपि से दूसरी में उतारने में यदि मूल लिपि का कोई अक्षर ठीक न समझा गया तो भी शब्द का रूप बदल जाता था। किसी-किसी लिपि में मात्राओं की व्यवस्था नागरी की भाँति पूर्ण न होने से कठिनाई पड़ती थी। कैथी लिपि में दीर्घ इकार ही होता है, ह्रस्व उकार ही होता है। इस कारण यदि कैथी में अनुलिपि की गई तो फिर उस प्रति से अनुलिपि करने में भ्रम होने की संभावना रहती थी। कैथी से यदि नागरी में अनुलिपि हो तो शब्दों का वर्ण-विन्यास बदल जाने की संभावना रहती है। परिणाम यह होता था कि पाठांतर हो जाते थे। कई अक्षरों के रूपों में समानता होने से यदि एक अक्षर कुछ का कुछ पढ़ लिया गया तो पाठांतर हो जाता था। इसका विस्तार से विचार स्वयम् स्वच्छंद विषय है। उसकी बहुत अधिक सामग्री मैंने एकत्र की है। यदि अवसर मिला तो इस विषय पर स्वतंत्र पुस्तक कभी प्रस्तुत की जाएगी।

यहाँ जो कुछ कहा गया उससे यह निश्चय है कि लिखक के प्रमाद से मूल पाठ में अंतर पड़ जाया करता था। फिर उसकी परंपरा चलती थी। प्रदेशभेद से शब्दों के उच्चारण में भी अंतर होता था। इसलिए यदि मूल पाठ में कोई विशेष मात्रा होती थी तो वह इस देशभेद के कारण भी बदल जाती थी। किसी शब्द को ठीक से न समझने पर और लिखते समय अपने प्रदेश के संस्कारवश व्यक्तिगत ज्ञान-सीमा के कारण शब्दों में जाने-अनजाने परिवर्तन कर बैठना भी सहज था। इसका एकाध उदाहरण लीजिए। भिखारीदास से इसे न आरंभ करके तुलसीदास से आरंभ करता हूँ।

तुलसीदास के **मानस** का पाठ-शोधन करते समय कई ऐसी बातें सामने आई हैं जिनसे पाठ-शोध के क्षेत्र में विशेष ज्ञानवर्धन की संभावना है। नागरी के प्राचीन हस्तलेखों में ब और व अक्षर में भेद करने का नियम दूसरा था। ब के लिए व ही लिखते थे। पर व के लिए नीचे बिंदी लगाकर व़ लिखा करते थे। ऐसा भी होता था कि कभी-कभी व के नीचे बिंदी न भी लगे। ऊपर या नीचे बिंदी लगाने की लिखकों की विधि भी निराली थी। कोई-कोई तो पंक्ति के ऊपर

के बिंदुओं को गिनकर मनमाने स्थानों पर लगा देते थे। बहुत से छोड़ देते थे। यही स्थिति नीचे बिंदु लगाने की थी। पहले बिंदु और चंद्रबिंदु दोनों का प्रचलन था। संत-फकीरों की रचना के हस्तलेखों में अधिकतर बिंदु ही मिलते हैं पर साहित्यिक या सुपठित कवियों की सावधान लिखकों की लिखी प्रतियों में अधिकतर चंद्रबिंदु। व अक्षर दो प्रकार का होता है—एक तो वास्तविक और दूसरे श्रुतिमात्र। प्राचीन काल में बहुत से प्रदेशों में स्वर के साथ व श्रुति बहुत्र थी। इसके अवशेष हस्तलेखों में बहुधा मिलते हैं। 'ओर' का 'वोर' प्रायः मिलता है। व श्रुति के कारण यदि शब्द का रूप अपरिचित हो जाए तो लेखक कभी-कभी कुछ का कुछ लिख देता था या शोधन कर देता था। **मानस** के प्रथम सोपान (बालकांड) में एक अर्धाली प्राचीन हस्तलेखों में यों है—

कासी मग सुरसरि कविनासा। मरु मारव गहिदेव गवासा।

यहाँ कर्मनासा के लिए 'कविनासा' शब्द है। बाद के हस्तलेखों में यह 'क्रमनासा' हो गया है। 'कविनासा' में व श्रुतिमात्र है। उसका उच्चारण संप्रति 'कइनासा' होगा। यह 'कइनासा' 'कृतिनाशा' का प्राकृत रूप है। जो 'कर्मनाशा' का अर्थ वही 'कृतिनाशा' का अर्थ। इसे न समझने से 'कविनासा' का रूप 'क्रमनासा' हो गया। व श्रुति को ब समझने से 'कबिनासा' रूप भी हो गया। ऐसी ही स्थिति जायसी की इस चौपाई में भी है—

कोन्हेसि तेहि पिरीत कविलासू।

यहाँ भी व श्रुतिमात्र है। 'कविलासू' का संप्रति उच्चारण 'कइलासू' होगा। इसलिए इस 'कविलासू' का अर्थ 'कबिलासू' (कवि का लास) नहीं किया जा सकता।

कवि भी पाठांतर करते थे। इसके प्रमाण मिलते हैं। यदि किसी कवि का एक ही छंद भिन्न-भिन्न ग्रंथों या भिन्न भिन्न प्रसंगों में आता था तो ग्रंथ या प्रसंग के अनुरोध से उसमें पाठांतर कर दिया जाता था। कवि अपने एक ही छंद को विभिन्न नरेशों की प्रशस्ति में प्रयुक्त करता तो उसमें पाठभेद हो जाता था। केशवदासजी का एक ही छंद **रसिकप्रिया, कविप्रिया, रामचंद्र-चंद्रिका, वीरचरित्र, विज्ञानगीता** और **जहाँगीरजसचंद्रिका** में भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के लिए या वर्णनों में पाठभेद से प्रयुक्त है। देव कवि के **कुशल-विलास, भवानीविलास, भावविलास** में विषय की समानता है और भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के लिए उसका नियोजन है, इसलिए उनमें पाठभेद होने की संभावना कवि द्वारा ही है। पद्माकर ने एक ही रचना को आलीजाप्रकाश और जगद्विनोद दो नामों से प्रचारित किया है। पहले वही रचना ग्वालियर

के आलीजा के लिए बनी, फिर जयपुर के जगतसिंह के नाम पर कर दी गई। इसलिए उसमें यत्रतत्र पाठभेद कवि द्वारा होना संभव है। कवि पाठभेद करते थे। पर लिखित प्रमाणों के न मिलने पर निश्चय करने में कठिनाई होती है। इसलिए यदि किसी कवि का एक ही छंद भिन्न भिन्न ग्रंथों या भिन्न भिन्न प्रसंगों में आए तो हस्तलेखों के आधार पर ही उनके पाठ का रूप होना चाहिए। उसमें सब ग्रंथों के रूपों से परिवर्तन न करना चाहिए। **केशव-ग्रंथावली** और **भिखारीदास-ग्रंथावली** का संपादन करने में हस्तलेखों की परंपरा पर ही ध्यान दिया गया है। किसी छंद के पाठभेद को एक सा करने का प्रयास नहीं किया गया। इसलिए यदि किसी एक छंद का पाठ एक ग्रंथ या प्रसंग में दूसरा और दूसरे ग्रंथ या प्रसंग में दूसरा हो तो समझ लेना चाहिए कि वह विभिन्न ग्रंथों के हस्तलेखों की परंपरा के कारण है।

जहाँ तक 'लिखक' का पक्ष है वे जानबूझकर पाठांतर नहीं करते थे। कभी कभी कोई बोलता जाता था और लिखक लिखता था। सुनने के प्रमाद से भी कुछ का कुछ लिख जाता था। अनेक हस्तलेखों के देखने से, जैसा पहले कहा जा चुका है, शाखाभेद दिखाई पड़ता है। यह शाखाभेद केवल 'लिखक' के प्रमाद से ही हो ऐसा नहीं जान पड़ता। इसलिए यह मानना पड़ता है कि हस्तलेखों का संपादन या शोधन भी होता था। जैसा कि पहले कह आए हैं किसी ग्रंथ की मूल प्रति के शोधन का प्रथम प्रयास उसके कर्ता-निर्माता के ही द्वारा होता था। पर उसके प्रमाण अनुमानाश्रित हैं। जिन प्रतियों के संबंध में यह जनश्रुति है कि उसे कर्ता ने शोधा उनकी छानबीन सत्य के विरुद्ध ही साखी भरती है। **मानस** की कई प्राचीन प्रतियों के संबंध में ऐसा प्रवाद है, पर जाँच से उनमें सत्यता नहीं मिली।

प्राचीन काव्यों का शोधन या संपादन अनुलिपि के समय भी होता था। दरबारों में जब कोई ग्रंथ पहुँचता था तो उस दरबार के प्रमुख राजकवि उसे देखते थे और उसका शोधन करते थे। जो शब्द उनकी समझ में नहीं आते थे उन्हें कभी कभी बदल देते या भावार्थवाची शब्द रख देते थे। प्राचीन ग्रंथों में से कई की टीकाएँ हुई हैं। टीकाकार भी बड़े बड़े विद्वान् या मर्मज्ञ रहे हैं। उनके स्वीकृत पाठों से यह स्पष्ट होता है कि उन्होंने शब्द को अपने ढंग से समझने और उसका रूप बदलने का प्रयास किया है। ये जहाँ पाठांतर करते थे वहाँ बहुत से परंपराप्राप्त शब्दों का ठीक रूप और अर्थ भी देते थे। जो भी हो, संप्रति प्राचीन ग्रंथों का फिर से संपादन हो रहा है उनके संपादकों को यह

भी ध्यान में रखना चाहिए कि ग्रंथों के संपादन के प्राचीन प्रयत्न भी हैं। वे वैज्ञानिक भले ही न कहे जायँ पर प्रयत्न पहले भी हुए हैं। परंपरा की गतिविधि और अनपेक्षित साहित्यप्रवाह के निराकरण के लिए सभाएँ तक होती रही हैं। सूरति मिश्र के प्रयास से आगरे में तत्सामयिक प्रमुख कवियों का एक समारोह हुआ था जिसमें हिंदी काव्यशास्त्र की परंपरा में प्राचीन के त्याग और नवीन के संग्रह का विचार किया गया था। अन्य चर्चाओं से यहाँ प्रयोजन नहीं। भिखारीदास के ही ग्रंथों के शोधन का विचार कीजिए। काशिराज के पुस्तकालय में भिखारीदास के चारों साहित्यिक ग्रंथ एक ही जिल्द में संगृहीत किए गए हैं और छंदार्णव के छंदों का प्रस्तार छंदप्रकाश के नाम से जोड़कर उसे समझाने का प्रयास किया गया है। काशिराज के किसी दरबारी कविराज ने इसे अवश्य देखा है। छंदार्णव में तो निश्चय ही संपादन किया गया है। पाठांतरों के देखने से स्थिति स्पष्ट हो जाएगी।

जब प्राचीन ग्रंथ छापे में छपने लगे तो फिर उनका शोधन-संपादन हुआ। संपादन-सामग्री में छंदार्णव के शोधनेवाले दुर्गादत्तजी का उल्लेख हो चुका है। यह उस समय की चर्चा है जब प्रस्तरछाप का चलन था। मुद्रण का प्रसार होने पर बंगवासी, भारतजीवन, नवलकिशोर, वेंकटेश्वर आदि अनेक प्रेसों में भी शोधन थोड़ा-बहुत होता था। फिर पढ़ाई-लिखाई के विचार से लाला भगवानदीन, पं० रामचंद्र शुक्ल आदि के प्रयत्न सामने आए। अब शोध की दृष्टि प्रधान होने पर वैज्ञानिक संस्करणों की ओर ध्यान गया है।

इन सबकी मीमांसा या छानबीन करने से यह निष्कर्ष निकलता है कि पहले शोधन-संपादन में अर्थ की दृष्टि प्रधान रहती थी और वैज्ञानिक शोध में शब्द की दृष्टि प्रधान है। वैज्ञानिक संपादन इस प्रयत्न में अधिक रहता है कि कवि-प्रयुक्त शब्द और उसके रूप तक पहुँचा जाए। उसमें अर्थ का विचार त्याग ही दिया जाय सो बात नहीं है। सोचा यह जाता है कि आज जिस शब्द को हम पहचान नहीं पाते हैं वह पहले प्रचलित रहा होगा। अनुसंधान बतलाता है कि कई शब्द न समझने के कारण बदल दिए जाते हैं। मानस की एक चौपाई संप्रति यों प्रचलित है—

केहि न सुसंग बड़प्पन पावा।

पर पुराने हस्तलेखों में इसका रूप यों है—

केहि न सुसंग बडत्तनु पावा।

जिस समय 'बडत्तन' प्रचलित था तुलसीदास उस समय के निकट पड़ते

हैं। 'बड़प्पन' बाद में चला, उसी अर्थ में और पाठ का रूप बदल गया। यहाँ अर्थांतर नहीं है, पर रूपांतर अवश्य है। 'तण' या 'तन' का प्रयोग अपभ्रंश में बहुत है और राजस्थानी में सुरक्षित है। पर उत्तरवर्ती हिंदी में परित्यक्त हो गया। **मानस** की दूसरी चौपाई में यही स्थिति है, पर उस पर ध्यान अभी तक नहीं दिया गया। तरह तरह से अर्थ की गति संबैठाई जाती है—

प्रभु तन चितै प्रेमतन ठाना।

यह **प्रेमतन** बड़त्तन का ही भाई-बंधु है। आगे इसका पाठ **प्रेमपन** कर दिया गया। जिन्होंने **प्रेमतन** को सकारा उन्होंने **प्रेम तन** ऐसा पृथक् रूप मानकर 'तन में प्रेम ठाना' अर्थ किया। इस प्रकार प्राचीन पाठों के वैज्ञानिक अनुसंधान से लाभ है। भाषा के ऐतिहासिक अध्ययन और परंपरा के प्रवाह को जानने में अच्छी सहायता मिलती है। पर गुणदोष सर्वत्र होते हैं। इस प्रणाली में दोष भी है। यदि कोई पुराने रूप या पाठ का आग्रह करके उसी को ठीक मान ले तो फिर परंपरा-प्रवाह के विरुद्ध भी अर्थसंपत्ति उसे खोजनी पड़ती है।

हस्तलेखों के आधार पर पूरी छानबीन के साथ प्राचीन ग्रंथों के संपादन का कार्य हिंदी में होने का अभी आरंभ ही है। श्रीसुकटनकर ने संस्कृत में जैसा कार्य किया और उस कार्य में उन्हें जो उपलब्धि हुई उसे जिस रूप में उन्होंने लिपिबद्ध किया वैसा अभी कोई प्रयास हिंदी में नहीं हुआ है। हिंदी के हस्तलेखों में कई समस्याएँ संस्कृत के हस्तलेखों से भिन्न हैं। संस्कृत में अधिकतर वर्णवृत्तों का व्यवहार होता है। हिंदी के प्राचीन हस्तलेखों में वर्णवृत्त सवैये और कवित्त ही विशेष मिलेंगे। अधिकतर मात्रावृत्त ही हिंदी में चलते हैं। इसलिए पाठसंकलन में ग्राफपद्धति हिंदी में ज्यों की त्यों नहीं चल सकती। संस्कृत में शब्दों की वर्तनी में अंतर नाम मात्र का होता है। हिंदी में बहुत अंतर हुआ करता है। पाठसंकलन में वर्तनी का संकलन किया जाए तो पाटांतर ग्रंथ से भी अधिक हो जाए। इसलिए आरंभ में वर्तनी का एकाध उदाहरण देने के अनंतर उसे छोड़ देना ही अभी श्रेयस्कर है। यदि किसी विशेष प्रकार की वर्तनी के कारण अर्थांतर होता हो तो उसे अवश्य पठांतर में संमिलित कर लेना चाहिए। इसलिए पाठ-संकलन में (वर्तनी के कारण होनेवाले) रूपांतर के बदले शब्दांतर और अर्थांतर पर ही विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

संस्कृत के प्राचीन हस्तलेखों के संपादन में इस पर ध्यान अभी नहीं दिया गया कि हस्तलेख में संशोधन भी हुए हैं। मूल पाठ पर हरताल लगाकर या बिना हरताल लगाए काटकर या छेंककर दूसरा पाठ पार्श्व पर, ऊपर या

नीचे मूलपाठ-लिखक से भिन्न किसी दूसरे लिखक अथवा शोधक ने संशोधित पाठ दे रखा है। संस्कृत के हस्तलेखों में एक तो ऐसी समस्या कम है, दूसरे बहुत प्राचीन ग्रंथों के संपादन में मूल पाठ और शोधित पाठ का माहात्म्य तभी है जब अन्य हस्तलेखों में वैसा मिले। हिंदी में मूल पाठ और शोधित पाठ से अनेक प्रकार के रहस्यों का उद्घाटन होने की संभावना है। इसलिए दोनों का सकलन अपेक्षित है। हिंदी में **मानस** के संबंध में तो यत्र तत्र प्राचीन हस्तलेखों के प्रसंग में द्विविध पाठों की चर्चा की गई है पर अन्य ग्रंथों के प्राचीन हस्तलेखों के संबंध में प्रायः उपेक्षा ही होती रही है। कहीं मूल पाठ संगृहीत कर लिया गया है और कहीं शोधित। **मानस** के उन संस्करणों में भी यह छूट हो गई है जिनमें यत्र तत्र शोधित पाठ की चर्चा है। इस पर ध्यान न देने से **मानस** की उल्लिखित प्रतियों में पाठ यों स्वीकृत हुआ है—

बायस पलिअहिं अति अनुरागा।
होहिं निरामिष कबहुँ कि कागा॥

प्राचीन हस्तलेखों में मूल पाठ 'पायस' है। 'बायस' शोधित है। 'पायस' को चाहे 'बायस' आगे चलकर स्वयम् तुलसीदास ने ही कर दिया हो पर 'पायस' पाठ ही पहले था यह हस्तलेखों के मूल पाठ के साक्ष्य पर कहा जा सकता है।

भिखारीदास-ग्रंथावली के पाठों का संग्रह जिन प्रतियों से किया गया है उनमें संशोधित पाठ कम स्थानों पर है। फिर भी यथास्थान उसका संग्रह किया गया है। अपेक्षित चिह्न (+) भी उसके साथ लगाया गया है। इस ग्रंथा-वली में पाठसंग्रह की पद्धति यह है कि मूल स्वीकृत पाठ का संकेत देकर तद्भिन्न पाठ पादटिप्पणी में दिया गया है। छंदसंख्या का उल्लेख करके क्रमशः पाठों का संकेत किया गया है। छोटे कोष्ठक में प्रतियों के नाम के संकेत दिए गए हैं। यदि पूर्वगामी हस्तलेख वही या वे ही हैं तो 'वही' लिखा गया है। यह सब ग्रंथ में यथास्थान देखा जा सकता है अपने सहकर्मी बंधुओं से दो स्थितियों में मतभेद होने के कारण उनका ग्रहण नहीं किया गया है। एक है मूल में अंक लगाकर नीचे पाठ देना। इससे पाठांतर कुछ संक्षेप में संकलित हो सकता है। पर एक तो केवल मूल पाठ से सरोकार रखनेवाले के नेत्र-मस्तिष्क को बारंबार ठोकर लगती है, दूसरे यदि अंक टूटा या इधर-उधर हुआ तो पाठ से सरोकार रखनेवालों को भी परेशानी होती है। प्रतियों को '१,२,३' अंकों से या 'क, ख, ग' अक्षरों से संकेतित करने के बदले उनका

संक्षिप्त नाम रखना कहीं अच्छा लगा। इसमें इधर-उधर होने से, टूटने-फूटने से भी भ्रांति कम होने की संभावना है। नाम रखने में सबसे प्रथम उस हस्तलेख के लिखक के नाम को संक्षिप्त किया गया है। लिखक का नाम जहाँ नहीं है वहाँ संस्था या उसके स्वामी के नाम या उपाधि का संक्षेप किया गया है। मुद्रित ग्रंथों में मुद्रण करनेवाले छापेखानों के नाम संक्षिप्त किए गए हैं। प्रस्तरछाप के लिए 'लीथो' ही नाम रख लिया गया है, छापेखाने का नाम नहीं रखा गया है। यदि दो लीथो की प्रतियाँ रही हैं तो एक में लीथो नाम दूसरी में छापेखाने का संक्षिप्त नाम रखा गया है, इति दिक्।

मूल पाठ की स्वीकृति में सबसे प्राचीन प्रति या प्रतियों के पाठों को अग्रयता दी गई है। वहीं उन पाठों को अस्वीकृत किया गया है जहाँ लिखक-प्रमाद की संभावना है अथवा अर्थ की संगति प्रसंगानुकूल किसी प्रकार नहीं बैठती। कभी कभी तो सब पाठ त्याग कर अपना कल्पित पाठ भी (प्रतियों का पाठ किसी प्रकार प्रसंगानुकूल न होने पर) रखा गया है। ऐसे स्थान पर या तो सभी प्रतियों के पाठ स्वरूपभेद सहित दिए गए हैं और क्रमशः प्रतियों के नामों का उल्लेख कोष्ठक में कर दिया गया है या स्वरूपभेद न होने पर कोष्ठक में 'सर्वत्र' दिया गया है। उदाहरणार्थ **रससारांश** के आरंभ में ही छठे छंद में 'स्वादवेत्ता' के स्थान पर सभी प्रतियों में 'स्वादवेदता' ही मिलता है। यहाँ 'वेदता' शब्द संज्ञा है, होना चाहिए विशेषण। आगे के 'रसिकजन' में सप्तमी नहीं लगती। इसलिए 'स्वादवेत्ता' ही प्रतियों में 'स्वादवेदता' हो गया होगा, 'स्वादवेत्ता' लिखा गया 'स्वादवेतता' फिर 'स्वादवेदता'।

छंदार्णव से एक साधारण उदाहरण लीजिए। द्वितीय तरंग के प्रथम छंद में दीर्घ स्वरों का उल्लेख करते हुए 'ई ऊ आ ए' के बदले 'आ ई ऊ ए' पाठ मुझे ठीक जँचा। दूसरे चरण में ह्रस्व स्वरों का कम 'अ इ उ' ही सर्वत्र है। इसलिए दीर्घ का भी क्रम वही होना चाहिए। **छंदार्णव** के संपादन में इतना अधिक श्रम करना पड़ा जितना कभी नहीं करना पड़ा था। इसका मुख्य कारण यह है कि उसमें छंदों के लक्षण सांकेतिक शैली से बहुत दिए हुए हैं। उस सांकेतिक शैली को ठीक ठीक न समझने के कारण कुछ का कुछ हो गया है। यद्यपि 'दास' ने लघु गुरु आदि के नाम गिनाते हुए इन सांकेतिक रूपों या नामों का उल्लेख कर दिया है, पर सामान्यतया उस पर दृष्टि नहीं जाती। जैसे गुरु (ऽ) के कई नामों में एक 'हार' है। द्विकल (।।) का नाम 'प्रिय, सुप्रिय, परम प्रिय या पिय' है। आदिलघु त्रिकल या लघुगुरु (।ऽ) के अनेक नामों में से उन्होंने 'धुज' का व्यवहार बहुत किया है। ऐसे ही आदिगुरु त्रिकल या गुरु-

लघु (ऽ।) के लिए 'नंद' का संकेत प्रायः आया है। दो गुरु (ऽऽ) को 'कर्ण' और चार लघु (।।।।) को 'द्विज' या 'विप्र' कहा है। बीस मात्रा के 'दीपकी' छंद का लक्षण किया गया 'द्वै दीपहि दीपकिय कहत कविजन है'। यहाँ 'द्वै दीप' में 'दीप' नामक दस मात्रा के छंद से तात्पर्य है। इस नीरस प्रसंग का अधिक विस्तार करना निष्प्रयोजन है। जिनकी पिंगल में अभिरुचि हो छंदार्णव के किसी संस्करण से इस संस्करण को मिला देखें।

सबसे अधिक समय लिया काव्यनिर्णय के चित्रोत्तर या चित्रालंकार ने। २१वें उल्लास से एक छंद अर्थात् ३२वें का ठीक ठीक अर्थ निकालने में मुझे कई दिनों तक दिवारात्रि मस्तिष्क को एकाग्र करना पड़ा। मेरी घोषणा है कि इसका ठीक अर्थ परंपरा में किसी को नहीं लगा है।

काव्यनिर्णय का मूल पाठ छप जाने के अनंतर मेरे ब्रजभाषाविद् परम मित्र द्वारा संपादित महाकाय काव्यनिर्णय प्रकाशित हुआ। बड़ी आशा से मैंने उसकी ओर हाथ बढ़ाया, पर वीर कवि के वेलवेडियर प्रेस वाले संस्करण में जो अर्थ दिया गया है वही नाममात्र के हेरफेर से वहाँ भी मिला। बहुमूल्य समय इस साधारण से गोरखधंधे में लगाना बेकार है पर मन नहीं मानता, कर्तव्य मानने नहीं देता।

काव्यनिर्णय का वह छंद यहाँ उद्धृत किया जाता है—

को गन सुखद, काहे अंगुली सुलच्छनी है,
देत कहा घन, कैसो बिरही को चंदु है।
जालै क्यों तुकारै, कहा लघु नाम धारै, कहा
नृत्य मैं बिचारै, कहा फाँदो व्याध फंदु है।
कहा दै पचावै फूटे भाजन मैं भात, क्यों
बालावै कुस भ्रातु, कहा बृप बोलु मंदु है।
भू पै कौन भावै, खग-खेलै को नठावै, प्रिया
फेरै कहि कहा, कहा रोगिन को बंदु है॥

'अस्य तिलक' करके 'सर०' में इतना दिया है—'यगन, जव, वल, जवाल, लव, जलवा, वाल, लय, लवा, लवा, लवा, यवा, वाज, वाल, लवाय, वायल'। उक्त कबित्त के उत्तरों को स्पष्ट करने के लिए स्वयम् 'दास' ने आगे एक दोहा ही दिया है—

खचि त्रिकोन यलवाहि लिखि, पढ़ौ अर्थ मिलि ज्यौंहि।
उतरु सर्बतोभद्र यह, बहिरलापिका यौंहि॥

त्रिकोण में 'यलवा' लिखकर इन्हें क्रमशः मिलाकर पढ़ो तो अर्थ मिले। अन्य स्थानों में इसका जो अर्थ किया गया है उसमें 'यलवाहि' में 'हि' को विभक्तिचिह्न न मानकर बहिर्लापिका के उत्तर का एक अक्षर ही समझकर त्रिकोण यों खींचा गया है—
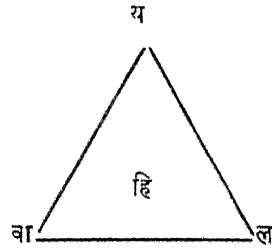
"टि०—कौन समूह सुखदाता है ?=लहि अर्थात् प्राप्ति। अँगरी (कवन) किसकी सुलक्षणी है ?=बाज पक्षी की। मेघ क्या देते हैं ?=जल। विरहा को चंद्रमा कैसा है=जवाल। पाला को कौन नष्ट करता है ?=यहि (सूर्य्य)। लघु नामधारी कौन ?=वाय (पवन) जो दिखाई नहीं देते। नाच में विचारणीय क्या है ?=लय। व्याधा फंदे में किसे फँसाता है ?=लवा पक्षी। फूटे पात्र में क्या देकर भात पकाया जाता है ?=हिल अर्थात् गीला आटा आदि। कुश भाई को किस प्रकार बुलाते थे ?=हिय (प्यारे)। बैल की बोली कहाँ मंद होती है ?=हिवाल अर्थात् अत्यंत शीत से। राजा को क्या सुहाता है ?= बाल (स्त्री नवयौवना)। किस स्थान में पक्षी विहार करते हैं ?=वाहिज अर्थात् शून्य स्थान में। प्यारी क्या कहकर लौटाती है ?=वाहि (उसको)। रोगियों के लिए क्या बंद है ?=जलवाहि अर्थात् स्नान।"—बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग (सन् १६२६)।
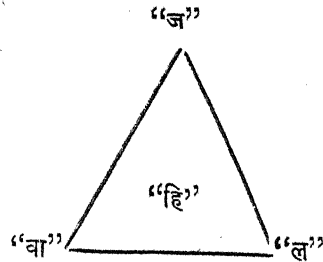
"समूह को सुखदाता कौन,—"लहि"=अर्थ-प्राप्ति, किसकी उँगलियाँ अच्छी हैं—"बाज"=बाज पक्षी की, मेघ क्या देते हैं="जल", विरही को चंद कैसा लगता है—जवाल (सा)=अत्यंत दुखद, तुसार (पाले) को कौन

जलाता—नष्ट करता है,—"जहि" = सूर्य, लघु (छोटा) नाम किसका ?—"वाय (वाहि) = वायु, पवन, हवा का, नृत्य में क्या विचारणीय ? "लय" = धुन-आवाज, फंदे में व्याध किसे फसाते हैं—लवा (पक्षी) को, फूटे पात्र (बर्तन) में क्या लगाकर भात (चावल) पकाते हैं—"हिल" = गीला आटा लगाकर, भाई को कुश (श्रीराम पुत्र) क्या कहकर बुलाते हैं—"हिय" = प्यारे कहकर, बैल की बोली कब बंद होती है—"हिवाल" = शीत के समय, राजा को कौन सुहाता है—वाल (बाल) = बाला, तरुणी-स्त्रियाँ, किस स्थान में पक्षी विहार करते हैं—"वाहिज" = शून्य-एकांत स्थान में, प्रियतमा (स्त्री) पति से क्या कहकर बोलती है—"वाहि" = उनको, रोगियों को क्या बंद है—"जल-वाहि" = स्नान ।" —कल्याणदास ब्रदर्स, वाराणसी (१९५६) ।

दास ने केवल तीन अक्षरों का ही त्रिकोण माना है—
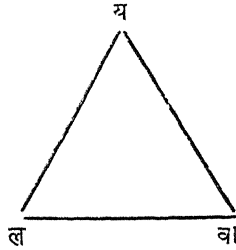
क्रमपूर्वक इसमें पंद्रह प्रश्नों का उत्तर दिया है। इसलिए तीन अक्षरों के त्रिकोण में से प्रत्येक अक्षर से पाँच-पाँच उत्तर होते हैं। उत्तर पर आने के पूर्व यह भी जान लेना चाहिए कि चित्र में 'व ब' का अभेद है और 'य ज' का भी। 'य' अक्षर से उत्तर क्रमशः य, यवा (जवा), यल (जल), यवाल (जवाल), यलवा (जलवा) ये पाँच हुए। 'ल' अक्षर से इसी प्रकार ल, लय, लवा, लयवा (लइवा = लेवा), लवाय (लव + आय)। वा अक्षर से वा (बाँ), वाल (बाल), वाय (बाज), वालय (बालइ = बाले), वायल (बातल = वायुकारक)।

अब प्रश्न और उत्तर को मिलाइए—

१—को गन सुखद = कौन गण (मगण आदि) सुखद है—य (गण)।
२—काहे अंगुली सुलच्छनी है = अंगुली किस (लक्षण) से सुलक्षणी कही जाती है—यवा (जवा) से।
३—देत कहा घन = बादल क्या देता है—यल (जल)।

४—कैसो विरही को चंदु है = चंद्रमा विरही को कैसा (लगता) है—यवाल (जवाल)।

५—जालै क्यों तुकारै = 'जाल' (शब्द) को यदि तुकारें तो क्या कहेंगे—यलवा (जलवा)।

६—कहा लघु नाम धारै = लघु का (छंदशास्त्र या काव्यशास्त्र में क्या नाम धरते हैं (क्या कहते हैं)—ल।

७—कहा नृत्य में विचारै = नृत्य में क्या विचारे—लय।

८—कहा फाँदो ब्याध फंदु है = व्याध (बहेलिये) ने फंदे (जाल) में क्या फाँदा (फँसाया) है—लवा।

९—कहा दै पचावै फूटे भाजन में भात = फूटे पात्र में क्या देकर (लगाकर) भात पकाया जाय—लयवा (लइवा = लेवा)।

१०—क्यों बोलावै कुस भ्रातु = कुश अपने (छोटे) भाई को कैसे बुलाते हैं—लवाय (लव आय = ऐ लव, आ)।

११—कहा बृषबोलु मंदु है = बैल की भद्दी बोली क्या है—वा (वाँ)।

१२—भू पै कौन भावै = पृथ्वी पर कौन भाता (अच्छा लगता है) अथवा राजा को कौन अच्छा लगता है—वाल (बाल)।

१३—खग-खेलै को नठावै = पक्षी के खेल को कौन नष्ट कर देता है—वाय (बाज)।

१४—प्रिया फेरै कहि कहा = प्रिया को क्या कहकर (अपनी ओर) फेरना (लौटाना) चाहिए—वालय (बालइ = बाले = ऐ बाले)।

१५—कहा रोगिन को बंदु है = रोगियों के लिए क्या बंद अर्थात् वर्जित है—वायल (वायुल या वातल = वायुकारक पदार्थ)।

यहाँ 'तुकारै' को न समझने के कारण 'तुषारै' कर दिया गया है। फिर 'जालै' को 'जारै' किया गया। 'अंगुली' को अपने ढंग से बैठाने के लिए 'अँगरी' करना पड़ा। ये दोनों रूप पहले-पहल बेलवेडियर प्रेस के संस्करण में ही मिले। इस छंद के जो पाठ और अर्थ रखे-किए गए हैं उनका संकेत 'सर०' वाले हस्तलेख से ही कुछ मिला है।

प्राचीन हस्तलेखों की लिपि के संबंध में कुछ विशेष श्रम करने की आवश्यकता है। ऐसा कर देने से आगे के लिए मार्ग सरल हो जाएगा। प्राचीन हस्तलेखों में 'ख' के लिए 'ष' ही मिलता है। कुछ हस्तलेखों में 'ष' के दो प्रकार के उच्चारणों में से जहाँ मूल शब्द में 'ष' ही अर्थात् मूर्धन्य है वहाँ

'दंत्य उच्चारण' के लिए 'स' लिखा है, 'ष' नहीँ। 'बिसेस' लिखा है; 'बिसेष' नहीँ। ऐसा न कर मैँने 'बिसेष' रूप ही ग्रहण किया है। अन्यत्र जहाँ मूल मेँ 'ख' है 'ष' न लिखकर 'ख' ही रखा है। 'खग' को 'षग' न लिखकर 'खग' ही लिखा है। यदि किसी 'ष' का उच्चारण 'ख' करना है तो उसके नीचे बिंदी लगा दी है—ष़। 'व' 'ब' की चर्चा पहले की जा चुकी है। पर हस्तलेखोँ और परंपरा-प्रवाह से परिचित न होने के कारण प्राचीन हस्तलेखोँ के आधार पर संपादन करने पर भी बहुत से शब्दोँ की 'बर्तनी' (स्पेलिंग) अब भी ठीक नहीँ हुई है। निछावर करने के अर्थ मैँ 'वारना' है अर्थात् 'व' है 'ब' नहीँ। ऐसे ही बदनामी के अर्थ मैँ 'चवाव' है, दोनोँ 'व' हैँ। 'कबित्त' मैँ 'ब' ही है, 'व' नहीँ। मैँने इसका विशेष ध्यान रखा है, पर मेरी आँखोँ के दौर्बल्य और अक्षरशोधक की असावधानी से कहीँ व्यतिक्रम हो तो मेरा दुर्भाग्य।

द्वित्व के संबंध मैँ विलक्षण स्थिति है। महाप्राण वर्ण का द्वित्व ज्योँ का त्योँ है—'झलां जश् झशि' सूत्र से पूर्ववर्ण को अल्पप्राणत्व नहीँ प्राप्त हुआ है। 'दुःख' को हिंदी के प्राचीन हस्तलेख 'दुख्ख' ही लिखते हैँ—'दुष्ष' रूप मेँ—'दुक्ख' नहीँ। ऐसा ही अन्यत्र भी समझेँ। ऐसे प्रसंग मेँ कभी कभी एक ही महाप्राण सस्वर लिख देते थे—जैसे 'अछ' इसका तात्पर्य है 'अछ्छ'। चवर्गीय 'छ' का द्वित्व ठीक से न लिख पाने के कारण एक तो यह स्थिति होती है, दूसरे पूर्वग अक्षर पर का 'उदात्त' चिह्न हट जाने से भी ऐसा होता है। मेरी धारणा है कि जहाँ द्वित्व होता था वहाँ लिखने की एक विधि यह भी थी कि पूर्वगामी वर्ण पर उदात्त का चिह्न (खड़ी पाई) लगाते थे। 'अछ्छ' को लिखते थे 'अ॑छ'। कहीँ कहीँ यह उदात्त-चिह्न अनुस्वार मेँ भी बदल जाता था। संस्कृत 'खड्ग' से 'खग्ग' हुआ। इसमेँ अनुस्वार देकर इसे 'खंग' भी लिखते हैँ। मुझे लगता है कि 'खंग' मैँ अनुस्वार का बिंदु उदात्त के चिह्न का स्थानापन्न है। रासो मैँ वर्णोँ के जो द्वित्वरूप हैँ और जिनके कारण कभी कभी अर्थ करने मैँ भी कठिनाई पड़ती है वे यदि उदात्त-चिह्न से सहज कर लिए जायँ तो आधी कठिनाई दूर हो जाय। 'अमृत' को हिंदीवाले 'अंमृत' बोलते हैँ। यहाँ भी 'अ' पर बल है, उदात्त का चिह्न है। इस चिह्न को 'म्' के अनुनासिक होने के कारण यदि बिंदी या अनुस्वार-चिह्न से व्यक्त करेँ तो भी कोई भेद नहीँ होता, यह दूसरी बात है। 'प्रसन्न', 'अन्न' प्राचीन हस्तलेखोँ मेँ बहुधा 'प्रसंन' 'अंन' लिखे हैँ। चाहे 'स' पर की बिंदी को अनुस्वार समझिए चाहे उदात्त-चिह्न का घिसा रूप। रासो के जो हस्तलेख 'सभा' मैँ सुरक्षित हैँ उनमैँ कई स्थानोँ पर मुझे अनुस्वार-चिह्न से भिन्न खड़ी पाई के रूप मैँ उदात्त का चिह्न मिला है। मानस

के भी किसी किसी हस्तलेख में क्वाचित्क यह रूप पाया जाता है। मैंने उदात्त-चिह्न का व्यवहार नहीं किया है, पर द्वित्व की लेखनप्रणाली, जहाँ तक हो सका है, ज्यों की त्यों रखी है।

पुराने हस्तलेखों में सानुनासिकता बहुत मिलती है। 'मान' 'मांन' या 'माँन' लिखा मिलता है। प्राचीन हस्तलेखों के आधार पर संपादन करनेवाले कुछ सज्जन तो 'माँन' या 'मांन' रूप को ही अपनाते हैं, कुछ छोड़ देते हैं। इस संबंध में ज्ञातव्य यह है कि हिंदी में अनुनासिक वर्णों का उच्चारण संस्कृत से भिन्न प्रकार का होता है। अनुनासिक वर्णों का हम हिंदीवाले जैसा उच्चारण करते हैं उसके फलस्वरूप आगे पीछे स्वर को वह रंजित कर देता है। 'मान' में 'म्+आ+न्+अ' है, पर हिंदी में अंत में आनेवाले अकारांत वर्ण का अकार विशेष स्थिति में हलका उच्चरित होता है। 'मान' का हिंदी उच्चारण होता है 'मान्'। 'न्' के कारण 'मा' का 'आ' रंजित हो जाता है और वह 'मांन्' हो जाता है। यहाँ 'मांन्' में 'न्' का प्रभाव इसलिए मानना पड़ता है कि 'तान' को भी 'ताँन' या 'तांन' रूप में लिखते हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि 'मा' का 'आ' कभी 'म्' के कारण रंजित नहीं होता। जब वह स्वर को रंजित करता है तो अकेला रहता है—'माँख', छिमाँ।

खड़ी बोली में 'माँ' माता के लिए इसी प्रकार रंजित होकर बना है। सप्तमी का 'में' या सर्वनाम 'मैं' में भी यही स्थिति है। इस प्रकार के रंजित रूप स्वीकृत नहीं किए गए हैं। पर 'में' 'मैं' में सानुनासिक स्वरों का प्रयोग किया गया है यद्यपि ये हस्तलेखों में कभी कभी बिना बिंदी के भी लिखे मिलते हैं। स्वर को सानुनासिक इसलिए कहता हूँ कि हिंदी में महापंडितों और महाजनों को यह भ्रांति हो गई है कि 'में' या 'मैं' में बिंदी इसलिए नहीं लगानी चाहिए कि इनमें 'म्' अनुनासिक वर्ण है, उसमें कैसी बिंदी। अँगरेजी में 'मई' महीने को 'मे' कहते हैं उसके उच्चारण और हिंदी के 'में' के उच्चारण में भेद है। वास्तविकता यह है कि एक स्थान पर 'ए' स्वर रंजित नहीं है और अन्यत्र रंजित है। संस्कृत में लक्ष्मी के पर्यायवाची 'मा' का उच्चारण माता के लिए प्रयुक्त 'माँ' से भिन्न प्रकार से करना पड़ता है। वहाँ 'आ' रंजित नहीं है।

प्राचीन हस्तलेखों में 'ड' और 'ढ' के नीचे बिंदी देने की पद्धति नहीं है। यथास्थान उनके उच्चारण में भेद है। यदि 'ड' या 'ढ' शब्द के आरंभ में आते हैं तो उनका उच्चारण जिस प्रकार का होता है उसी प्रकार का तब नहीं होता जब वे दो स्वरों के बीच आते हैं। 'डर, ढक्यो' में और 'उमड़, पढ्यो' में उच्चारणभेद है। इसी को हिंदीवाले बिंदी देकर पृथक् करते हैं।

पर बिंदीवाला उच्चारण दो स्वरों के बीच ही होता है। वैदिक , ळ ळ्ह या मराठी के ऐसे ही अक्षरों के उच्चारण से और परिस्थिति से हिंदी के 'ड़ ढ़' का साम्य अवश्य है। यदि कोई स्वर रंजित हो जाए, सानुनासिक हो जाए तो उनका उच्चारण पश्चिम नें नहीं बदलता, पूरब में बदल जाता है। 'मेंढक' पश्चिम में बोलते हैं पूरब में 'मँढ़क'। 'छाँड्यो' और 'छाड़्यो' रूप ही स्वीकार कर पछाहीं प्रवृत्ति को ठीक माना गया है। यद्यपि भिखारीदास पूरब के थे और पूरबीपन उनकी बर्तनी में क्या, व्याकरण तक में स्पष्ट मिलता है, पर व्रजी की प्रवृत्ति के अनुरूप ही ये रूप रखे गए हैं।

मेरे परम मित्र कहते हैं कि व्रजवालों को ही व्रजी आ सकती है और मेरे अग्रज वैयाकरण भी व्रजयात्रा की दुहाई देते हैं। आचार्य शुक्लजी ने व्रजी की साहित्यिक प्रवृत्ति के अनुरूप 'घोड़ो' रूप माना है। भाषाविज्ञान के पंडितों ने व्रजबोली का विचार करते हुए आचार्य शुक्लजी की ही भाँति 'घोड़ो' रूप दिया। व्रज में 'घोड़ा' बोलते हैं, व्रजी के साहित्य में 'घोरो' लिखा और माना गया। हिंदी कवियों और आचार्यों के नगड़दादा केशवदासजी ने 'घोरौ' रूप ही स्वीकार किया है। वीरचरित्र में अनेकत्र इसके उदाहरण हैं—

(१) घोरौ जियै बरस बत्तीस।

(२) पाखर नाएँ घोरौ धीर।

(३) सो घोरौ करिकै हिय हेत।

अब बताइए प्राचीन व्रजी के लिए किसको परम प्रमाण माना जाए— नगड़दादा को या परम मित्र को।

भिखारीदासजी ने व्रजी के इस साहित्यिक रूप के ज्ञान के लिए व्रजवास को आवश्यक नहीं माना। वे अवध में घर बैठे ही रूप गढ़ते रहे। फल यह हुआ कि 'हियरा' के 'हियरो' 'हीरो' ऐसे रूप भी उन्होंने धर दिए हैं, जब कि 'हियरा' आकारांत ही होता है, ओकारांत नहीं। 'घोड़ो' रूप माननेवाले आचार्य शुक्लजी ने भी 'हियरा' का आकारांत रूप ही माना। पर हरिऔधजी ने रस-कलस में 'हियरो' रूप रखा है। अवध के हरिऔध भी थे। वहीं से बैठे बैठे वैसा रूप मान लिया। इस ग्रंथावली में यथास्थान मुंशी भिखारीदास द्वारा स्वीकृत ओकारांत रूप दिए गए हैं। जब 'घोड़ो' के स्थान पर 'घोड़ा' रूप की दुहाई देनेवाले व्रजवासी भी भिखारीदास के महाकाय काव्यनिर्णय में 'हियरो' रूप को ही मानते हैं तो मैंने तो केवल व्रज की यात्रा ही की है, व्रज में बसने

के नाम पर तो एक त्रिरात्र से अधिक वहाँ नहीं रहा। व्रज-साहित्य के वास में जीवन के तीन पन बीत गए, चौथा पन आ पहुँचा।

जब तक अर्थ नहीं लगता तब तक ठीक पाठशोधन भी नहीं हो सकता। पाठशोध के लिए चित्रालंकार के उदाहरण ऐसे नीरस पद्यों का भी अर्थ लगाना पड़ा है। उसमें कहीं मतभेद भी हो सकता है, पर केवल अर्थ पर ही उसकी विधि अवलंबित नहीं है। वाणी-चित्र में तो उतनी कठिनाई नहीं है पर लेखनी-चित्र की जो पारंपरिक विधि है उसे बिना जाने ठीक चित्र भी नहीं बन सकते। उदाहरण के लिए २१वें उल्लास में 'बेन सदा सरसै' पाठ होना चाहिए। अक्षरशोधक ने 'बेन' को 'बैन' कर दिया। 'साउन मास लसै' में 'साउन' को 'सावन' कर दिया। चित्र में इनकी स्थिति देखकर ठीक-ठीक समझा जा सकता है।

शृंगारनिर्णय के २६२वें पद्य में प्रथम चरण यों है—

काहे कों कपोलनि कलित कै देखावती है
मकलिकापत्रन की अमल हथोटि है।

इसमें 'मकलिका' को न समझकर 'भारतजीवन प्रेस' वाले संस्करण में 'कलिका सु' पाठ कर दिया गया है। 'मकलिका' रूप वस्तुतः 'मकरिका' से 'रलयोरभेदः' के कारण बना है। 'मकरिका' एक प्रकार की शृंगारी रचना होती थी जिसे स्त्रियाँ चंदन घिसकर कपोलों पर बनाया करती थीं। इसका अवशेष रामलीला और कृष्णलीला के स्वरूपों के सजाने में अब भी मिलता है।

कुछ शब्द तो ऐसे हैं जो बड़े-बड़े कोशों में भी नहीं मिलते। 'असावरी' शब्द का 'वस्त्र' अर्थ प्रसिद्ध कोशों में न मिलने पर भी मैंने वही माना। पीछे फैलन के कोश से पता चला कि रेशमी वस्त्र के लिए 'असावरी' शब्द चलता था। केशवदासजी ने भी रामचंद्रचंद्रिका में इसी अर्थ में इस शब्द का व्यवहार किया है—

असावरी मानिक कुंभ सोभै असोकलग्ना बनदेवता सी।

इस 'असावरी' को किसी किसी ने असावरी राग समझ लिया है। 'असावरी' शब्द एक साथ तीन अर्थों में प्रयुक्त देखकर तो ठिठकना पड़ा, पर 'असावरी' को ज्यों ही 'असाँवरी' किया त्यों ही तीनो अर्थ स्पष्ट हो गए—राग, रेशमी वस्त्र, असाँवली (गोरी)। भिखारीदास ने एक शब्द और प्रयुक्त किया है—यकंक, एकंक एकंक, इकंक। तीन चार रूप इसके दिए हैं। इसका अर्थ 'निश्चय' है। पर किसी कोश में ऐसा अर्थ न होने के कारण इधर काव्यनिर्णय की टिप्पणी में किसी ने इसका अर्थ 'एकमात्र, केवल' करके काम

चलाया और उधर मानस के टीकाकार बड़ी कठिनाई में पड़े। उन्होंने इस 'एक आँक' के लिए कई अटकल लगाए हैं—

एकहि आँक इहै मन माहीं। प्रातकाल चलिहौं प्रभु पाहीं।

"निश्चय (निश्चयात्मिका बुद्धि द्वारा) यही है और (संकल्प-विकल्प वाले) मन में भी यही (संकल्प) है कि प्रातःकाल प्रभु के पास चलूँगा, प्रस्थान करूँगा।" यह अर्थ न करके अन्य अर्थों के लिए टीकाकारों को इसी से भटकना पड़ा है कि 'एकांक या एक आँक' के अवधीवाले अर्थ से वे परिचित नहीं, और कोश कुछ सहायता करते नहीं।

काव्यनिर्णय के पाँचवें उल्लास में शृंगार के अपरांग-वर्णन का यह दोहा है—

चंदमुखिन के कुचन पर जिनको सदा बिहार।
अहह करै ताही करन चरबन फेरवदार॥

यहाँ 'चरबन फेरवदार' का पाठांतर 'भारत' में 'चखन फैर बरदार' है और बेलवेडियर प्रेस वाली प्रति में 'चिरियन फैर बदार' रूप। कल्याणदासवाली प्रति में (पृष्ठ १०२) पूरा दोहा यों है—

'चंद-मुखिँन के कुचँन पै, जिनकौ सदाँ विहार।
अहह करैं ताही करँन, चखँन फैर बरदार॥

अस्य तिलक

इहाँ करुनाँ रस कौ सिंगार-रस अंग भयौ है, ताते रसवंत अलंकार है। वि०—प्रतापगढ़ की हस्तलिखित प्रति में इस दोहे का शीर्षक—"करुन रसवत् अलंकार बरनन" लिखा है और प्रतापगढ़ नं० ३ की प्रति में "शृंगारवत्" लिखा है।"

स्थिति यह है कि किसी वीर के रणक्षेत्र पड़े में हुए हाथों को शृगाली खा रही है। इसे देखकर कोई कहता है कि जो हाथ चंद्रमुखियों के स्तनों पर सदा विहार करते थे, हा! उन्हीं हाथों को शृगाली (फेरव की दार) चर्वण कर रही—चबा रही है। यहाँ 'करुण रस' तो प्रधान रस है पर उसके अंगरूप में शृंगार रस आया है क्योंकि करुणा के प्रसंग में शृंगार की स्थिति (चंद्रमुखिन के कुचन पर जिनको सदा बिहार) का स्मरण है। जब कोई रस किसी भाव आदि का अंग होता है तो उसे 'रसवत् अलंकार' कहते हैं। जो रस अंग होता है वह अलंकार्य रूप में न आकर वहाँ 'अलंकार' अर्थात् साधन रूप में आता है।

काव्यनिर्णय में ही नहीं रससारांश और शृंगारनिर्णय में भी दास ने बहुत सी ऐसी बातें रखी हैं जिनसे उनके साहित्यशास्त्र के अनुशीलन-मनन

के परिपूर्ण अभ्यास का पता चलता है। यह समझना भ्रांति है कि उन्होंने श्रीपति के **श्रीपतिसरोज** या **काव्यसरोज** से बहुत सी सामग्री ज्यों की त्यों उठाकर रख ली है। वास्तविकता यह है कि **काव्यनिर्णय काव्यप्रकाश** और **चंद्रालोक (कुवलयानंद)** के आधार पर प्रस्तुत हुआ है। जिस प्रकार दास ने उन ग्रंथों के सहारे अपना यह ग्रंथ प्रस्तुत किया उसी प्रकार हिंदी में बहुत से ग्रंथ प्रस्तुत हुए जिनमें श्रीपति का उक्त ग्रंथ भी है। काव्यप्रकाश आदि से लक्षणों का उल्था ही नहीं उदाहरणों का उल्था भी अपने अपने ग्रंथों में सबने प्रभूत परिमाण में दिया है। **काव्यनिर्णय** के किस उल्लास का कौन सा उदाहरण का छंद कहाँ से उल्था करके दिया गया है और आधार पद्य क्या है इसे भी लाभप्रद समझकर परिशिष्ट में 'आधार-पद्य' के अंतर्गत उन्हें संगृहीत किया गया है। **काव्यनिर्णय** में इसके अतिरिक्त अन्य छंदों के भी संस्कृत-मूल की संभावना है। उनके अन्य ग्रंथों के आधार पद्यों की सूची इसलिए नहीं दी गई कि उनकी संख्या नाममात्र को है।

इस प्रकार संपादन का कार्य करने में जो शैली ग्रहण की गई उसमें अधिक श्रम ही अपेक्षित नहीं है, विशेष समय भी अपेक्षित है। इसलिए जो समझते हैं कि प्राचीन ग्रंथों के संपादन में क्या रखा है उन्हें कभी संपादन का कार्य करके भुक्तभोगी बन लेना चाहिए।

× × × ×

ग्रंथ को शुद्ध रूप में प्रकाशित करने का भरपूर प्रयास किया गया है। पर हिंदी के मुद्रण-यंत्र और अक्षरशोधक किसी में वह वृत्ति ही अभी नहीं जगी है जो ऐसी कृतियों के मुद्रण-शोधन के लिए अनिवार्य है। इस यज्ञ की पूर्णाहुति में हवि और समिधा का संकलन-आकलन करने का श्रम कई सज्जनों ने किया जिनमें से कुछ प्रमुख व्यक्तियों के नामों का उल्लेख पहले किया जा चुका है। **काव्यनिर्णय** के संपादन में यों तो सहायता करनेवाले कई हैं पर दो व्यक्तियों का उल्लेख विशेष रूप से करना है। एक हैं मेरे पुराने मित्र श्रीश्रीदेवाचार्यजी और दूसरे हैं आकर-ग्रंथमाला के सहायक श्रीरामबली पांडेय, जिन्होंने **काव्यनिर्णय** का 'अभिधान' प्रस्तुत करने में मनोयोगपूर्वक सहायता की। पहलेवाले आचार्यजी धन्यवाद के पात्र हैं और दूसरे शिष्य होने से आशीर्वाद के भाजन।

इस ग्रंथावली के संपादन में जिन महानुभावों के ग्रंथों और सामग्री का थोड़ा या अधिक किसी प्रकार का उपयोग-प्रयोग किया गया उन सबके प्रति

मैं नतमस्तक करबद्ध कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ और आशा करता हूँ कि भविष्य में भी उनकी सहायता का द्वार उन्मुक्त रहेगा। आशा है इस ग्रंथावली से हिंदी के सहृदय विदुषों का मनस्तोष होगा—

आपरितोषाद्‌ विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम्।

वाणी-वितान भवन
ब्रह्मनाल, वाराणसी–१
रथयात्रा, २०१४ वि०

विश्वनाथप्रसाद मिश्र

अनुक्रमणिका

काव्यनिर्णय

७

संकेत

काव्यनिर्णय

सर०—सरस्वती-भंडार (रामनगर, काशिराज) का हस्तलेख, लिपिकाल सं० १८७१ ।

भारत—भारतजीवन प्रेस (बनारस) सं० १९५६ में मुद्रित प्रति ।

वेंक०—वेंकटेश्वर प्रेस (मुंबई) में सं० १९५५ में मुद्रित प्रति ।

बेल०—बेलवेडियर प्रेस (प्रयाग) में सं० १९८३ में मुद्रित प्रति ।

वही—पूर्वगामी संकेत ।

चिह्न

+ —हस्तलेख में संशोधित पाठ ।

÷ —हस्तलेख का मूल पाठ ।

× —अभावसूचक ।

,—अक्षरलोप-सूचक ।

०—शब्दलोपन-सूचक ।

[ ]—प्रस्तावित ।

ऽ—लघु-उच्चारण-सूचक ।

ष़—ख ।

भिखारीदास

(ग्रंथावली)

द्वितीय खंड

काव्यनिर्णय

काव्यनिर्णय

१

(छप्पय)

एकरदन, द्वैमातु, त्रिचख, चौबाहु पंचकर।
षट्आनन बरबंधु, सेव्य सप्तार्चिभालधर।
अष्टसिद्धिनवनिद्धिदानि, दसदिसि जसबिस्तर।
रुद्र इग्यारह सुखद, द्वादसादित्यओजवर।
जो त्रिसदवृंदबंदितचरन, चौदहबिद्यनि आदिगुर।
तेहि *दास* पंचदसहूँ तिथिन, धरिय षोड़सो ध्यान उर ॥१॥

(दोहा)

जगतबिदित उदयाद्रि सो, अरवर देस अनूप।
रबि लौं पृथ्वीपति उदित, तहाँ सोमकुलभूप ॥२॥
सोदर तिनके ज्ञाननिधि, हिंदूपति सुभ नाम।
जिनकी सेवा सोँ लह्यो, *दास* सकल सुखधाम ॥३॥
अट्ठारह सै तीनि हो, संबत आस्विन मास।
ग्रंथ *काव्यनिर्नय* रच्यो, बिजै-दसैँ दिन *दास* ॥४॥
बूझि सु *चंद्रालोक* अरु, *काव्यप्रकासहु* ग्रंथ।
समुझि सुरुचि भाषा कियो, लै औरौ कबिपथ ॥५॥

---

[१] बंधु–बन्य (सर०) । निद्धि०–निधि प्रदानि (वही) । सुखद–सुभद (बेल०) । बिद्यनि–बिघ्ननि (सर०) । षोड़सो–षोड़सी (सर०, वेंक०) ।

[३] सोँ–तैँ (वेंक०) ।

[४] हो–को (बेल०) । दसैँ–दसमि (वेंक०, बेल०) ।

[५] हु–सु (सर०, वेंक०) ।

वही बात सिगरी कहँ, उलथो होत यकंक।
सब निज उक्ति बनायहूँ, रहै स्वकल्पित संक ॥६॥
यातँ दुहुँ मिश्रित सज्यो, छमिहैं कबि अपराधु।
बन्यो अनबन्यो समुझिकै, सोधि लेहिंगे साधु ॥७॥

(कबित्त)

मो सम जु ह्वैहैं ते बिसेष सुख पैहैं, पुनि
हिंदूपति साहिब के नीके मन मानो है।
एते पर *तोष* *रसराज* *रसलीन*,
बासुदेव से प्रबीन पूरे कबिन बखानो है।
तातँ यह उद्यम अकारथ न जैहै, सब
भाँति ठहरैहै यह हौंहूँ अनुमानो है।
आगे के सुकबि रीझिहैं तौ कबिताई न तौ,
राधिकाकन्हाई-सुमिरन को बहानो है ॥८॥

(दोहा)

ग्रंथ *काव्यनिर्नय*हि जो समुझि करहिंगे कंठ।
सदा बसैगी भारती, ता रसना-उपकंठ ॥९॥

काव्यप्रयोजन–(सवैया)

एकै लहैं तपपुंजनि के फल ज्यौं *तुलसी* अरु *सूर* गोसाँई।
एकै लहैं बहु संपति *केसव* *भूषन* ज्यौं *बरबीर* बड़ाई।
एकनि कौं जस ही सौं प्रयोजन है *रसखानि* *रहीम* की नाईं।
दास कबित्तनि की चरचा बुधिवंतनि कौं सुखदै सब ठाईं ॥१०॥

(सोरठा)

प्रभु ज्यौं सिखवै बेद, मित्र मित्र ज्यौं सतकथा।
काव्यरसनि को भेद, सुख-सिखदानि तियानि ज्यौं ॥११॥

---

[६] वही–वोही (सर०)। सब०–निज उक्तिहि करि बरनिये (भारत, बेल०)। स्व–सु (भारत, वेंक०, बेल०)।

[८] जु–जे (भारत, बेल०)। से–सौं (वेंक०)। अनुमानो–यह जानो (सर०)। [१०] के–को (सर०)।

[११] मित्र-मित्र–मित्र कहै (भारत)। तियानि–तिया सु (बेल०)।

(सवैया)

सक्ति कबित्त बनाइबे की जिहि जन्मनछत्र मैं दीनी बिधातैं ।
काव्य की रीति सिख्यो सुकबीन सौं देखी सुनी बहुलोक की बातैं ।
दासजू जामैं एकत्र ये तीन्यौ बनै कबिता मनरोचक तातैं ।
एक बिना न चलै रथ जैसैं धुरंधर सूत कि चक्र निपातैं ॥१२॥

(सोरठा)

रस कबित्त कौ अंग, भूषन हैं भूषन सकल ।
गुन सरूप औ' रंग, दूषन करै कुरूपता ॥१३॥

भाषा-लक्षण– (दोहा)

भाषा बृजभाषा रुचिर, कहैं सुमति सब कोइ ।
मिलै संसकृत पारस्यौ, पै अति प्रगट जु होइ ॥१४॥
बृज मागधी मिलै अमर, नाग जमन भाषानि ।
सहज पारसीहूँ मिलै, षटबिधि कबित बखानि ॥१५॥

(कबित्त)

सूर केसौ मंडन बिहारी कालिदास ब्रह्म
चिंतामनि मतिराम भूषन सु ज्ञानिये ।
लीलाधर सेनापति निपट नेवाज निधि
नीलकंठ मिश्र सुखदेव देव मानिये ।
आलम रहीम रसखानि सुंदरादिक
अनेकन सुमति भए कहाँ लौं बखानिये ।
बृजभाषा हेत बृजबास ही न अनुमानो
ऐसे ऐसे कबिन की बानी हूँ सौं जानिये ॥१६॥

---

[१२] सिख्यो-सिखी (भारत, बेल०); सिखै (वेंक०)। सौं-तैं (वेंक०)। देखी०–देखै सुनै (वेंक०)। तीन्यौ–तीनि (भारत, बेल०)।

[१३] कबित्त–कबिता (भारत, वेंक०, बेल०)। सरूप-स्वरूप (सर०)। औ'–अरु (वेंक०)।

[१४] भाषा०–ब्रजभाषा भाषा (वेंक०)। सुमति–सुकबि (भारत, बेल०)। प्रगट०–प्रगटी (वेंक०)। [१५] 'सर०' मैं नहीं है।

[१६] सु–से (भारत, बेल०)। ज्ञानिये–दानिये (सर०)। सुंदरादिक-औ मुबारकादि बिबिध (भारत)। रसलीन और सुंदर (बेल०)। बृजभाषा०–भाषाहेतु ब्रज लोकरीतिहूँ सो देखी सुनी बहु भाँति (भारत)। सौं–से (बेल०)।

(दोहा)

तुलसी गंग दोऊ भए, सुकबिन के सरदार।
इनकी काव्यनि मैं मिली, भाषा बिबिधि प्रकार ॥१७॥

(सवैया)

जानै पदारथ भूषन मूल रसांग परांगनि मैं मति छाकी।
स्यौं धुनि अर्थनि वाक्यनि लै गुन सब्द अलंकृत सौं रति पाकी।
चित्र कबित्त करै तुक जानै न दोषनि पंथ कहूँ गति जाकी।
उत्तम ताको कबित्त बनै करै कीरति भारतियौ अति ताकी ॥१८॥

इति श्रीसकलकलाधरकलाधरवंशावतंसश्रीमन्महाराजकुमारश्रीबाबू-
हिंदूपतिविरचिते काव्यनिर्णये मंगलाचरणवर्णनं
नाम प्रथमोल्लासः ॥१॥

२

अथ पदार्थनिर्णयवर्णनं–(दोहा)

पद बाचक अरु लाच्छनिक, ब्यंजक तीनि बिधान।
तातैं बाचकभेद को, पहिलैं करौं बखान ॥१॥
जाति जद्रिच्छा गुन क्रिया, नाम जु चारि प्रमान।
सबकी संज्ञा जाति गनि, बाचक कहैं सुजान ॥२॥
जाति नाम जदुनाथ अरु, कान्ह जद्रिच्छा धारि।
गुन तैं कहिये स्याम अरु, क्रिया नाम कंसारि ॥३॥
रूप रंग रस गंध गनि, और जु निस्चल धर्म।
इन सबकौं गुन कहत हैं, गुनि राखौ यह मर्म ॥४॥

---

[१७] दोऊ–दुऔ (भारत, वेल०)
[१८] स्यौं–सो (बेल०)। भारतियौ–भारती यौं (वेंक०, बेल०)।
[३] अरु–गनि (भारत, वेंक०)।
[४] और०–औरहु (भारत, बेल०)।

ऐसे सब्दन सौं जहाँ प्रगट होइ संकेत।
तेहि बाच्यार्थ बखानहीं, सज्जन सुमति सचेत ॥ ५ ॥
अनेकार्थहू सब्द मैं, एक अर्थ की भक्ति।
तिहि बाच्यारथ कौं कहैं, सज्जन अभिधा सक्ति ॥ ६ ॥
कहूँ होत संजोग तैं, एकै अर्थ प्रमान।
संख-चक्रजुत हरि कहैं बिस्नै होत न आन ॥ ७ ॥
असंजोग तैं कहुँ कहैं, एक अर्थ कबिराइ।
कहैं धनंजय धूम बिनु, पावक जान्यो जाइ ॥ ८ ॥
बहुत अर्थ कौं एक कहुँ, साहचर्ज तैं जानि।
बेनीमाधव के कहैं, तीरथ बेनी मानि ॥ ९ ॥
कहुँ बिरोध तैं होत है, एक अर्थ को साज।
चंदै जानि परै कहैं राहु ग्रस्यो दुजराज ॥ १० ॥
अर्थप्रकरन तैं कहूँ, एक अर्थ पहिंचानि।
बृच्छ जानिये दल भरैं, दल साजैं नृप जानि ॥ ११ ॥
बाचक तैं कहुँ पाइये, एकै अर्थ निपाट।
सरसुति क्यौं कहिये कहैं बानी बैठो हाट ॥ १२ ॥
आन सब्द ढिग तैं कहूँ, पैये एकै अर्थ।
सिखी पच्छ तैं जानिये, केकी परै समर्थ ॥ १३ ॥
दास कहूँ सामर्थ्य तैं, एक अर्थ ठहरात।
ब्याल बृच्छ तोख्यो कहैं, कुंजर जान्यो जात ॥ १४ ॥
कहूँ उचित तैं पाइये, एकै अर्थ सुरीति।
तरु पर दुज बैठो कहैं, होति बिहंग-प्रतीति ॥ १५ ॥

---

[५] जहाँ०—फुरै संकेतित जो अर्थ (बेल०)। तेहि०—ताको बाच्यारथ कहैं (वही)। सचेत—समर्थ (वही)।

[६] भक्ति—नक्ति (सर०); ब्यक्ति (बेल०)।

[७] बिस्नै०—होत बिस्नु को ज्ञान (बेल०)। [८] कहैं—कहै (वेंक०)।

[१२] बाचक०—कहूँ लिंग तैं पाइये एक अर्थ को ठाट (बेल०)। पाइये—जानिये (वेंक०)। सरसुति—सुरसति (सर०); सरस्वति (वेंक०); सरसइ (बेल०)।

[१५] एकै०—एक अर्थ की रीति (भारत, बेल०)। बैठो—बैठे (सर०)। होति—होत (भारत, वेंक०, बेल०)।

कहूँ देस-बल कहत हैं एक अर्थ कबि धीर।
मरु मैं जीवन दूरि है कहैं जानियत नीर॥ १६॥
कहूँ काल तैं होत है, एक अर्थ की बात।
कुबलै निसि फूल्यो कहैं कुमुद, द्यौस जलजात॥ १७॥
कहूँ स्वरादिक फेर तैं, एकै अर्थ-प्रसंग।
बाजी भली सु बाँसुरी, बाजी भलो तुरंग॥ १८॥
कहूँ अभिनयादिकनि तैं, एकै अर्थ प्रकार।
इती देखियतु देहरी, इते बड़े हैं बार॥ १९॥
जामैं अभिधा सक्ति तजि, अर्थ न दूजो कोइ।
यहौ काव्य कीन्हैं बनै, ना तौ मिश्रित होइ॥ २०॥

अभिधा शक्ति—(दोहा)

मोरपच्छ को मुकुट सिर, उर तुलसीदल-माल।
जमुना-तीर कदंब-ढिग, मैं देख्यो नँदलाल॥ २१॥

इति अभिधा शक्ति

अथ लक्षणाशक्तिभेद

मुख्य अर्थ के बाध सौं, सब्द लाच्छनिक होत।
रूढ़ि औ' प्रयोजनवती, द्वै लच्छना उदोत॥ २२॥

रूढ़िलच्छणा-लक्षण

मुख्य अर्थ को बाध, पै जग मैं बचन प्रसिद्ध।
रूढ़ि लच्छना कहत हैं, ताको सुमति-समृद्ध॥ २३॥

---

[१८] सु—न (बेल०)।
[१९] प्रकार—बिचार (भारत, वेंक०)। इते—इतैं (सर०)।
[२०] तजि—करि (बेल०)। यहौ—वहौ (वही)। ना०—न तौ मिश्रितै (सर०)।
[२१] देख्यो—देख्यौं (बेल०)।
[२२] के—को (सर०)। सौं।—तैं (भारत, बेल०)। रूढ़ि—रूढ़ी प्रयोजनोवती (वेंक०)।
[२३] को—के (बेल०)। प्रसिद्ध—प्रसिधि (सर०)। समृद्ध—समृद्धि (वही)

यथा

फली सकल मनकामना, लूट्यो अगनित चैन।
आँजु अचै हरिरूप सखि, भए प्रफुल्लित नैन ॥ २४ ॥

(कबित्त)

अँखियाँ हमारी दईमारी सुधि-बुधि-हारी,
मोहू तेँ जु न्यारी दास रहैँ सब काल मैँ।
कौन गहै ज्ञानै, काहि सौँपति सयानै, कौन
लोक ओक जानै ये नहीँ हैँ निज हाल मैँ।
प्रेम पगि रहीँ महा मोह मैँ उमगि रहीँ,
ठीक ठगि रहीँ लगि रहीँ बनमाल मैँ।
लाज कौं अचै कै कुलधरम पचै कै, बिथा-बृंदनि
सचै कै भईँ मगन गुपाल मैँ ॥ २५ ॥

अस्य तिलक

मनकामना बृच्छ नहीँ जो फलै। फलिबो सब्द बृच्छपर है। लच्छना सक्ति तेँ मनकामनाहूँ को फलिबो लीजियतु है। ऐसे ही ऐसे सब्दनि को या दोहा औ' कबित्त मैँ अधिकार है, सो जानि लीबो। २५ अ ॥

अथ प्रयोजनवती-लच्छणावर्णनं—(दोहा)

प्रयोजनवती लच्छना, द्वै बिधि तासु प्रमान।
एक सुद्ध गौनी दुतिय, भाषत सुकबि सुजान ॥ २६ ॥

अथ शुद्धलच्छणा

उपादान इक सुद्ध मैँ, दूजी लच्छन ठान।
तीजी सारोपा कहैँ, चौथी साध्यवसान ॥ २७ ॥

---

[२५] जु०—नियारी (बेल०)। बृंदनि—बंधन (वही)।
[२५ अ] 'बेल०' मैँ नहीँ है। नहीँ—नहीँ है (भारत, वेंक०)। ऐसे ही—ऐसे (सर०)।
[२६] प्रयोजनवती०—लच्छन प्रयोजनवती (सर० ÷); लच्छन प्रयोजनवती सो (वही +); लच्छनउ प्रयोजनवती (भारत); प्रयोजनवती जु लच्छना (बेल०)। प्रमान—बखान (भारत)।
[२७] सुद्ध मैँ—जानिये (बेल०)। लच्छन—लच्छित (वही)।

उपादान-लक्षणावर्णनं-(दोहा)

उपादान सो लच्छना, परगुन लीन्हेँ होइ।
कुंत चलत सब जग कहै, नर बिनु चलै न सोइ ॥ २८ ॥

यथा वा

जमुना जल कौँ जात हीँ, डगरी गगरी-जाल।
बजी बाँसुरी कान्ह की, गिरीँ सकल तिहि काल ॥ २९ ॥
खेलत ब्रज होरी सजैँ, बाजे बजैँ रसाल।
पिचकारी चलतीँ घनी, जहँ तहँ उड़त गुलाल ॥ ३० ॥

अस्य तिलक

गगरी आपु सौँ नहीँ जाति है, कोऊ प्रानी वाकौँ लय जातु है। ऐसे ही मुख्यार्थबाध तेँ उपादान लच्छना होति है, सो दूनौ दोहा के प्रतिवाक्य मैँ उदाहरन है। ३० अ ॥

अथ लक्षण-लक्षणावर्णनं-(दोहा)

निज लच्छन औरहि दिये, लच्छ-लच्छना-जोग।
गंगातटबासिन्ह कहैँ, गंगाबासी लोग ॥ ३१ ॥

यथा वा

सुंदरि दिया बुझाइकै, सोवति सौध मझार।
सुनत बाँसुरी कान्ह की, कढ़ी तोरिकै द्वार ॥३२॥

अस्य तिलक

तोरिबो कँवार को चाहिये, द्वार कौँ कह्यो। बाँसुरी की धुनि सुन्यो, सो बाँसुरी कौँ कह्यो। यातेँ लच्छन लच्छना कहिये। ३२ अ ॥

---

[२८] सोइ–कोइ (सर०)।
[३० अ] 'वेल०' मैँ नहीँ है। लय–लए (सर०); लिये (भारत, वेँक०)।
होति है–है (सर०)।
[३१] लच्छ–लच्छि (सर०)। बासिन्ह–बासी (भारत)।
[३२ अ] चाहिये–संभवतु है (भारत, वेँक०)।

अथ सारोपा-लच्छणावर्णनं-(दोहा)

और थापिये और कौँ, क्यौँहूँ समता पाइ।
सारोपित सो लच्छना, कहैँ सकल कबिराइ ॥३३॥

यथा

मोहन मो दृग पूतरी वै छबि सिगरी प्रान।
सुधा चितौनि सुहावनी, मीचु बाँसुरी-तान ॥३४॥

अस्य तिलक

मोहन कौँ पूतरी थाप्यो, छबि कौँ प्रान थप्यो, तातैँ सारोपा लच्छना भई। ३४ अ ॥

अथ साध्यवसाना-लच्छणावर्णनं-(दोहा)

जाकी समता कहन कौँ वहै मुख्य करि देइ।
साध्यवसान सु लच्छना, बिषय नाम नहिँ लेइ ॥३५॥

यथा-(दोहा)

बैरिनि कहा बिछावती फिरि फिरि सेज कृसान।
सुन्यो न मेरे प्रान-धन चहत आज कहुँ जान ॥३६॥

अस्य तिलक

बैरिनि सखी कौँ कह्यो, कृसान फूल कौँ कह्यो, यातैँ साध्यवसान कहिये। ३६ अ ॥

अथ गौणी लच्छणा को भेद वर्णनं-(दोहा)

गुन लखि गौनी लच्छना, द्वै ही तासु प्रमान।
सारोपा प्रथमी गनो, दूजी साध्यवसान ॥३७॥

सारोपा गौणी, यथा

सगुनारोप सु लच्छना, गुन लखि करि आरोप।
जैसे सब कोऊ कहै, बृषभै गवइँ गोप ॥३८॥
सूर सेर करि मानिये, कायर स्यार बिसेषि।
बिद्यावान त्रिनयन है, कूर अंध करि लेखि ॥३९॥

---

[३३] सारोपित–सारोपा–(भारत, बेल०)। वै–त्रा (वही)।
[३४ अ] थप्यो–थाप्यो (भारत, वेंक०)।
[३७] ही–बिधि (बेल०)। प्रथमी–प्रथमै (भारत, बेल०); प्रथमा (वेंक०)।

गौणी साध्यवसान, यथा

गौनी साध्यवसान सो, केवल ही उपमान।
कहा बृषभ सौँ कहत हौ, बातैँ है मतिमान ॥४०॥

इति लक्षणा-शक्तिनिर्णय

अथ व्यंजना-शक्तिनिर्णय-वर्णनं–(सवैया)

बाचक लच्छक भाजन रूप हैँ, ब्यंजक कौँ जल मानत ग्यानी।
जानि परै न जिन्हैँ तिन्ह के समुझाइबे कौँ यह दास बखानी।
ये दोउ होत सव्यंगि अव्यंगि औ' व्यंगि इन्हैँ बिनु ल्यावै न बानी।
भाजन ल्याइय नीरबिहीन न आइ सकै बिनु भाजन पानी ॥४१॥

(दोहा)

व्यंजक व्यंजनजुक्त पद व्यंगि तासु जो अर्थ।
ताहि बुझैबे की सकति है व्यंजना समर्थ ॥४२॥
सूधो अर्थ जु बचन को तिहि तजि औरै बैन।
समुझि परै तैँ कहत हैँ सक्ति व्यंजना ऐन ॥४३॥

अथ अभिधामूलक-व्यंग्य-वर्णनं

सब्द अनेकारथनि बल, होइ दूसरो अर्थ।
अभिधामूलक व्यंगि तिहि, भाषत सुकवि समर्थ ॥४४॥

यथा

भयो अपत कै कोपजुत, कै बौरो इहि काल।
मालिनि आजु कहै न क्यौँ, वा रसाल की हाल ॥४५॥

लक्षणामूल व्यंग्य–(दोहा)

व्यंगि लच्छनामूल सो प्रयोजननि तैँ होइ।
होती रूढ़ि अव्यंगियै यह जानत सब कोइ ॥४६॥

---

[४१] औ'–यौँ (भारत) ल्याइय–ल्याउ न (वही)।
[४२] ब्यंजक०–ब्यंजन ब्यंजक (भारत)।
[४३] परै०–परै तेहि (भारत, बेल०)। [४५] की–को (भारत, बेल०)।
[४६] 'बेल०' में नहीँ है। होती०–होति रूढ़ि अव्यंग है (भारत); होती रूढ़ि अव्यंग्य है (वेंक०)।

गूढ़ अगूढ़ौ ब्यंगि द्वै, होति लच्छनामूल।
छिपी गूढ़ प्रगटहि कहै, है अगूढ़ समतूल ॥४७॥

गूढ़ व्यंग्य, यथा– (सवैया)

आनन मैं मुसुकानि सुहावनि बंकुरता अँखियानि छई है।
बैन खुले मुकुले उरजात जकी बिथकी गति ठौनि ठई है।
दास प्रभा उछलै सब अंग सुरंग सुबासता फैलि गई है।
चंदमुखी तनु पाइ नबीनो भई तरुनाई अनंदमई है ॥४८॥

अस्य तिलक

याकौं पाइबे तैं तरुनाई कौं आनंद भयो है तौ और कोऊ पुरुष पावैगो ताकौं अति ही आनंद होइगो यह ब्यंगि है। ४८ अ ॥

अगूढ़ व्यंग्य, यथा– (दोहा)

धन जोबन इन दुहुन की, सोहति रीति सुबेस।
मुग्ध नरनि मुग्धनि करै, ललित बुद्धि-उपदेस ॥४९॥

अस्य तिलक

धन पाए तैं मूरखहू बुधिवंत होइ जातु है, जोबन तैं नारी चतुरि होति है यह ब्यंगि है। उपदेस सब्द लच्छना तैं सो वाच्यहू मैं प्रगट है। ४९ अ ॥

अथ अर्थ-व्यंजक-वर्णनं– (दोहा)

होत अर्थ-व्यंजकनि को, दस बिधि सुभ्र बिसेष।
पहिले बक्तिबिसेष पुनि, है बोधव्य सु लेख ॥५०॥

---

[४७] इसके स्थान पर 'बेल०' मैं यह दोहा है—
कबि सहृदय जा कहँ लखैं, ब्यंग कहावत गूढ़।
जाको सब कोई लखत, सो पुनि होइ अगूढ़ ॥
कहै–कहौं (सर० +, भारत); कहो (वेंक०); कहौं (बेल)।

[४८] बंकुरता०–बंकता नैनन्ह (बेल०)। बिथकी–तिय की (भारत)।

[४८ अ] और कोऊ–अब याकौं कोऊ (भारत); अब ई कोऊ और (वेंक०)।

[४९ अ] मूरखहू०–मूर्खहू बुद्धिवंत ह्वै (भारत, वेंक०)। जोबन–और जुवा अवस्था पाए तैं (वही)। होति–ह्वै जाति (वही)। तैं सो–तैं और (भारत); सो मालूम होता है औ' (वेंक०)। मैं–तैं (भारत)।

[५०] बक्ति–व्यक्ति (बेल०)। अरु–पुनि (भारत, बेल०)।

काकुबिसेषो वाक्य अरु, बाच्यबिसेष् गनाइ।
अनसंनिधि प्रस्ताव अरु देस काल नौ भाइ ॥५१॥
है चेषटा बिसेष पुनि, दसम भेद कबिराइ।
इनके मिलै मिलै कियेँ, भेद अनंत लखाइ ॥५२॥

अथ वक्तृविशेष, यथा

अति भारी जलकुंभ लै, आई सदन उताल।
लखि स्रम-सलिल, उसास अलि, कहा बूझती हाल ॥५३॥

अस्य तिलक

इहाँ वक्ता नायका है, सो अपनी क्रिया छपावती है, सो व्यंगि तँ जान्यो जातु है। ५३ अ॥

अथ बोधव्यविशेष, यथा–(दोहा)

चिंता जृंभ उनीदता बिह्वलता अलसानि।
लह्यो अभागिनि हौं अली, तैंहूँ गहै सु बानि ॥ ५४ ॥

अस्य तिलक

इहाँ जासौं कहति है ताकी क्रिया व्यंजित होति है। ५४ अ ॥

अथ काकु-विशेष-वर्णनं, यथा–(दोहा)

दृग लखिहैं मधु-चंद्रिका, सुनिहैं कलधुनि कान।
रहिहैं मेरे प्रान तन प्रीतम करौ पयान ॥ ५५ ॥

अस्य तिलक

इहाँ काकु तँ बरजिबो व्यंजित होतु है। ५५ अ ॥

अथ वाक्यविशेष-वर्णनं, यथा–(दोहा)

अब लौं ही मोही लगी लाल, तिहारी डीठि।
जात भई अब अनत कत, करत सामुहैं नीठि ॥ ५६ ॥

---

[५२] चेषटा–चेष्टा सु बिसेषहू (भारत, वेंक०, बेल०)।

[५४] जृंभ०–जृंभा नीद अरु व्याकुलता (बेल०)। लह्यो–लह्यौ (भारत, वेंक०, बेल०)। तैं हूँ–तौं हूँ (सर०); तहूँ (वेंक०)। गहै–गही (भारत, बेल०); गह्यो (वेंक०)।

[५५] करौ–करयो (वेंक०)।

अस्य तिलक

इहाँ याकी वाक्य तैं यह व्यंजित होतु है की दूजी नायका कौं नायक लख्यौ। ५६ अ ॥

अथ वाच्यविशेष-वर्णनं, यथा–(सवैया)

भौन अँध्यारहूँ चाहि अँध्यारो चँवेली के कुंज के पुंज बने हैँ।
बोलत मोर करैं पिक सोर जहाँ तहाँ गुंजत भौंर घने हैँ।
दास रच्यो अपने हीँ बिलास कौं मैनजू हाथनि सौँ अपने हैँ।
कूल कलिंदजा के सुखमूल लतानि के बृंद बितान तने हैँ ॥५७॥

अस्य तिलक

इहाँ वाच्यार्थ सहेटजोग्य ठौर जानियो, बिहार की इच्छा व्यंजित होति है। ५७ अ ॥

अथ अन्यसंनिधिविशेष-वर्णनं, यथा–(दोहा)

राजु करै गृह-काजु दिन, बीतत याही माँझ।
ईठि लहौं कल एक पल, नीठि निहारैं साँझ ॥ ५८ ॥
इहि निसि धाइ सताइ लै, स्वेद-खेद तैं मोहि।
कालिह लालिहूँ के कियैं, संग न स्वाऊँ तोहि ॥ ५९ ॥

अस्य तिलक

इहाँ उपपति समीप है ताके सुनाए तैं परकीया जानी जाति है। ५९ अ ॥

अथ प्रस्तावविशेष-वर्णनं, यथा–(दोहा)

बौरी बासर बीततैं, प्रीतम आवनिहार।
तकै दुचित कित, ह्वै सुचित, साजहि उचित सिँगार ॥ ६० ॥

[५६ अ] याकी–याके (भारत)। की–जो (भारत); कि (वेंक०)।
[५७ अ] वाच्यार्थ०–वाच्यार्थ तैं (भारत, वेंक०)। जानियो–जानो यौ (सर०)।
[५८] करै–करो (भारत, वेंक०, बेल०)।
[५९] लालि–लाल (वेंक०)। कियैं–कहैं (भारत, वेंक०, बेल०)। स्वाऊँ-स्वावौं (बेल०)। 'बेल०' मैं यह वाच्यविशेष का दूसरा उदाहरण है।
[६०] कित०–ह्वै सुचित कत (वेंक०); कित सुचित ह्वै (भारत, बेल०)।

अस्य तिलक

इहाँ उचित सिंगार के प्रस्ताव तेँ यह जान्यो जातु है जो पर-पुरुष पै जान लगी है । ६० अ ॥

अथ देशविशेष-वर्णनं, यथा-(दोहा)

हौँ असकति ज्यौँ त्यौँ इतहि, सुमन चुनौँगी चाहि ।
मानि बिनै मेरी अली, और ठौर तूँ जाहि ॥ ६१ ॥

अस्य तिलक

इहाँ ठौर व्यभिचारजोग्य है तातेँ सखी को टारिबो व्यंजित होतु है । ६१ अ ॥

अथ कालविशेष-वर्णनं, यथा-(दोहा)

हौँ जमान हौँ जान दै कहा रही गहि फेट ।
हरि फिरि ऐहैँ होतहीँ बनबागनि सौँ भेट ॥ ६२ ॥

अस्य तिलक

इहाँ बसंत रितु है तातेँ कामोद्दीपन को भरोसो व्यंजित होतु है । ६२ अ ॥

अथ चेष्टाविशेष तेँ व्यंग्य-वर्णनं, यथा-(सवैया)

कसिबे मिस नीबिन के छिन तौ अँग अंगनि दास दिखाइ रही ।
अपने ही भुजानि उरोजनि कौँ गहि जानु सौँ जानु मिलाइ रही ।
ललचौहैँ लजौहैँ हँसौहैँ चितै हित सौँ चित चाय बढ़ाइ रही ।
कनखा करिकै पगु सौँ परिकै पुनि सूने निकेत मैँ जाइ रही ॥६३॥

अस्य तिलक

इहाँ चेष्टनि सौँ बिहार कौँ बुलाइबो व्यंजित होतु है । ६३ अ ॥

---

[६१] असकति–अशक्त (भारत, बेल०) ।
[६१ अ] व्यभिचार–सहेट (भारत) ।
[६२] हौँ०–नहीँ रहत तौ (बेल०) । हरि–घर (वही) ।
[६२ अ] होतु है–है (सर०) ।
[६३] कसिबे०–मुख मोरत नैन की सैनहि दै (बेल०) । अपने ही०–मुरिकै अरिकै दृग सौँ भरिकै जुग भौँहनि भाव बनाइ रही (वही) । 'बेल०' मैँ तीसरा चरण दूसरा है । निकेत–सकेत (बेल०) ।

अथ मिश्रितविशेष-वर्णनं-(दोहा)

बकता अरु बोधव्य सोँ बरन्योँ मिलितबिसेष ।
योँ ही औरौ जानिहैँ, जिनके सुमति असेष ॥ ६४ ॥

यथा

इहि सज्जा अज्जा रहै, इहि हौँ चाहतु सैन ।
हे रतौँधिहे बात यह, सैन-समै भूलै न ॥ ६५ ॥

इहाँ बकता की चातुरी है औ' रतौँधी को बहानो बोधव्य की चातुरी है । ६५ अ ॥

अथ व्यंग्य तेँ व्यंग्य वर्णनं-(दोहा)

त्रिबिधि ब्यंगिहू तेँ कढ़ै, ब्यंगि अनूप सुजान ।
उदाहरन ताके कहौँ, सुनौ सुमति दै कान ॥ ६६ ॥

अथ वाच्यार्थ व्यंग्य तेँ व्यंग्य वर्णनं, यथा

अंबे फिरि मोहिँ कहहिगी, कियो न तूँ गृह-काज ।
कहै सु करि आऊँ अबै, मुद्यो जात दिनराज ॥ ६७ ॥

अस्य तिलक

वाको आयसु मानि निहोरो दै कहूँ जायो चाहति है, यह ब्यंग्यार्थ है दिन ही मैँ परपुरुष-बिहार कियो चाहति है यह दुसरी ब्यंगि है । ६७ अ ॥

अथ लक्षणामूल व्यंग्य तेँ व्यंग्य वर्णनं, यथा-(दोहा)

धनि धनि सखि मोहिँ लागि तूँ, सहे दसन नख देह ।
परम हितू ह्वै लाल सोँ, आई राखि सनेह ॥ ६८ ॥

अस्य तिलक

ध्रृग ध्रृग की ठौर धनि धनि कहति है यह लच्छनामूल ब्यंगि है तातेँ अपराधप्रकासन है यह सो दुसरी ब्यंगि है । ६८ अ ॥

---

[६४] बरन्योँ–बरन्यो (भारत, वेंक०, बेल०) । जिनके–जिनकी (वेल०) ।
[६५] सज्जा०–सज्या अर्जा (सर०); सय्या अत्ता (वेंक०) ।
[६७] जात–चहत (भारत) ।
[६८ अ] धनि धनि–धनि (सर०) । लक्षणामूल–लक्षना (वही) । यह सो–यह (भारत, वेंक०) दुसरी०–दूसरो व्यंग्य (वही) ।

अथ व्यंग्य में व्यंग्यार्थ वर्णनं–(दोहा)

निह्चल बिसनी-पत्र पर, उत बलाक इहि भाँति ।
मरकत-भाजन पर मनौ, अमल संख सुभ काँति ॥ ६९ ॥

अस्य तिलक

बन निरजन है ताही तैं बक निह्चल हैं यह व्यंगि तातैं चलिकै बिहार कीजै प्रीतम सौं सुनायो यह व्यंगि तैं व्यंगि । ६९ अ ॥

इति श्रीसकलकलाधरकलाधरवंशावतंसश्रीमन्महाराजकुमार–
श्रीबाबूहिंदूपतिविरचिते काव्यनिर्णये वाचकलाक्षणिकव्यंजक-
पदपदार्थवर्णनं नाम द्वितीयोल्लासः ॥ २॥

३

अथ अलंकारमूल-वर्णनं–(दोहा)

कहूँ बचन कहुँ व्यंगि मैं, परै अलंकृत आइ ।
तातैं कछु संछेप करि, तिन्हैं देत दरसाइ ॥ १ ॥

अथ उपमालंकारवर्णनं

कहुँ काहू सम बरनिये, *उपमा* सोई मानि ।
बिमल बाल-मुख इंदु सो, यौं ही औरौ जानि ॥ २ ॥
वा सो वहै *अनन्वया*, मुख सो मुख छबिजेय ।
ससि सो मुख मुख सो ससी, यौं *उपमाउपमेय* ॥ ३ ॥
उपमा अरु उपमेय कौं, सम न कहै गहि बैर ।
ताकौं कहत *प्रतीप* हैं, पंच प्रकार सु फेर ॥ ४ ॥

---

[१] वर्णनं–कथनं (भारत, वेंक०) । तातैं–तेहि तैं (बेल०) । तिन्हैं–तिन्हहिं (वही) ।

[२] कहुँ०– कछु काहू (भारत); कहूँ कहूँ (वेंक०) । मानि–मानु (बेल०) । जानि–जानु (वही) ।

[३] वहै–अहै (भारत) । जेय–देय (वेंक०, बेल०) । यौं–सो (बेल०) ।

अथ पाँचौ प्रकार प्रतीप, यथा–(सवैया)

चंद कहैं तिय आनन सो जिनकी मति वाके बखान सों है रली।
आनन एकता चंद लखैं मुख के लखें चंद-गुमान घटै अली।
दास न आनन सो कहौ चंद दई सों भई यह बात न है भली।
ऐसो अनूप बनाइकै आनन राखिबे कों ससिहू की कहा चली ॥५॥

अथ दृष्टांतालंकारवर्णनं–(दोहा)

सम बिंबनि प्रतिबिंब गति, है *दृष्टांत* सुढंग।
तरुनी मो मो मन बसै, तरु मो बसै बिहंग ॥ ६ ॥
सामान्य तें बिसेष दृढ़, है *अर्थांतरन्यास*।
तो रस बिनु और कहा, जल बिनु जाइ न प्यास ॥ ७ ॥
द्वै सु एक ही अर्थ बल, *निदरसना* की टेक।
सतनि असत सों माँगिबो, अरु मरिबो है एक ॥ ८ ॥
सम सुभाय हित अहित पर, *तुल्यजोगिता* चारु।
सम फल चाखै दाख सों, सींचनि काटनि हारु ॥ ६ ॥

अथ उत्प्रेक्षादिवर्णनं–(दोहा)

जहाँ कछू कछु सो लगै, समुझत देखत उक्त।
उत्प्रेक्षा तासों कहैं, पवन मनो बिषजुक्त ॥ १० ॥
चंद मनो तम ह्वै चल्यो, जनु तियमुख ससि हेत।
दास जानियत दुरन कों, रंग लियो सजि सेत ॥ ११ ॥
यह नहिं यह कहिये जहाँ, तत्सम बस्तु दुराइ।
सु है *अपन्हुति*, अधरछत करत न पिय, हिमि बाइ ॥ १२ ॥

---

[५] अथ–यथा (भारत, वेंक०)। पाँचौ०–पंचो प्रतीप अलंकार को कबित्त (वेंक०); पाँचौ प्रकार प्रतीप को सवैया–(भारत); अथा पाँचौ प्रतीप जथा कबित्त (सर०)। वाके–वाको (सर०); बाँके (भारत, बेल०)। कहौ–कहो (सर० +); कहैं (भारत, वेंक० बेल०)।

[६] सम०–साम बिंब (सर०)। मो मो–मैं मो (भारत, वेंक०, बेल०) मो–मैं (वही)। सतनि०–सत असंत (सर० +)। अरु–औ (भारत, वेंक०, बेल०)।

[६] तुल्य–तुल्ययोग्यता (भारत, वेंक०, बेल०)।

[१२] सु है–वहै (बेल०)। हिमि–हिय (वेंक०); हिम (बेल०)।

लच्छन नाम प्रकास है, *सुमिरन भ्रम संदेह*।
जदपि भिन्नहूँ हैँ तदपि, उत्प्रेच्छहि को गेह ॥१३॥

यथा–(सोरठा)

समुझत नंदकिसोर, चंद निरखि तव बदनछबि।
लखि भ्रम रहत चकोर, चंद किधौँ यह बदन है ॥१४॥

अथ व्यतिरेकालंकारवर्णनं–(दोहा)

व्यतिरेक जु गुन दोष गनि, समता तजै यकंक।
क्यों सम मुख निकलंक यह, वह सकलंक मयंक ॥१५॥
आरोपन उपमान को, ताको रूपक नाम।
कान्ह कुँअर कारी घटा, बिज्जुछटा तूँ बाम ॥१६॥

अथ अतिशयोक्तिवर्णनं

अतिसयोक्ति अति बरनिये, औरै गुन बल भार।
दाबि सैल महि निमिष मैँ, कपि गो सागर-पार ॥१७॥
है *उद्दात* महत्व अरु, संपति को अधिकार।
सुरपति छरियादार, अरु नगनजड़ित मगद्वार ॥१८॥
अधिक जानि घटि बढ़ि जहाँ है अधार आधेय।
जग जाके वोदर बसै, तिहि तूँ ऊपर लेय ॥१९॥

अथ अन्योक्त्यादिवर्णनं

अन्यउक्ति औरहि कहैं. औरहि के सिर डारि।
सुक सेवँर को सेइबो, अजहूँ तजै बिचारि ॥२०॥
व्याजस्तुति पहिचानिये, .अस्तुति निंदा ब्याज।
बिरहताप वाकों दियो, भलो कियो बृजराज ॥२१॥
परजायोक्ति जहाँ नई, रचना सौँ कछु बात।
बंदौं व्यालबिछावनो, जा तापत दुज-लात ॥२२॥

---

[१५] व्यतिरेक०–व्यतिरेक गुन (सर० ÷) ; ब्यतिरेकै (सर०+)।
[१७] बरनिये–बरनि यह (सर०, वेंक०)। मैँ–महँ (भारत, बेल०)।
[१८] सुरपति०–छरीदार जहँ इंद्र है (बेल०)।
[२०] तजै–तजहि (भारत, वेंक०, बेल०)।
[२१] अस्तुति०–स्तुति निंदा के (भारत, वेंक०, बेल०)।
[२२] जा०–जा तम्यंत (सर०) ; जा तापस (भारत) ; पायो हिय (वेंक०) ; जासु हृदय (बेल०)।

कहै कहन की बिधि मुकुरि, कै *आक्षेप* सुबेस ।
बिरह बरी को मैं नहीं, कहती लाल-सँदेस ॥२३॥

अथ विरुद्धालंकारवर्णनं

है *बिरुद्ध* अबिरुद्ध मैं बुधिबल सजै बिरुद्ध ।
कुटिल कान्ह क्यों बस कियो, लली बानि तुव सुद्ध ॥२४॥
बिन कारन कारज प्रगट, *बिभावना* बिस्तारु ।
चितवतहीं घायल करै, बिन अंजन दृग चारु ॥२५॥
बिसेषोक्ति कारज नहीं, कारन की अधिकाइ ।
महा महा जोधा थके, टर्‌यौ न अंगद-पाइ ॥२६॥

अथ उल्लसादिवर्णनं

गुन औगुन कछु और तैं, और धरै *उल्लास* ।
सत परदुख तैं दुख लहैं, परसुख तैं सुख *दास* ॥२७॥
अलंकार *तदगुन* कहौं, संगति गुन गहि लेत ।
होत लाल तिय के अधर मुक्त हँसत फिरि सेत ॥२८॥
है *समान मिलितै* गनौ, मिलित दुहू बिधि *दास* ।
मिली कमल मैं कमल-मुखि, मिली सुबास सुबास ॥२९॥
है *बिसेष उनमिलित* मिलि क्यौं हूँ जान्यो जाइ ।
मिल्यो कमल-मुख कमल-बन, बोलतहीं बिलगाइ ॥३०॥

अथ समालंकारवर्णनं

उचित बात ठहराइये, *सम* भूषन तिहि नाम ।
या कजरारे दृगनि बसि, क्यौं न होहिं हरि स्याम ॥३१॥
भावी भूत प्रतच्छ हीं, है *भाविक* को साजु ।
हमैं भयो सुरलोक-सुख, प्रभु-दरसन तैं आजु ॥३२॥
सो *समाधि* कारज सुगम, और हेतु मिलि होत ।
मिलिबे की इच्छा भई, नास्यो दिन-उद्योत ॥३३॥
कछु है होहि *सहोक्ति* मैं, साथहिं परे प्रसंग ।
बढ़न लगी नवबाल-उर, सकुच कुचनि के संग ॥३४॥

---

[२५] बिभावना–बिभावनाद (भारत) ।
[२९] मिलितैं–मिलितौ (भारत, वेंक०, बेल०) ।
[३४] परे–परै (भारत, बेल०) ।

है *बिनोक्ति* कछु बिन कछू, सुभ कै असुभ चरित्र ।
माया बिन सुभ जोग जप, न सुभ सुहृद बिन मित्र ॥३५॥
कछु कछु को बदलो जहाँ, सो *परिवृति* करि डीठि ।
कहा कहौं मनमोहनै, मन लै दीन्ही पीठि ॥३६॥

अथ सूक्ष्मालंकारवर्णनं

संज्ञा ही बातैं कियें, *सूक्षम* भूषन नाम ।
निज निज उर छ्वै छ्वै करी, सौहैं स्यामा स्याम ॥३७॥
सभिप्राय बिसेषननि, *परिकर* भूषन जानि ।
देव चतुरभुज ध्याइये, चारि पदारथ दानि ॥३८॥

अथ स्वभावोक्तिवर्णनं

सूधी सूधी बात सौं, *सुभावोक्ति* पहिचानि ।
हरि आवत माथे मुकुट, लकुट लिये बर पानि ॥३९॥
हेतुसमर्थन जुक्ति सौं, *काव्यलिंग* को अंग ।
धृग धृग धृग जग राग बिनु, फिरि फिरि कहत मृदंग ॥४०॥
इहै एक नहिं और कहिं *परिसंख्या* निरसंक ।
एक राम के राज मैं, रह्यो चंद सकलंक ॥४१॥
प्रस्नोत्तर कहिये जहाँ, प्रस्नउत्तर बहु बंद ।
बाल अरुन क्यौं नयन बिय, दिय प्रसाद नखचंद ॥४२॥

अथ संख्यालंकारवर्णनं

बस्तु अनुक्रम है जहाँ, *जथासंख्य* तिहि नाम ।
रमा उमा बानी सदा, हरि हर बिधि सँग बाम ॥४३॥
कियँ जँजीराजोर पद, *एकावली* प्रमान ।
स्रुतिबसि मति मतिबसि भगति, भगतिबस्य भगवान ॥४४॥
तजि तजि आस्रय करन तैं, जानि लेहु *परजाय* ।
तनु तजि बाढ़ि दृगनि गई थिरता दृग तजि पाय ॥४५॥

इति अलंकार

---

[३९] आवत–आए (सर०) ।
[४२] बिय–बिन (वेंक०)
[४४] जोर–जोरि (भारत, बेल०) । बसि–बस (भारत, वेंक०, बेल०) ।
[४५] आस्रय–आसय (सर०, भारत, वेंक०, बेल०) । करम–कर्म (वेंक०) ।

अथ संसृष्टिलक्षणं–(दोहा)

एक छंद मैं जहँ परै, अलंकार बहु दृष्टि।
तिल तंदुल से हैं मिले, ताहि कहैं *संसृष्टि* ॥४६॥

यथा–(कवित्त)

घन से सघन स्याम केस बेस भामिनी के,
ब्यालिनि सी बेनी भाल ऐसो एक भाल ही।
भृकुटी कमान दोऊ दुहुँन को उपमान,
नैन से कमल नासा कीर-मद घालही।
गरब कपोलनि मुकुर-समता कौ, सीप
स्रौन आगैं, ओठ-आगैं बिंब पक्क हाल ही।
मोतिन की सुषमा बिलोकियत दंतनि मैं
दास हास बीजुरी कौं देख्यो एक चाल ही ॥४७॥

अस्य तिलक

इहाँ केस पैं पूरनोपमा बेनी पैं लुप्तोपमा, भाल पैं अनन्वय, भृकुटि प उपमानोपमेय, नैन नासिका कपोल पैं तीन्यौ प्रतीप, स्रौन ओठ पैं चोथो प्रतीप कै दृष्टांत कै तुल्यजोगिता, दंतनि पैं औ' हास्य पैं निदर्सना भिन्न भिन्न पाइयतु है तातैं संसृष्टि कहिये। ४७ अ॥

पुनर्यथा

ती को मुख इंदु है जु स्वेद न सुधा को बुंद,
मोतीजुत नाक मानौ लीने सुक चारो है।
ठोड़ी रूप कूप है कि गाड़ोई अनूप है कि
अभिराम मुख छबिधाम को पनारो है।

---

[४६] से–सौं (सर०)। कहैं–कहौ (वही)।

[४७] बिंब०–बिबिधि यक (सर०); बिंब यक (वेंक०)।

[४७ अ] केस पैं–केस मे (सर०)। पूरनोपमा–पूर्णोपमालंकार (वेंक०)। लुप्तोपमा–लुप्तोपमालंकार (वही)। अनन्वय–अनन्वय अलंकार (वही)। उपमानोपमेय–उपमानो उपमेय (सर०); उपमानोपमेय अलंकार (वेंक०)। पैं–मैं (भारत)। तीन्यौ–तीनो (भारत, वेंक०)। प्रतीप०–प्रतीपालंकार है (वेंक०)। दंतनि–दंत (भारत, वेंक०)। संसृष्टि–संसृष्टि अलंकार (वेंक०)।

ग्रीवा छबि सीवाँ मैँ ललित लाल-माल लखि,
आवत चकोर जानै अमल अँगारो है।
देखत उरोज सुधि आवत है साधुन के,
ऐसोई अचल सिव साहेब हमारो है ॥४८॥

अस्य तिलक

इहाँ मुख पैँ रूपक, स्वेद पैँ अपन्हुति, मोतीजुत नाक पैँ उत्प्रेक्षा, ठोड़ी पैँ संदेह, ग्रीवा पैँ भ्रांति, उरोजनि पैँ सुमिरनालंकार पाइयतु है, तातैँ यहू संसृष्टि है। ४८ अ ॥

अथ अलंकार-संकर-लक्षणं–(दोहा)

द्वै कि तीन भूषन मिलैँ, छीर नीर के न्याय।
अलंकार संकर कहैँ, तिहि प्रबीन कबिराय ॥४९॥
एक एक को अंग कहुँ कहुँ सम होहिँ प्रधान।
कहूँ कहत संदेह मैँ, संकर तीनि प्रमान ॥५०॥

अथ अंगांगिसंकरवर्णनं–(दोहा)

मिटत नहीँ निसि वासरहु आनन-चंद-प्रकास।
बने रहैँ यातैँ उरज पंकजकलिका दास ॥५१॥

अस्य तिलक

इहाँ रूपकालंकार काव्यलिंग-अलंकार को अंग है। ५१ अ ॥

अथ समप्रधानसंकरवर्णनं–(कबित्त)

सुजस गवावैँ भगत नहीँ सोँ हेतु करैँ,
चित अति ऊजरे भजत हरि-नाम हैँ।
दीन के दुखन देखैँ आपने सुखन लेखैँ,
बिप्र पापरत तन मैन मोह-धाम हैँ।

---

[४८] ऐसोई–ऐसई (वेंक०)।
[४८ अ] 'वेंक०' मैँ 'अलंकार' शब्द अलंकार नाम के साथ अधिक है। यहू–यह (भारत); याहू (वेंक०)।
[५०] कहत–रहत (भारत, वेंक०, बेल०)।
[५१] अंगांगि–अंगादि (सर०, भारत, बेल०)।
[५१ अ] है–है याते अंगांगि शंकर है (वेंक०)।

जग पर जाहिर हैं धरमनि बाहिर हैं,
देव-दरसन तें लहत बिसराम हैं।
दासजू • गनाए जे असज्जन के काम हैं,
समुझि देखौ एई सब सज्जन के काम हैं ॥५२॥

अस्य तिलक

इहाँ स्लेष, बिरुद्ध, निदर्सना तीन्यौ प्रधान हैं। ५२ अ ॥

(दोहा)

ग्रंथ-गूढ़ बन तर्पनी, गौनी गनिका बाल।
इनकी सीमा तिलक है, भूमिदेव भुविपाल ॥५३॥

अस्य तिलक

इहाँ स्लेष, दीपक, तुल्यजोगिता तीन्यौ प्रधान हैं। ५३ अ ॥

अथ संदेहसंकर—(कबित्त)

कलप कमलबर बिंबन के बैरी, बंधु-
जीवन के बंधु लाल-लीला के धरन हैं।
संध्या के सुमन सूर-सुअन मजीठ ईठ,
कौहर मनोहर की आभा के हरन हैं।
साहिब सहाब के गुलाब-गुड़हर-गुर,
इँगुर-प्रकास दास लाली के लरन हैं।
कुसुम-अनारी कुरबिंद के अँकुरकारी,
निंदक पवारी प्रानप्यारी के चरन हैं ॥५४॥

---

[५२] हेतु—प्रेम (भारत, वेंक०, बेल०)। ऊजरे—ऊजरो (सर०)। आपने-आपनो (भारत, बेल०)। मैन—मैं जु (वेंक०); मन (बेल०) मोहै—मोह (वेंक०, बेल०)

[५२ अ] हैं—हैं याते समप्रधान शंकर कहा (वेंक०)।

[५३] 'सर०' में छूट गया है।

[५३ अ] तीन्यौ—तीनों अलंकार (वेंक०)। हैं—हैं याते समप्रधान शंकर कहा (वेंक०)।

[५४] लरन—सरन (भारत)। अनारी—अनार (बेल०)।

अस्य तिलक

इहाँ उपमा के, प्रतीप के, व्यतिरेक के, उल्लेख के चार्‍यौ संदेह-संकर है, याको संकीर्न उपमान कहतु हैं। ५४ अ ॥

(दोहा)

बंधु चोर बादी सुहृद, कलह-कल्पतरु जानु।
गुरु रिपु सुत प्रभु कारनो, संकीरन उपमानु ॥५५॥

इति श्रीसकलकलाधरकलाधरवंशावतंसश्रीमन्महाराजाधिराजकुमार-
श्रीबाबूहिंदूपतिविरचिते काव्यनिर्णये अलंकारमूल-
वर्णनं नाम तृतीयोल्लासः ॥३॥

४

अथ रसांगवर्णनं, स्थायी भाव—(दोहा)

प्रीति हसी सोकौ रिसौ उत्साहौ भय मित्त।
घिन बिस्मय थिर भाव ये, आठ बसैं सुभ चित्त ॥१॥

शृंगाररसादि रसपूर्णतावर्णनं

उचित प्रीति रचना-बचन, सो सिँगार रस जानि।
सुनत प्रीतिमय चित द्रवै, तब पूरन करि मानि ॥२॥
हसी भयो चित हसि उठै, जो रचना सुनि दास।
कबि पंडित ताकों कहैं, यह पूरन रस हास ॥३॥

[५४ अ] 'वेंक०' मैं 'के' नहीं है, 'चार्‍यौ' के अनंतर 'अलंकार' शब्द अधिक है। उपमान—उपमा (भारत); उपमा भी (वेंक०)। कहतु—करउ (सर०); कहते (वेंक०)।
[१] सोकौ०—अरु सोक रिस (बेल०); सोकै रिसौ (वेंक०)।
[२] करि०—परिमानि (भारत); परिमान (बेल०)।

सोक, चित्त जाके सुनैं करुनामय ह्वै जाइ।
ता कबिताई कौं कहैं, करुना रस कबिराइ॥४॥
जो उत्साहिल चित्त मैं, देत बढ़ाइ उछाह।
सो पूरन रस बीर है, रचैं सुकबि करि चाह॥५॥
यौं रिस बाढ़े रुद्र रस, भयहि भयानक लेखि।
घिन तें है बीभत्स रस, अद्भुत बिस्मय देखि॥६॥
जा हिय प्रीति न सोक है, हसी न उत्सह-ठान।
ते बातैं सुनि क्यौं द्रवैं, दृढ़ ह्वै रहे पखान॥७॥
तातैं थाई भाव कौं, रस को बीज गनाउ।
कारन जानि बिभाव अरु, कारज है अनुभाउ॥८॥
बिभिचारी तैंतीस ये, जहँ तहँ होत सहाइ।
क्रम तें रंचक अधिक अति, प्रगट करैं थिर भाइ॥९॥
जानौ नायक नाइका, रस-सिंगार-बिभाव।
चंद सुमन सखि दूतिका, रागादिकौ बनाव॥१०॥
औरनि के न बिभाव मैं प्रगटि कह्यो इहि काज,
सबके न्यारे बिभाव हैं, औरौ हैं बहु साज॥११॥
सिंह बिभाव भयानकहुँ, रुद्र बीरहूँ होइ।
ऐसी सामिल रीति मैं, नेम कहै क्यौं कोइ॥१२॥
थंभ स्नेह रोमांच स्वरभंग कंप बैबर्न।
सब ही के अनुभाव ये सात्विक औरौ अर्न॥१३॥
भिन्न भिन्न बरनन करैं, इन सबकौं कबिराइ।
सब ही कौं करि एक पुनि, देत रसै ठहराइ॥१४॥
लखि बिभाव अनुभाव ही, चर थिर भावै नेकु।
रस-सामग्री जो रमै, रसै गनै धरि टेकु॥१५॥

---

[४] सुनैं–सुनत (भारत, बेल०) । होइ–ह्वै (भारत, वेंक०, बेल०) ।
[५] जो–सो (सर०) । [६] यौं-ह्वै (भारत, वेंक०, बेल०) ।
[८] जानि–जानु (सर०) ।
[११] कह्यो–कहे (बेल०) । इहि–यह (सर०) ; एहि (बेल०) ।
[१३] बैबर्न–बैवर्न्य–(भारत) । औरौ–औरै (सर०) । अर्न–अर्न्य (भारत) ; सब अर्न (सर०) ।
[१५] 'सर०' मैं छूट गया है ।

थाई भाव ही, यथा–(कबित्त)

मंद मंद गौने सों गयंद-गति खोने लगी,
बोने लगी बिष सो अलक अहि-छौने सी।
लंक नवला की कुचभारनि दुनौने लगी,
होने लगी तन की चटक चारु सोने सी।
तिरछे चितौने सों बिनोदनि बितौने लगी,
लगी मृदु बातनि सुधा-रस निचोने सी।
मौने मौन सुंदर सलोने पद दास लोने
मुख की बनक ह्वै लगन लगी टोने सी ॥१६॥

बिभाव ही, यथा

धीर धुनि बोलैं थँमि थँमि झर खोलैं, मंडैं,
करत कलोलैं बारिबाहक अकास मैं।
नृत्यत कलापी झिल्ली पिक हैं अलापी,
बिरहीजन बिलापी हैं मिलापी रस-रास मैं।
संपा को प्रकास बक-अवली को अवकास,
बूढ़नि बिकास दास देखिबे कों या समैं।
बनिता-बिलास मन कीन्हो है मुनीपनि,
सु नीपनि की बास. लहि फैली निज बास मैं ॥१७॥

अनुभाव ही, यथा–(सवैया)

जी बँधि हो बँधि जात है ज्यों ज्यों सुत्रोनीतनीन कों बाँधति छोरति।
दास कटीले ह्वै गात कँपैं बिहँसौहीं लजौहीं लसै दृग लोरति।

---

[१६] सो–सों (भारत, वेंक०, बेल०)। भारनि–भारन (वेंक०); भरनि (बेल०)। तिरछे–तिरछी (भारत, वेंक०, बेल०)। चितौने–चितौन (वेंक०, बेल०)। मौने०–मौन मान (वेंक०); मौने मौने (बेल०)।

[१७] नृत्यत–नृत्तित (सर०)। को अवकास–अकास अरु (बेल०)। या०–पास मैं (भारत, बेल०)। कीन्हो–कीन्ही (भारत); कीन्हे (बेल०)। मुनीपनि०–मुनीसन्ह के नीप नीकी (बेल०)। लहि–लखि (भारत, वेंक०)। 'सर०' मैं तीसरा चरण चौथा है।

भौंह मरोरति नाक सिकोरति चीर निचोरति औ' चित चोरति ।
प्यारे गुलाब के नीर मैं बोरयो प्रिया लपटै रस-भीर मैं बोरति ॥१८॥

व्यभिचारी भाव (अपस्मार) वर्णनं-(दोहा)

को जानै कैसी परी, कहूँ बिहाल प्रबीन ।
कहूँ तार तुंबर कहूँ, कहूँ सारि कहुँ बीन ॥ १९ ॥

अथ शृंगाररसवर्णनं

प्रीति नाइका नायकहि, सो सिँगार-रस ठाउ ।
बालक मुनि महिपाल अरु, देव बिषै रतिभाउ ॥ २० ॥
एक होत संजोग अरु, पाँच बियोगहि थापु ।
सो अभिलाष प्रबास अरु, बिरह असूया स्रापु ॥ २१ ॥

अथ संयोगशृंगारवर्णनं-(सवैया)

बिपरीत रची नँदनंद सौं प्यारी अनंद के कंद सौं पागि रही ।
बिथुरे अलकै श्रम के झलकै तन ओप अनूपम जागि रही ।
अति *दास* अघानी अनंगकला अनुरागन ही अनुरागि रही ।
तिरछैं तकिकै छबि सौं छकिकै थिर ह्वै थकिकै हिय लागि रही ॥२२॥

अथ अभिलाषहेतुक वियोग-(दोहा)

सुनैं लखैं जहँ दंपतिहि, उपजै प्रीति सुभाग ।
अभिलाषै कोऊ कहै, काउ पूरबानुराग ॥ २३ ॥

यथा-(कबित्त)

आजु उहि गोपी की न गोपी रही हाल कछु,
हाल बनमाल के हिँडोरे मन झूलि गो ।
अँखिया मुखंबुज मैं भौंर ह्वै समानीं, भई
बानी गदगद कद कदम सो फूलि गो ।

---

[१८] जी०-जीव धौ ही (भारत) । ह्वै-है (वही) । लजौहीं-लजौहैं (वही) । लसै-लसौ (सर०) ; लसैं (भारत) । लोरति-लौं रति (भारत, बेल०) । भौंह-भौंहैं (भारत, बेल०) । बोरयो-बोरे (बेल०) । लपटै-पलटै (भारत, बेल०) ।

[१९] कहूँ सारि-कहुँ सारी (भारत, बेल०) ।

[२२] बिथुरे-बिथुरी (वैंक०) ।

[२३] पूरबा०-पूरब अनुराग (वैंक०) ; पूरब अनुराग (बेल०) ।

जा मग सिधारे नँदनंद ब्रजस्वामी दास,
　　जिनकी गुलामी मकरध्वज कबूलि गो।
वाही मग लागी नेह-घट मैं गँभीर भरि,
　　नीर भरिबे को घट घाट ही मैं भूलि गो ॥ २४ ॥

अथ प्रवासहेतुक वियोग—(दोहा)

प्रीतम गए बिदेस जौ बिरह-जोर सरसाइ।
वही प्रवास-बियोग है, कहैं सकल कबिराइ ॥ २५ ॥

यथा—(कबित्त)

चंद चढ़ि देखै चारु-आनन, प्रबीन गति
　　लीन होतो माते गजराजनि कों ठिलि ठिलि।
बारिधर-धारनि तें बारनि पै ह्वै रहै,
　　पयोधरनि छ्वै रहै पहारनि कों पिलि पिलि।
दई निरदई दास दीन्हो है बिदेस तऊ,
　　करौं न अँदेस तुव ध्यान ही मैं हिलि हिलि।
एक दुख तेरे हौं दुखारी, नत प्रानप्यारी,
　　मेरो मन तोसों नित आवतो है मिलि मिलि ॥ २६ ॥

बिरहहेतुक, यथा—(सवैया)

नैननि कों तरसैये कहाँ लौं कहाँ लौं हियो बिरहागि मैं तैये।
एक घरी न कहूँ कल पैये कहाँ लगि प्राननि कों कलपैये।
आवै यही अब जी मैं बिचार सखी चलि सौतिहूँ के गृह जैये।
मान घटे तें कहा घटिहै जु पै प्रानपियारे कों देखन पैये ॥२७॥

---

[२४] न गोपी—न गोइ (सर०)। भौंर—भोर (भारत); भार (वेंक०)। कद—कंठ (भारत, बेल०)। कदम—कदंमन (सर०)। लागी—लागो (बेल०)। भरि—भरी (सर०, भारत, वेंक०); भारी (बेल०)। घट—घाट (वेंक०)। घाट ही—घाट हा (सर०); घाटहि (भारत, वेंक०, बेल०)।

[२६] होतो—होत (बेल०)। पै—यौं (भारत)। छ्वै—ज्वै (वेंक०)। दीन्हो—दीने (सर०)। मैं-सौं (वही)। तेरे—तेरो (भारत, वेंक०)। नत—नित (वेंक०)। आवतो—आवत (भारत, बेल०)।

असूयाहेतुक वियोग, यथा—(कवित्त)

नीँद भूख प्यास उन्हैँ ब्यापति न तापसी लौँ,
ताप सी चढ़ति तन चंदन लगाए तैँ।
अति ही, अचेत होत चैतहू की चाँदनी मैँ,
चंद्रक खवाए तैँ गुलाबजल न्हाए तैँ।
दास भो जगतप्रान प्रान को बधिक औ'
कृसान तैँ अधिक भयो सुमन बिछाए तैँ।
नेह के बढ़ाए उन एते कछु पाए, तेरो
पाइबो न जान्यो बलि भौँहनि चढ़ाए तैँ ॥ २८ ॥

शापहेतुक वियोग, यथा—(दोहा)

सबतैँ माद्री-पांडु को स्राप भयो दुखदानि।
बसिबो एकहि भौन को, मिलत प्रान की हानि ॥ २९ ॥

बालविषे रतिभाव वर्णनं

चूमिबे के अभिलाषन पूरिकै दूरि तैँ माखन लीने बुलावति।
लाल गुपाल की चाल बकैयन दास जू देखतहीँ बनि आवति।
ज्यौँ ज्यौँ हँसैँ बिकसैँ दतियाँ मृदु आनन-अंबुज मैँ छबि छावति।
त्यौँ त्यौँ उछंग लै प्रेम-उमंग सौँ नंद की रानी अनंद बढ़ावति ॥३०॥

मुनिविषे रतिभाव वर्णनं

आजु बड़े सुकृती हमहीँ, भयो पातकु हाँति हमारी धरा तैँ।
पूरब ही कियो पुन्य बड़ोई भयो प्रभु को पगु धारिबो तातैँ।
आगमु है सब भाँति भलोई बिचारिये दास जू एती कृपा तैँ।
श्रीरिषिराज तिहारे मिले हमैँ जानि परी तिहुँ काल की बातैँ ॥३१॥

---

[२८] तापसी०—घाम सीत (बेल०)। प्रान को—प्रानऊ (वही)। भयो—भए (सर०)। उन—वोन्ह (सर०); वोन (भारत)। एते—एतो (वेंक०)।
[२९] भई—भयो (वेंक०, बेल०)।
[३१] हाँति—हानि (भारत, वेंक०, बेल०)। पूरब ही—पूरब हूँ (भारत, वेंक०, बेल०)। पगु—पद (वही)। आगमु—आप को (वेंक०)। बिचारिये—बिचारिबो (वही)। एती—याती (सर०)।

अथ हास्यरसवर्णनं (कबित्त)

काहूँ एक *दास* काहूँ साहिब की आस मैं,
कितेक दिन बीत्यो रीत्यो सब भाँति बल है।
बिथा जौ बिनै सौं कहै उतरु यहीं तौं लहै,
'सेवाफल ह्वै ही रहै यामैं नहिं चल है'।
एक दिन हासहित आयो प्रभुपास, तन
राखे न पुरानो बास कोऊ एक थल है।
करत प्रनाम सो बिहसि बोल्यो 'यह कहा',
कह्यो कर जोरि 'देवसेव ही को फल है' ॥३२॥

अथ करुणरसवर्णनं

बतियाँ हुतीं न सपनेहूँ सुनिबे की सो
सुनी मैं जो हुतीं न कहिबे की सो कह्योई मैं।
रोवैं नर नारी पच्छी पसु देहधारी रोवैं,
परम दुखारी ऐसे सूलनि सह्योई मैं।
हाय अपलोक-ओक-पंथहि गह्यो मैं
बिरहागिनि दह्यो मैं सोक-सिंधुनि बह्योई मैं।
हाय प्रानप्यारे रघुनंदन दुलारे तुम,
बन कों सिधारे प्रान तन लै रह्योई मैं ॥३३॥

अथ वीररसवर्णनं

देखत मदंध दसकंध अंधधुंध दल,
बंधु सौं बलकि बोल्यो राजाराम बरिबंड।
लच्छन बिचच्छन सँभारे रहो निज पच्छ,
देखिहौं अकेले हौं हीं अरि-अनी परचंड।

---

[३२] दास काहूँ–दास कहूँ (सर०)। आस–आसै (सर०, भारत, वेंक०)। बीत्यो–बीते (बेल०)। सब–सबै (भारत, बेल०)। जौ–औ (भारत)। कहै–करै (सर०)। यही तौ–याही तैं (सर०); पहीतै (भारत); याही सो (बेल०)। हास०–दास पर (भारत)। सेव–सेवा (भारत , वेंक०, बेल०)।

[३३] सुनी–सुन्यो (भारत, वेंक०)। रोवैं नर–सारे नर (भारत)। रोवैं–सबै (बेल०)। मैं–पै (भारत, बेल०)।

आजु अन्हवावौं इन सत्रुन के स्रोनितनि
दास भनि बाढ़ी मेरे बाननि तृषा अखंड।
जागि पुन सक्कस तरक्कि उठ्यो तक्कस,
करक्कि उठ्यो कोदँड फरक्कि उठ्यो भुजदंड ॥३४॥

अथ रौद्ररसवर्णनं–(सवैया)

क्रुद्ध दसानन बीस कृपाननि लै कपि रीछ अनी सरबट्टत।
लच्छन तच्छन रत्त किये दृग लच्छ बिपच्छ के सिर कट्टत।
मारु पछारु पुकारु दुहूँ दल रुंड झपट्टि दपट्टि लपट्टत।
रुद्र लरैं भट मत्थनि लुट्टत जोगिनि खप्पर-ठट्टनि ठट्टत ॥३५॥

अथ भयानकरसवर्णनं–(कबित्त)

आयो सुनि कान्ह भूल्यो सकल हुस्यारपन,
स्यारपन कंस को न कहतु सिरातु है।
ब्याल बलपूर औ' चनूर द्वार ठाढ़े तऊ,
भभरि भगाइ भयो भीतर ही जातु है।
दास ऐसी डर डरी मति है तहाँऊ ताकी,
भरभरी लागी मन, थरथरी गातु है।
खरहू के खरकत धकधकी धरकत,
भौन-कोन सकुरत सरकत जातु है ॥३६॥

अथ बीभत्सरसवर्णनं

बरषा के सरे मरे मृतकहु खात न
घिनात, करै कृमि-भरे माँसनि के कौर को।
जीवत बराह को उदर फारि चूसत है,
भावै दुरगंध यों सुगंध जैसे बौर को।

---

[३४] अन्हवावौं–अघवाऊँ (भारत, वेंक०, बेल०)। तक्कस–सक्कस (भारत, वेंक०)। 'भारत' मैं यह रौद्ररस का उदाहरण है।

[३५] कृपाननि–भुजानि सौं (भारत, वेंक०, बेल०)। बिपच्छन–बिपच्छिन (बेल०)। 'भारत' मैं यह वीररस का उदाहरण है।

[३६] बल–बर (सर०, भारत)। भयो–भए (सर०); गए (भारत); चलो (बेल०)। भीतर–नातर (सर०)।

देखत सुनत सुधि करतहू आवै घिन,
सजै सब अंगनि घिनावने ही डौर को।
मति के कठोर मानि धरम को तौर करै,
करम अघोर डरै परम अघोर को ॥३७॥

अथ अद्भुतरसवर्णनं

सिव सिव कैसो हुत्यो छोटो सो छबीलो गात,
कैसो चटकीलो मुख चंद सो सोहावनो।
दास कौन मानिहै प्रमान यह ख्याल ही मैं,
सिगरो जहान द्वैक फाल बीच ल्यावनो।
बार बार आवै यही जिय मैं बिचार, यह
बिधि है कि हर है कि परमेस पावनो।
कहिये कहा जू कछू कहत न बनि आवै,
अति ही अचंभा भरयो आयो यह बावनो ॥३८॥

अथ व्यभिचारीभाव-लक्षणं

निरबेद ग्लानि संका असूया औ' मद स्रम,
आलस दीनता चिंता मोह स्मृति धृति जानि।
व्रीड़ा चपलता हर्ष आबेग औ' जड़ता,
बिषाद उत्कंठा निद्रा औ' अपस्मार मानि।
स्वपन बिबोध अमरष अवहित्थ गर्ब,
उग्रता औ' मति ब्याधि उन्माद मरन आनि।
त्रास वो बितर्क ब्यभिचारी भाव तैंतिस ये,
सिगरे रसनि के सहायक सो पहिचानि ॥३९॥

---

[३७] यौं–वो (भारत, वेंक०) ; सो (बेल०) । डौर–ठौर (बेल०) ।

[३८] कैसो–कैसे (भारत) । हुत्यो–सोहै (बेल०) । फाल–पाल (भारत) ।
जिय–मन (बेल०) । इसके अनंतर 'बेल०' मैं ये दो दोहे अधिक हैं—
ब्यभिचारीभावलक्षण–(दोहा)
जे न बिमुख ह्वै थाय के अभिमुख रहैं बनाय।
ते ब्यभिचारी बरनिये कहत सकल कबिराय ॥
रहत सदा थिर भाव मैं प्रगट होत एहि भाँति।
ज्यौं कल्लोल समुद्र मैं त्यौं संचारी जाति ॥

[३९] गर्ब–गनि (सर०, भारत, वेंक०) । सो–से (भारत, वेंक०, बेल०)।

(दोहा)

नाटक मैँ रस आठई, कह्यो भरत रिषिराइ ।
अँनत नवम किय सांत रस, तहँ निरबेदै थाइ ॥४०॥

अथ शांतरस-लक्षणं

मन बिराग सम सुभ असुभ सो निरबेद कहंत ।
ताहि बढ़े तेँ होतु है, संत-हिये रस संत ॥४१॥

यथा–(सवैया)

भूखे अघाने रिसाने रसाने हितू अहितूनि सोँ स्वच्छ-मने हैँ ।
दूषन भूषन कंचन काँच जु मृत्तिका मानिक एक गने हैँ ।
सूल सोँ फूल सोँ साल प्रबाल सोँ *दास* हिये सम सुख्ख सने हैँ ।
राम के नाम सोँ केवल काम तई जग जीवनमुक्त बने हैँ ॥४२॥

(दोहा)

सिंगारादिक भेद बहु, अरु बिभिचारी भाउ ।
प्रगट्यो *रससारंस* मैँ, ह्याँ को करै बढ़ाउ ॥४३॥
भाव उदै संध्यौ सबल, सांत्यौ भावाभास ।
रसाभास ये मुख्य कहु, होत रसहि लौँ *दास* ॥४४॥

भाव-उदय-संधि-लक्षणं

उचित बात ततत्त्तन लखैँ, उदै भाव को होइ ।
बीचहि मैँ द्वै भाव के, भाव-संधि है सोइ ॥४५॥

भाव-उदय, यथा–(सवैया)

देखि री देखि अलीसँग जाइ धौँ कौनि है का घर मैँ ठहराति है ।
आनन मोरिकै नैननि जोरि अबै गई ओझल ह्वै मुसकाति है ।
*दास*जू जा मुखजोति लखे तेँ सुधाधर-जोति खरी सकुचाति है ।
आगि लिये चली जाति सु मेरे हिये बिच आगि दिये चली जाति है ॥४६

---

[४१] संत-हिये–शांत हिये (बेल०) ।
[४२] साल–माल (भारत, बेल०) । प्रबाल–पलास (वेंक०) ।
[४४] कहु–हैँ (बेल०) । संध्यौ–सांत्यो (भारत) । सांत्यो–सांतिहु (बेल०) ।
[४६] ह्वै–कै (भारत, बेल०) ।

भाव-संधि, यथा–(दोहा)

कंसदलन पर दौर उत, इत राधाहित जोर।
चलि रहि सकै न स्याम-चित, ऐंच लगी दुहुँ ओर ॥४७॥

भावशबल-लक्षणं

बहुत भाव मिलिकै जहाँ, प्रगट करैं इक रंग।
सबल भाव तासों कहैं, जिनकी बुद्धि उतंग ॥४८॥
हरि-संगति सुखमूल सखि, ये परपंची गाउँ।
तूँ कहि तौ तजि संक उत, द्रग बचाइ द्रुत जाउँ ॥४९॥

अस्य तिलक

उत्कंठा, संका, दीनता, धृति, अवहित्था आवेग को सबल है ।४९ अ॥

भावशांति, भावाभास लक्षणं–(दोहा)

भावसांति सो है जहाँ, मिटत भाव अन्यास।
भाव जु अनुचित ठौर है, सोई भावाभास ॥५०॥

भावशांति, यथा

बदन-प्रभाकर-लाल लखि, बिकस्यो उर-अरबिंद।
कहौ रहौ क्यों निसि बस्यो, हुत्यो जु मान-मलिंद ॥५१॥

भावाभास, यथा

दरपन मैं निज छाँह सँग, लखि प्रीतम की छाँह।
खरी ललाई रोस की, ल्याई अँखियन माँह ॥५२॥

अस्य तिलक

नाहक को क्रोध भाव है तातैं भावाभास कहिये । ५२ अ ॥

---

[४७] पर–को (बेल०)।
[४९] ये–है (वेंक०)।
[४९ अ] सबल–सबलता (वेंक०)।
[५०] सो–सी (भारत)।
[५१] रहौ–रहै (भारत, वेंक०, बेल०)।
[५२] ल्याई–स्याइ (सर०)।
[५२ अ] नाहक को–नाहक (वेंक०)।

अथ रसाभास-वर्णनं-(दोहा)

सुधा सुरा ढर तुव नजरि, तूँ मोहिनी सुभाइ।
अछकन्ह देत छकाइ है, मार-मरन्ह कौं ज्याइ ॥५३॥

अस्य तिलक

एक नाइका बहुत नायक कौं बस करै तातैं रसाभास। ५३ अ ॥

(दोहा)

भिन्न भिन्न जद्यपि सकल, रस भावादिक दास।
रसै ब्यंगि सबको कह्यो धुनि को जहाँ प्रकास ॥५४॥

इति श्रीसकलकलाधरकलाधरवंशावतंसश्रीमन्महाराजकुमार-
श्रीबाबूहिंदूपतिविरचिते काव्यनिर्णये रसांग-
वर्णनं नाम चतुर्थोल्लासः ।

५

अथ रस को अपरांग वर्णनं-(दोहा)

रस भावादिक होत जहँ, और और को अंग।
तहँ अपरांग कहैँ कोऊ, कोउ भूषन इहि ढंग ॥१॥
रसवत प्रेया उर्जस्वी, समाहितालंकार।
भावोदयवत संधिवत, और सबलवत धार ॥२॥

---

[५३] ढर—धर (भारत, वेंक०, बेल०)।
[५३ अ] करै—करै है (भारत, वेंक)।
[५४] रसै—रस्स (सर०)
[१] और०—जुगल परस्पर (बेल०)।
[२] प्रेया—प्रेयो (भारत, वेंक०)। उर्जस्वी—उर्जसी (भारत, बेल०)। धार—सार (बेल०)।

रसवतालंकार-लक्षणं

जहँ रस को कै भाव को, अंग होइ रस आइ।
तहिं रसवत भूषन कहैं, सकल सुकबि-समुदाइ ॥३॥

अथ शांत रसवत-अलंकार-वर्णनं–(सवैया)

बादि छओ रस ब्यंजन खाइबो बादि नवो रस मिस्रित गैबो।
बादि जराइ प्रजंक बिछाइ प्रसून घने परि पा पलुटैबो।
दासजू बादि जनेस मनेस धनेस फनेस गनेस कहैबो।
या जग मैं सुखदायक एक मयंकमुखीन को अंक लगैबो ॥४॥

श्रृंगाररसवत-वर्णनं–(दोहा)

चंदमुखिन के कुचन पर, जिनको सदा बिहार।
अहह करै ताही करन, चरबन फेरवदार ॥५॥

अद्भुत रसवत-वर्णनं–(सवैया)

जाहि दवानल पान किये तैं बढ़ी हिय मैं सरदी सरदे सौं।
दास अघासुर जोर हरयो जु लरयो बतसासुर से बरदे सौं।
बूड़त राखि लियो गिरि लै बृज देस पुरंदर बेदरदे सौं।
ईस हमैं पर दे परदे सौं मिलौं उड़ि ता हरि सौं परदेसौं ॥ ६ ॥

---

[३] होइ–होत (भारत, वेंक०, बेल०)।

[४] छओ–नवो (वेंक०)। जराइ–जराउ (भारत, वेंक०, बेल०)। प्रजंक–मयंक (वेंक०)। पा०–पाय लुढ़ैबो (वेंक०, बेल०) ; पाय लुटैबो (भारत)।

[४ अ] एक...को अं–'सर०' मैं छूट गया है। को अंग–के अंग मैं (भारत वेंक०)। 'भारत, वेंक०' मैं यह तिलक संख्या ५ अ के अंत मैं है।

[५] चरबन–चखन (भारत) ; चिरियन (बेल०)। फेरवदार–फैरबरदार (भारत)।

[५ अ] अंगु-अंग भयो (भारत)। 'सर०' मैं ५ को ६ संख्या पर रखा है।

[६] बढ़ी०–बढ़ो हिये (भारत)। हरयो–हयो (सर०) ; हत्यो (भारत)। लरयो–लह्यो (भारत, वेंक०)। मिलौं–मिलै (सर०, भारत) ; मिलैं (बेल०)। हरि–भाव (सर०) ; को (भारत)।

अस्य तिलक

इहाँ चिंता भाव को अद्भुत रस अंग है । ६ अ ॥

भयानक रसवत-वर्णनं-(सवैया)

भूल्यो भिरै भ्रमजाल मैँ जीव के ख्याल की ख्याल मैँ फूल्यो फिरै है ।
भूत सु पाँच लगे मजबूत ह्वै साँच अबूत ह्वै नाच नचैहै ।
कान मैँ आनु रे *दास*-कही कोँ नहीँ तौ तँही मन ही पछितैहै ।
काम के तेज निकाम तपै बिन राम जपैँ बिसराम न पैहै ॥७॥

अस्य तिलक

इहाँ सांत रस को भयानक रस अंग है । ७ अ ॥

इति रसवत

अथ प्रेयालंकार-वर्णनं-(दोहा)

भावै जहँ ह्वै जात है, रस-भावादिक-अंग ।
सो प्रेयालंकार है, बरनत बुद्धि-उतंग ॥ ८ ॥

यथा-(सवैया)

मोहन आपनो राधिका को बिपरीति को चित्र बिचित्र बनाइकै ।
डीठि बचाइ सलोनी की आरसी मैँ चपकाइ गयो बहराइकै ।
घूमि घरीक मैँ आइ कह्यो कहा बैठी कपोलनि चंदन लाइकै ।
दर्पन त्योँ तिय चाह्यो तहीँ मुसुक्याइ रही दृग मोरि लजाइकै ॥९॥

अस्य तिलक

इहाँ हास्य रस को लज्जा भाव अंग है । ९ अ ॥

---

[७] भिरै–फिरै (भारत, वेंक०, बेल०) । ख्याल मैँ–खाल मैँ (वही) । फूल्यो–फूले (सर०) । ह्वै नाच–कुनाच (बेल०) । कान–कानु (सर०) । तौ–तैँ (भारत, वेंक०) । तँही–तुही (वही); तुहीँ (बेल०) । ही–मैँ (भारत, वेंक०, बेल०) ।

[७ अ] सांत रस–सांत रस अंग (भारत) ।

[९] आपनो–आपन (भारत, बेल०); आपने (वेंक०) । चंदन०–चंद्र तु लाइ (वेंक०) ।

[९ अ] लज्जा–लज्या (रस०) ।

(दोहा)

दुरैँ दुरैँ तकि दूर तेँ, राधे आधे नैन।
कान्ह कँपित तुअ दरस तेँ, गिरि डगुलात गिरै न ॥१०॥

अस्य तिलक

इहाँ कंप भाव को संका भाव अंग है। १० अ ॥

यथा—(सवैया)

पीत पटी कटि मैँ लकुटी कर गुंज के पुंज गरैँ दरसावै।
सौरभ-मंजरी कानन मैँ सिखिपच्छनि सीस-किरीट बनावै।
दास कहा कहौँ कामरि ओढैँ अनेक बिधाननि नैन नचावै।
कारे डरारे निहारि इन्हैँ सखि रोम उठै अँखिया भरि आवै ॥११॥

अस्य तिलक

इहाँ अवहित्था भाव को निंदा भाव अंगु है। ११ अ ॥

अथ ऊर्जस्वी-अलंकार-वर्णनं—(दोहा)

काहू को अँग होत रस भावाभास जु मित्त।
ऊर्जस्वी भूषन कहैँ, ताहि सुकबि धरि चित्त ॥१२॥

यथा—(सवैया)

ऊधो तहाँई चलौ लै हमैँ जहँ कूबरि कान्ह बसैँ इकठोरी।
देखिये दास अघाइ अघाइ तिहारे प्रसाद मनोहर जोरी।
कूबरी सौँ कछु पाइये मंत्र लगाइये कान्ह सौँ प्रेम की ढोरी।
कूबर-भक्ति बढ़ाइये बृंद चढ़ाइये चंदन बंदन रोरी ॥१३॥

अस्य तिलक

सौति को मुख देखिबे की उत्कंठा, मंत्र लीबे की चिंता और कूबर की भक्ति ये तीन्यौ भावाभास हैँ सो बीभत्स रस को अंगु है।१३अ॥

---

[११] पुंज०—माल हियैँ (भारत, वेंक०, बेल०) । नैन—भौँह (वही)। निहारि—निहारे (भारत, बेल०)।

[१३] ढोरी—डोरी (भारत, वेंक०, बेल०) । कूबर—कूबरी (सर०)।

[१३ अ] को—की (सर०); के (भारत, वेंक०, बेल०) । लीबे—लेबे (भारत)।

यथा–(सवैया)

चंदन-पंक लगाइकै अंग जगावती आगि सखी बरजोरैं ।
तापर *दास* सुबासन ढारिकै देति है बारि बयारि झकोरैं ।
पापी पपीहा न जीहा थकै तुअ पी पी पुकार ककै उठि भोरैं ।
देत कहा है दहे पर दाहि गई करि जाहि दई के निहोरैं ॥१४॥

अस्य तिलक

पपीहा सौँ दीनता भावाभास है सो बिषाद भाव प्रलाप दसा को अंगु है । १४ अ ॥

यथा–(कबित्त)

दारिद बिदारिबे की प्रभु के तलास तौ
हमारे इहाँ अनगन दारिद की खानि है ।
अघ की सिकारी जौ है नजरि तिहारी तौ हौँ
तन मन पूरन अघनि राख्यो ठानि है ।
दास निज संपति सुसाहिब के काज आए,
होत हरषित पूरो भाग उनमानि है ।
आपनी बिपति कौँ हजूर हौँ करत, लखि
रावरे की बिपति-बिदारन की बानि है ॥१५॥

अस्य तिलक

दानबीर को रसाभास है सो दीनता भाव को अंगु है । १५ अ ॥

अथ समाहितालंकार-वर्णनं–(दोहा)

काहू को अँग होत है, जहँ भावन की साँति ।
समाहितालंकार तहँ, कहँ सुकबि बहु भाँति ॥१६॥

यथा

राम-धनुष-टंकोर जहँ, फैल्यो सब जग सोर ।
गर्भ स्त्रवहिँ रिपुरानियाँ, गर्भ स्त्रवहिँ रिपु जोर ॥१७॥

---

[१४] ककै–कैकै (सर०, वेंक०) ; बकै (भारत) ; करै (बेल०) ।
[१५] के–को (भारत, बेल०) । इहाँ–ह्वाँ ह्याँ (सर०) ; यहाँ (भारत, वेंक०) । हौँ०–होत न चैन (भारत) ।
[१७] जहँ–सुनि (भारत, वेंक०, बेल०) । गर्भ स्त्रवहिँ–गर्व स्त्रवहिँ (वही) ।
[१७ अ] गर्भ–गर्व (भारत, वेंक०) ।

अस्य तिलक

भयानक रस को गर्भ भाव-सांति अंगु है। १७ अ॥

यथा—(सवैया)

जौ दुख सौं प्रभु राजी रहै तौ कहौ सुख-सिद्धिनि सिंधु बहाऊँ।
पै यह निंदा सुनौ निज स्रौन सौं कौन सौं कौन सौं मौन गहाऊँ।
मैं यहि सोच बिसूरि बिसूरि करौं बिनती प्रभु साँझ पहाऊँ।
तीनिहु लोक के नाथ समत्थहू मैं ही अकेलो अनाथ कहाऊँ॥१८॥

अस्य तिलक

निंदा सुनिबे की कोप-सांति चिंता भाव को अंगु है। १८ अ॥

अथ भावसंधिवत्-लक्षणं—(दोहा)

भावसंधि अँग होइ जौ, काहू को अनयास।
भावसंधिवत तिहि कहैं, पंडित बुद्धिबिलास॥१९॥

यथा

पिय-पराधु तिल-आधु, तिय साधु अगाधु गनै न।
जानि ललौहैं होहिंगे, सौहैं करति न नैन॥२०॥

अस्य तिलक

उत्तमा नाइका मैं क्रोध अवहित्था उत्कंठा लज्जा की संधि अपरांग है। २० अ॥

अथ भावोदयवत्-लक्षणं—(दोहा)

रस भावादिक को जु कहुँ, भाव उदय अँग होइ।
भावोदयवत तिहि कहैं, दास सुमति सब कोइ॥२१॥

यथा

चलत तिहारे प्रानपति चलिहैं मेरे प्रान।
जगजीवन तुम बिन हमैं, धृग जीवन जग जान॥२२॥

---

[१८] सिंधु—दूरि (भारत, वेंक०, बेल०)। हूँ—हौ (भारत, बेल०); हैं (वेंक०)। अकेलो—अकेली (वही)।

[२०] 'पराधु-अपराध अगाध तिय साधु सु नेकु (बेल०)। ललौहैं-लजौहैं (भारत, बेल०)।

अस्य तिलक

इहाँ प्रवसत्प्रेयसी नाइका को ग्लानि भावउदै अंगु है। २२ अ ॥

अथ भावशबलवत्-लक्षणं-(दोहा)

भावसबल कहि *दास* जौ, काहू को अँग होइ।
भाव सबलवत तिहि कहैं, कबि पंडित सब कोइ ॥२३॥

यथा-(कबित्त)

मेरो पग झाँवतो हो भावतो सलोनो हौं
हसत कही बालम बिताई कित रतियाँ।
इतनो सुनत रूसि जात भयो, पीछे
पछिताइ हौं मिलन चली, गोए भेष भतियाँ।
दास बिनु भेट हौं दुखित फिरि आई सेज
सजनी बनाई बूझि आइबे की घतियाँ।
बार लागैं लागी मग जोहै हौं, कवार लागी,
हाइ अब तिनको सँदेसऊ न पतियाँ ॥२४॥

अस्य तिलक

इहाँ आठौ नाइका को सबल प्रोषितपतिका नाइका को अंगु है। २४ अ ॥

यथा- कबित्त)

सुमिरि सकुचि न थिराति संकि त्रसति,
तरकि उग्र बानि सगलानि हरषाति है।
उनिदति अलसाति सोअति सधीर चौंकि,
चाहि चिंति स्रमित सगर्ब इरखाति है।
दास पियनेह छिन छिन भाव बदलति,
स्यामा सबिराग दीन मति कै मखाति है।

[२२ अ] प्रवत्सत्प्रेयसी-प्रवत्स्यत्प्रेयसी (भारत, वेंक०)। भावउदै-भाव (वही)।

[२४] मेरो-मेरे (वेंक०)। झाँवतो०-झाँवत हौ (भारत, वेल०); भाँवतो हो (वेंक०)। हौं०-एहो हँसि (भारत, वेल०)। भेट-भठ (सर०); भेंटे (वेंक०)।

[२४ अ] ०पतिका नाइका-०पतिका (भारत, वेंक०)।

जल्पति जकति कहँरति कठिनाति माति,
मोहति मरति बिललाति बिलखाति है ॥२५॥

अस्य तिलक

इहाँ प्रवासबिरह को तैंतीसो बिभिचारी अंगु हैं। २५ अ ॥

इति श्रीसकलकलाधरकलाधरवंशावतंसश्रीमन्महाराजकुमार-
श्रीबाबूहिंदूपतिविरचिते काव्यनिर्णये रसभावअपरांगवर्णनं
नाम पंचमोल्लासः ॥ ५ ॥

६

अथ ध्वनिभेद-वर्णनं–(दोहा)

बाच्य अरथ तैं व्यंगि मैं, चमतकार अधिकार।
धुनि ताही कौं कहत, सोइ उत्तम काव्य बिचार ॥१॥

यथा–(कवित्त)

भौंर तजि कचन कहत मखतूल औ,
कपोलनि कौं कंबु तैं मधूकै मति भाति है।
बिद्रुम बिहाइ सुधा अधरनि भाषै, कौल
बरजै कुचनि करि श्रीफल की ख्याति है।
कंचन निदरि गनै गात कौं चंपक-पात
कान्ह मति फिरि गई कालिह ही की राति है।

---

[२५] संकि–संक (भारत, बेल०)। त्रसति–त्रसित (वही)। तरकि–तरति (सर०)। सगलानि–× (वही)। सोअति०–सोवमिस (वही) चिंति–चित्त (सर०, वेंक०); चिंत (बेल०)। जकति–जकाति (सर०)। माति–मति (भारत, वेंक०, बेल०)।

[१] सोइ–सो (भारत, वेंक०); हैं (बेल०)।

दास यों सहेली सों सहेली बतलाति सुनि,
सुनि उत लाजनि नवेली गड़ी जाति है ॥२॥

(दोहा)

धुनि के भेद दुभाँति को, भनै भारती-धाम।
अबिबांछितो बिबांछितो, बाच्य दुहुँन के नाम ॥ ३ ॥

अविवक्षितवाच्य-लक्षणं

बकता की इच्छा नहीं, बचनहि को जु सुभाउ।
ब्यंगि कढ़ै तिहि बाच्य को अबिबांछित ठहराउ ॥ ४ ॥
अर्थांतरसंक्रमित इक, है अबिबांछित बाच्य।
पुनि अत्यंततिरस्कृतो, दूजो भेद पराच्य ॥ ५ ॥

अर्थांतरसंक्रमितवाच्य-लक्षणं-(दोहा)

अर्थ ऐसही बनत जहँ, नहीं ब्यंगि की चाह।
ब्यंगि निकारि तऊ करै, चमत्कार कबिनाह ॥ ६ ॥
अर्थांतरसंक्रमित सो बाच्य जु ब्यंगि अतूल।
गूढ़ ब्यंगि यामैं सही, होति लक्षनामूल ॥ ७ ॥

यथा

सु मधु प्याइ प्रीतम कहै, प्रिया पियहि सुखमूरि।
दास होइ ता समय मो, सब इंद्रियदुख दूरि ॥ ८ ॥

---

[२] मति–भाँति (भारत, वेंक०, बेल०)। कौल–और (बेल०)। बरजै०–बरनै कमल कुच (वही)। को०–प्रात चंपक को (वही)। बतलाति–बतराति (भारत, वेंक०, बेल०)।

[३] अबिबांछितो०–अविवक्षितो विवक्षितो (भारत, बेल०)। के–को (भारत, वेंक०, बेल०)।

[४] अबिबांछित–अविवांछित (भारत, वेंक०, बेल०)।

[५] अत्यंत०–अर्थांत तिरस्कृती (भारत)।

[७] यामैं–वामैं (भारत)। सही–कही (भारत, वेंक०)।

[८] प्याइ–प्याउ (बेल०)। ता०–ताही समय (वही)।

अस्य तिलक

मधु छुवे तेँ तुचा कोँ सुख होइ पीवे तेँ जीभ कोँ बोल सुने तेँ कान कोँ देखे तेँ दृग कोँ सुख मधुसुगंधि तेँ नासा को दुख दूरि होतु है ।८ अ॥

अत्यंततिरस्कृतवाच्य-लक्षण–(दोहा)

है अत्यंततिरस्कृत जु, निपट तजे धुनि होइ।
समय लक्ष तेँ पाइये, मुख्य अर्थ कोँ गोइ ॥ ९ ॥

यथा

सखि हौँ लई न सोच तुअ, तूँ किय मो सब काम।
अब आनहि चित सुचितई, सुख पैहै परिनाम ॥१०॥

अस्य तिलक

अन्यसंभोगदुखिता है, उलटी बात सब कहति है ।१० अ ॥

अथ विवक्षितवाच्यध्वनि–(दोहा)

कहै बिबांक्षितबाच्य धुनि, चाहि करै कवि जाहि।
असंलक्षिक्रम लक्षिक्रम, होत भेद द्वै ताहि ॥११॥
असंलक्षिक्रम ब्यंगि जहँ, रसपूरनता चारु।
लखि न परै क्रम जेहि, द्रवै सज्जन-चित्त उदारु ॥ १२ ॥

[८ अ] छुवे–छूये (वेंक०)। दृग–दृगनि (भारत, वेंक०)। मधु–मधु सुगंध मधु तेँ (भारत); सुगंध ते (वेंक०)। नासा-नाक (भारत, वेंक०)। सुख...को– × (सर०); सुख होइ यौ पाँचो इंद्रि को (भारत)।

[९] अत्यंत–अर्थात (भारत, वेंक०)। तिरस्कृत०–तिरस्कृती (भारत, बेल०)। समय०–रस्मय लक्ष्यत (वेंक०)।

[१०] सखि–ससि (सर०)। हौँ०– हाल इन सोच तुव (वेंक०); तू नेकु न सकुच मन (बेल०)। तूँ०–किये सबै मम (बेल०)। आनहि–आनहु (सर०); आनै (बेल०)।

[१० अ] 'वेंक०' मैं छूट गया है। संख्या ११ का दोहा ही लिख दिया है।

[११] कहै–कहा (वेंक०); वहै (बेल०)। बिबांक्षित–विर्वक्षित (सर०); विवक्षित (भारत, बेल०)। करै–कहै (सर०)। असंलक्षि–असंलक्ष्य (भारत, वेंक०)। लक्षि–लक्ष्य (वही)।

रस-भावनि के भेद की गनना गनी न जाइ।
एक नाम सबको कह्यो, रसव्यंगी ठहराइ ॥१३॥

अथ रसव्यंगि, यथा—(सवैया)

मिस सोइबो लाल को मानि सही हरैं ही उठि मौन महा धरिकै।
पट टारि रसीली निहारि रही मुख की रुचि कौं रुचि कौं करिकै।
पुलकावलि पेखि कपोलनि मैं सु खिस्याइ लजाइ मुरी अरिकै।
लखि प्यारे बिनोद सौं गोद गह्यो उमह्यो सुखमोद हियो भरिकै ॥१४॥

अथ लक्ष्यक्रमव्यंगि-लक्षणं—(दोहा)

होत लक्ष्यक्रम व्यंगि मैं, तीन भाँति की व्यक्ति।
सब्द अर्थ की सक्ति है, अरु सब्दारथ सक्ति ॥ १५ ॥

अथ शब्दशक्ति-लक्षणं

अनेकार्थमय सब्द सौं, सब्दसक्ति पहिचानि।
अभिधामूलक व्यंगि जेहि, पहिले कह्यो बखानि ॥ १६ ॥
कहूँ बस्तु तैं बस्तु की ब्यंगि होत कबिराज।
कहूँ अलंकृत ब्यंगि है, सब्दसक्ति द्वै साज ॥ १७ ॥

वस्तु तैं वस्तु व्यंगि लक्षणं

सूधी कहनावति जहाँ, अलंकार ठहरै न।
ताहि बस्तुसंज्ञं कहैं, ब्यंगि होइ कै बैन ॥ १८ ॥

अथ शब्दशक्तिध्वनि वस्तु तैं वस्तु व्यंगि, यथा

लाल चुरी तेरैं अली, लागी निपटि मलीन।
हरियारी करि देउँगी, हौं तौ हुकुम अधीन ॥ १९ ॥

---

[१३] रस०–रसै व्यंगि (भारत, वेंक०) ; रसै व्यंग (बेल०)।
[१४] रसीली–लजीली (सर०)। सु०–खिसिआइ (बेल०)। सुख–मुद (सर०)।
[१५] सब्द–सब्द व (सर०)। सब्दारथ–सब्द सक्तिथ (वही)।
[१६] सौं–ज्यौं (सर०)। सक्ति–जो (वही)। जेहि–जहँ (भारत, वेंक०)।
[१८] संज्ञं०–संजोग है (भारत) ; संज्ञा कहैं (वेंक०, बेल०)।
[१९] अली–लली (भारत, बेल०)। लागी–लागत (भारत, वेंक०, बेल०)। हरियारी–हरिआरी (सर०)।

अस्य तिलक

एक अर्थ साधारन है, एक अर्थ मैं दूतत्व यह बस्तु तैं बस्तु ब्यंगि ।१९अ।।

वस्तु तैं अलंकार व्यंगि, यथा–(दोहा)

फैलि चल्यो अगनित घटा, सुनत सिंह घहरानि ।
परे भोर चहुँ ओर तैं, होत तरुनि की हानि ॥ २० ॥

अस्य तिलक

घटा जो है गज-समूह सो सिंह की गरजन तैं भागि चले, बृच्छनि की हानि ह्वैबो उचित है यह समालंकार ब्यंगि । २० अ ॥

यथा–(कबित्त)

जानिकै सहेट गई कुंजनि मिलन तुम्हैं,
जान्यो न सहेट के बदैया बृजराज को ।
सूनो लखि सदन सिँगार ज्यौं अँगारो भयो,
सुख देनवारो भयो दुखद समाजको ।
दास सुखकंद मंद सीतल पवन भयो,
तन तैं ज्वलन उत कवन इलाज को ।
बाल के बिलापन बियोगानल-तापन को,
लाज भई मुकुत मुकुत भई लाजको ॥२१॥

अस्य तिलक

इहाँ सब्दसक्ति तैं अन्योक्ति उपमालंकार करिकै अन्योन्यालंकार ब्यंगि जथासंख्यालंकार । २१ अ ॥

अथ अर्थशक्ति-लक्षणं–(दोहा)

अनेकार्थमय सब्द तजि, और सब्द जे दास ।
अर्थसक्ति सबकौं कहैं, धुनि मैं बुद्धिबिलास ॥ २२ ॥

[१९ अ] दूतत्व–दूत्वत्य (सर०) ; दूतित्व है (भारत) ; दूतत्व है (वेंक०) ।
[२०] चल्यो–चल्यौ (सर०) ; चलो (वेंक०) ; चली (बेल० । परे–परै भारत) ; परी (वेंक०) ।
[२० अ] भागि–भाजि (वेंक०) । ब्यंगि–ब्यंग्य है (भारत, वेंक०) ।
[२१] 'सर०' मैं नहीं है । मिलन०–मिलै के लिये (बेल०) । के–को (वेंक०) । सूनो–सूने (भारत, बेल०) । सिँगार–को गार (भारत) । बियोगानल०–बियोगनल तापन (भारत) ; बियोग लतापन (वेंक०) ।
[२१ अ] 'सर०' मैं नहीं है । ब्यंगि–काव्यलिंगालंकार (वेंक०)

बाचक लक्षक बस्तु को, जग-कहनावति जानि ।
स्वतःसंभवी कहत हैं, कबि पंडित सुखदानि ॥ २३ ॥
जग-कहनावति तें जु कछु, कबि-कहनावति भिन्न ।
तेहि प्रौढ़ोक्ति कहैं सदा, जिन्ह की बुद्धि अखिन्न ॥ २४ ॥
उज्जलताई कीर्ति की सेत कहै संसार ।
तम छायो जग मैं कहै, खुले तरुनि के बार ॥ २५ ॥
कहै हास्यरस सांतरस, सेत बस्तु से सेत ।
स्याम सिँगारो, पीत भय, अरुन रुद्र गनि लेत ॥ २६ ॥
बरनत अरुन अबीर सो, रबि सो तप्त प्रताप ।
सकल तेजमय तें अधिक, कहैं बिरह-संताप ॥ २७ ॥
साँची बातनि जुक्तिबल, झूठी कहत बनाइ ।
झूठी बातनि कों प्रगट, साँच देत ठहराइ ॥ २८ ॥
कहै कहावै जड़नि सों, बातैं बिबिधि प्रकार ।
उपमा मैं उपमेय को, देहिं सकल अधिकार ॥ २९ ॥
यों ही औरौ जानिये, कबिप्रौढ़ोक्ति-बिचार ।
सिगरी रीति गनावते, बाढ़ै ग्रंथ अपार ॥ ३० ॥

(सोरठा)

बस्तु ब्यंगि कहुँ चारु, स्वतःसंभवी बस्तु तें ।
बस्तु तें अलंकार, अलंकार तें बस्तु कहुँ ॥ ३१ ॥

---

[२३] बस्तु–सब्द (सर०) ।
[२४] जु–जे (सर०) ।
[२५] मैं–मो (भारत, वेंक०, बेल०) ।
[२६] हास्य–हास (सर०) । सांत–संत (वही) । पीत–प्रीति (वेंक०) । रुद्र–रौद्र (भारत, बेल०) ।
[२७] बरनत०–बरन अरुन या बीर सों (भारत) ; करना अरुन० (वेंक०) । मय–मं (वही) ।
[२९] जड़नि–युक्ति (वेंक०) । मैं–को (सर०) ; मय (भारत) । को–मै (सर०) ।
[३०] गनावते–गनावतो (भारत) ।
[३१] तें०–हि तें लंकार (भारत, वेंक०, बेल०) । कहुँ–कह (भारत) ; कहँ (वेंक०) ।

कहूँ अलंकृत बात, अलंकार व्यंजित करै।
यौँ ही पुनि गनि जात, चारि भेद प्रौढ़ोक्ति मैँ ॥ ३२ ॥

अथ स्वतःसंभवी वस्तु तेँ वस्तुध्वनि, यथा–(दोहा)

सुनि सुनि प्रीतम आलसी, धूत सूम धनवंत।
नवल-बाल-हिय मौँ हरष, बाढ़त जात अनंत ॥ ३३ ॥

अस्य तिलक

आलसी है तो कहूँ जाइगो नहीँ, धनवंत है औ' सूम है तौ दरिद्र की डर नाहीँ, धूत है तौ कामी होइगो, सब वाकी चित्तचाही बात है यह बस्तु व्यंगि। ३३ अ ॥

स्वतःसंभवी वस्तु ते अलंकारव्यंगि, यथा–(दोहा)

सखि तेरो प्यारो भलो, दिन न्यारो ह्वै जात।
मोतेँ नहिँ बलबीर कौँ, पल बिलगात सोहात ॥ ३४ ॥

अस्य तिलक

आपु कौँ वा तेँ बड़ी स्वाधीनपतका जनावति है, यह व्यतिरेकालंकार व्यंगि है। ३४ अ ॥

स्वतःसंभवी अलंकार तेँ वस्तुव्यंगि, यथा–(कबित्त)

गिलि गए स्वेदनि जहाँई तहाँ छिलि गए,
मिलि गए चंदन भिरे हैँ इहि भाय सौँ।
गाढ़े ह्वै रहे ही सहे सन्मुख तुकानि लीक,
लोहित लिलार लागी छीट अरि-घाय सौँ।

---

[३२] मैँ–के (बेल०)।

[३३] धूत–धूर्त (भारत, वेंक०, बेल०)। मौँ–मैँ (वेंक०, बेल०)। बाढ़त–बाढ़ो (सर०)।

[३३ अ] आलसी–नायक आलसी (वेंक०)। औ'–वो (भारत, वेंक०)। की–को (भारत); का (वेंक०)। नाहीँ–नहीँ (भारत); नहीँ हैँ (वेंक०)। धूत–धूर्त (भारत); यातेँ सब भूषन बसन मिलैगो धूर्त (वेंक०)। सब–यातेँ सब (वेंक०)। है–है ताते (वेंक०)।

[३४ अ] वा त–बात (भारत, वेंक०)।

श्रीमुख-प्रकास तन *दास* रीति साधुन की,
अजहूँ लौं लोचन तमीले रिस-ताय सौं।
सोहै सरबंग सुख पुलक सुहाए हरि,
आए जीति समर समर महाराय सौं ॥ ३५ ॥

अस्य तिलक

रूपक उत्प्रेक्षालंकार करिकै नायक को अपराध जाहिर करति है, यह बस्तु ब्यंगि । ३५ अ ॥

अथ स्वतःसंभवी अलंकार तें अलंकारव्यंगि, यथा–(दोहा)

पातक तजि सब जगत को, मो मैं रह्यो बजाइ ।
राम तिहारे नाम को, इहाँ न कछू बसाइ ॥ ३६ ॥

अस्य तिलक

मोही मैं पाप रह्यो यह परिसंख्यालंकार, तिहारो नाम समर्थ है इहाँ कछू नहीं बसातो यह बिसेषोक्ति अलंकार ब्यंगि सब तें मैं बड़ो पापी हौं यह ब्यतिरेकालंकार । ३६ अ ॥

इति स्वतःसंभवी

अथ प्रौढ़ोक्ति वस्तु तें वस्तुव्यंगि, यथा–(सवैया)

दास के ईस जबै जस रावरो गावतीं देवबधू मृदु तानन ।
जातो कलंक मयंक को मूँदि औ' घाम तें काहू सतावतो भान न ।
सीरी लगै सुनि चौंकि चितै दिगदंति तकैं तिरछे दृग आनन ।
सेत सरोज लगै कै सुभाइ घुमाइकै सूँड मलैं दुहुँ कानन ॥३७॥

अस्य तिलक

तिहारी कीर्ति सर्गहूँ दिगंतहूँ पहुँची, सीतल उज्जल है यह बस्तु ब्यंगि । ३७ अ ॥

---

[३५] भिरे–भरे (बेल०) । गाड़े–गाढ़ै (वेंक०) ; गाढ़े (बेल०) । ही–हैं (बेल०) । सन्मुख०–सनमुख काम (बेल०) ।

[३५ अ] नायक–नाइका (सर०) ; नायका (वेंक०) । को–की (सर०) । जाहिर–करिकै जाहिर (वही) । ब्यंगि–व्यंग्य है (वेंक०) ।

[३६ अ] बड़ो०–बड़ी पापी हूँ (वेंक०) ।

[३७] जबै–जगै (वेंक०) । तकै–ककै (भारत, वेंक०) । तिरछे–तिरछी (सर०, भारत, बेल०) । सुभाइ–सुभाए (सर०) ; सुभाउ (भारत); सुहाय (वेंक०) ; सुभाय (बेल०) ।

[३७ अ] सीतल–सीतल है (वेंक०) ।

यथा–(दोहा)

करत प्रदच्छिन बाड़वहिँ, आवत दच्छिन पौन ।
बिरहिनि बपु बारत बरहि, बरजनवारी कौन ॥ ३८ ॥

अस्य तिलक

तिहारे बिरह मरति है, यहि बस्तु ब्यंगि । ३८ अ ॥

अथ कबिप्रौढ़ोक्ति वस्तु तेँ अलंकारव्यंगि, यथा–(दोहा)

निज गुमान दै मान कौँ, धीरज किय हिय थापु ।
सु तौ स्यामछबि देखतहि, पहिले भाग्यो आपु ॥ ३९ ॥

अस्य तिलक

बिना मनाए मान छुट्यो, यह बिभावनालंकार ब्यंगि । ३९ अ ॥

द्वार द्वार देखति खरी, गैल छैल नँदनंद ।
सकुचि बंच दृग पंच की, कसति कंचुकीबंद ॥ ४० ॥

अस्य तिलक

हर्षप्रफुल्लता तेँ बंद ढीलो भयो ताकौँ संकिकै छपावति है, यह ब्याजोक्ति अलंकार ब्यंगि । ४० अ ॥

अथ प्रौढ़ोक्ति करि अलंकार तेँ वस्तुव्यंगि, यथा–(दोहा)

'कहा ललाई तेँ रही, अँखिया की मरजाद' ।
'लाल भाल नख-चंद-दुति, दीन्ही इहै प्रसाद' ॥ ४१ ॥

अस्य तिलक

रूपकालंकार तेँ तुम परस्त्री पै रहे हौ, यह बस्तु ब्यंगि । ४१ अ ॥

---

[३८] प्रदच्छिन०–प्रदच्छिवगुवाहि (सर०) ।

[३८ अ] मरति है–के मारे हम बिरहिनी लोग मरती हैँ (वेंक०), यहि–प्रहि (सर०); यह (भारत, वेंक०) । बस्तु ब्यंगि–व्यंग्य (भारत) ।

[३९] गुमान०–गुनमान समान हो (वेंक०) । पहिले–ले (सर०) ।

[३९ अ] छुट्यो–छूट्यो (भारत, वेंक०) ।

[४०] खरी–खड़ी (भारत, वेंक०, बेल०) ।

[४० अ] ढीलो०–ढीले भए (भारत); ढील भए (वेंक०) । अलंकार–लंकार (सर०) । ब्यंगि–व्यंग्य ते व्यंग्य प्रौढ़ोक्ति (वेंक०) ।

[४१] तेँ–लै (भारत, वेंक०, बेल०) । की–बे (वही) । दुति–कछु (भारत) । इहै–इहौ (सर०); इन्हैँ (भारत, वेंक०); यह (बेल०) ।

[४१ अ] रहे हौ–रह्यौ है (सर०) । बस्तु–× (भारत) ।

अथ प्रौढ़ोक्ति करि अलंकार तें अलंकारव्यंगि, यथा-(दोहा)

'मेरो हियो पषान है, तिय-दृग तीछन बान'।
'फिरि फिरि लागत ही रहैं, उठै बियोग कृसान' ॥ ४२ ॥

अस्य तिलक

रूपकालंकार तेँ समालंकार ब्यंगि । ४२ अ ॥

यथा-(सवैया)

करै दासै दया वह बानी सदा कबि-आनन-कौल जु बैठि लसै ।
महिमा जग छाई नवौ रस की तनपोषक नाम धरै छ रसै ।
जग जाके प्रसाद लता पर सैल ससी पर पंकजपत्र बसै ।
करि भाँति अनेकनि योँ रचना जु बिरंचिहु की रचना कोँ हँसै ॥ ४३ ॥

अस्य तिलक

रूपक रूपकातिसयोक्ति करिकै ब्यतिरेकालंकार ब्यंगि । ४३ अ ॥

यथा-(सवैया)

ऊँचे अवास बिलास करै अँसुवान को सागर कै चहुँ फेरै ।
ताहू न दूरि लौँ अंग की ज्वाल कराल रहै निसिबासर घेरै ।
दास लहै वह क्योँ अवकास उसास रहै नभ ओर अभेरै ।
है कुसलात इती इहि बीचु जु मीचु न आवन पावति नेरै ॥ ४४ ॥

अस्य तिलक

काव्यलिंग अलंकार करिकै उत्तर बिसेषोक्ति अलंकार ब्यंगि ।४४अ॥

इति अर्थसक्ति

अथ शब्दार्थशक्ति-लक्षणं-(दोहा)

सब्द अर्थ दुहुँ सक्ति मिलि, ब्यंगि कढ़ै अभिराम ।
कबि कोबिद तिहि कहत हैँ, उभै सक्ति यह नाम ॥ ४५ ॥

---

[४३] बैठि-बैठी (भारत, वेंक०, बेल०) । जाके-जाको (सर०) । बसै-लसै (सर०, भारत, वेंक०) ।

[४४] फेरै-'फेरयो' 'घेरयो' आदि तुकांतरूप (भारत) ; 'फेरे' आदि रूप (बेल०) । तेँ-पै (बेल०) ।

[४५] यह-इहि (भारत, वेंक०); एहि (बेल०) ।

यथा–(कवित्त)

सीँवा सुधरम जानो परम किसानो माधो,
पाप जंतु भाजै भ्रमि स्यामारुन सेन मैँ।
देसी परदेसी बवैँ हेम हय हीरादिक,
केस मेद चीरादिक श्रद्धा सम हेत मैँ।
परसि हलोरै कै हलोरैँ पहिले ही दास,
रासि चारि फलनि की अमर-निकेत मैँ।
फेरि जोति देखिबे कौँ हरबर दान देत,
अद्‌भुत गति है त्रिबेनीजू के खेत मैँ ॥ ४६ ॥

अस्य तिलक

इहाँ उभय सक्ति तेँ रूपक समासोक्ति को संकर करिकै अतिसयोक्ति अलंकार व्यंगि। ४६ अ ॥

अथ एकपदप्रकाशित व्यंगि–(दोहा)

पदसमूह रचनानि को, वाक्य बिचारौ चित्त।
तासु ब्यंगि बरनौँ सुनौँ, पदव्यंजक अब मित्त ॥ ४७ ॥
छंद भरे मैँ एक पद, धुनिप्रकास करि देइ।
प्रगट करौँ क्रम तेँ बहुरि, उदाहरन सब तेइ ॥ ४८ ॥

अर्थांतरसंक्रमितवाच्य पदप्रकास धुनि, यथा–(दोहा)

सुंदर गुन-मंदिर रसिक, पास खरो बृजराजु।
आली कौन सयान है, मान ठानिबो आजु ॥ ४९ ॥

अस्य तिलक

आजु सब्द तेँ घात की समय प्रकासित होतु है। ४९ अ ॥

अथ अत्यंततिरस्कृतवाच्य पदप्रकास धुनि, यथा–(दोहा)

भाल भृकुटि लोचन अधर, हियो हिये की माल।
छला छिगुनिया छोर को, लखि सिरात दृग लाल ॥ ५० ॥

---

[४६] जंतु–पुंज (भारत, बेल०)। भाजै–× (सर०)। भ्रमि–भ्राम (वही)। स्यामारुन–स्याम अरुन (वही)। हलोरै–हलोरि (बेल०)। पहिले०–भले लेत (बेल०)।

[४७] बरनौँ–बरन्यो (भारत, वेंक०)। सुनौ–सुन्यो (वही)।

[४८] करौँ–करी (सर०)।

[४९] खरो–खरे (बेल०)।

अस्य तिलक

सिराइबे तें जरिबो व्यंजित करिकै अपराधु प्रकास्यो । ५० अ ॥

अथ असंलक्ष्यक्रम रसव्यंगि, यथा– (कबित)

जाती है तैं गोकुल गोपालहूँ पै जैबी नेकु,
आपनी जौ चेरी मोहिं जानती तूँ सही है।
पाइ परि आपु ही सौं पूँछबी कुसल-छेम,
मो पै निज ओर तें न जाति कछु कही है।
दास जो बसंतहू के आगमन आए तौ'ब,
तिनसौं सँदेसनि की बातैं कहा रही है।
एतो सखि कीबी यह आममौर दीबी,
अरु कहिबी वा अमरैआ राम राम कही है ॥ ५१ ॥

अस्य तिलक

वा सब्द तें पिछिलो संजोग प्रकासित है । ५१ अ ॥

अथ शब्दशक्ति वस्तु तें वस्तुव्यंगि, यथा– (दोहा)

जेहि सुमनहि तूँ राधिके, लाई करि अनुराग।
सोई तोरत साँवरो, आपुहि आयो बाग ॥ ५२ ॥

अस्य तिलक

तोरत सब्द तें तोसौं आसक्त यह बस्तु ब्यंगि । ५२ अ ॥

---

[५१] जाती–जाति (भारत, बेल०)। है–हौ (बेल०)। तैं–तूँ (भारत, वेंक०); जौं (बेल०),। जैबी-जैबे (वेंक); जैयो (बेल०)। पूँछबी–पूँछिबे (वेंक०); बूझियो (बेल०)। जौ०–जू बसंतहू (बेल०); मधुमासहू (भारत, वेंक०)। तौ'ब–तबै (भारत); तो (वेंक०); तौ न (बेल०)। तिनसौं०–पतियन सौं (वेंक)। सँदेसनि–सदेसोनी (सर०); सँदेसनीक (भारत)। बातैं–बात (वेंक० बेल०)। एतो–एती (वेंक०)। सखि–सखी (भारत, वेंक०, बेल०)। आम मौर–अंब बौर (भारत, वेंक०, बेल०)।

[५१ अ] पिछिलो–पहिलो (भारत, वेंक०)।

[५२] लाई–लायो (सर०)।

शब्दशक्ति वस्तु तेँ अलंकारव्यंगि वर्णनं–(दोहा)

जल अखंड घन झंपि महि, बरषत बरषाकाल।
चली मिलन मनमोहनै, मैनमई ह्वै बाल॥ ५३॥

अस्य तिलक

मैनमई सब्द तेँ मोम को रूपक है। ५३ अ॥

अथ स्वतःसंभवी वस्तु तेँ वस्तुव्यंगि–(दोहा)

मंद अमंद गनौ न कछु, नंदनंद बृजनाह।
छैल छबीले गैल मैँ, गहौ न मेरी बाँह॥ ५४॥

अस्य तिलक

गैल सब्द तेँ एकांत मिलैगी यह ब्यंगि। ५४ अ॥

अथ स्वतःसंभवी वस्तु तेँ अलंकार वर्णनं–(दोहा)

मनसा बाचा कर्मना करि कान्हर सोँ प्रीति।
पारबती-सीता-सती-रीति लई तूँ जीति॥ ५५॥

अस्य तिलक

कान्हर सब्द तेँ ब्यतिरेकालंकार ब्यंगि। ५५ अ॥

अथ स्वतःसंभवी अलंकार ते वस्तु वर्णनं–(दोहा)

हम तुम तन द्वै प्रान इक, आजु फुर्‌यो बलबीर।
लग्यो हिये नख रावरे, मेरे हिय मैँ पीर॥ ५६॥

अस्य तिलक

असंगति अलंकार तेँ, आजु सब्द तेँ तुम परस्त्री-बिहार कियो, नई भई, यह बस्तु ब्यंगि। ५६ अ॥

अथ स्वतःसंभवी अलंकार तेँ अलंकारव्यंगि–(दोहा)

लाल तिहारे द्दगन की, हाल न बरनी जाइ।
सावधान रहिये तऊ, चित-बित लेत चुराइ॥५७॥

[५३ अ] × (सर०)।
[५४] न–× (सर०)। नंद–नंदनदन (भारत, बेल०); नंदनदंन (वेंक०)। मैँ–मो (सर०)।
[५५] × (सर०)। तूँ– तुव (भारत, बेल०)।
[५६ अ] सब्द तेँ–× (भारत)। पर–नई (वेंक०)। भई–भात्री (वही)।
[५७] की–को (वेंक०, बेल०)। न०–कही नहिँ (भारत); न बरने (वेंक, बेल०)।

अस्य तिलक

रूपक बिभावना करिकै, चोर तैं ये अधिक हैं यह व्यतिरेकालंकार व्यंगि। ५७ अ ॥

अथ कविप्रौढ़ोक्ति वस्तु तें वस्तुव्यंगि–(दोहा)

राम तिहारे सुजस जग, कीन्हो सेत इकंक।
सुरसरि-मग अरि अजस सों, कीन्हो भेट कलंक ॥ ५८ ॥

अस्य तिलक

सुरसरि-मग तैं यह ब्यंजित भयो जो जस को कलंक न ह्वै सक्यो। ५८ अ ॥

अथ कविप्रौढ़ोक्ति वस्तु तें अलंकार वर्णनं–(दोहा)

कहत मुखागर बाल के, रहत बन्यो नहिं गेहु।
जरत बाँचि आई ललन, बाँचि पाति ही लेहु ॥ ५९ ॥

अस्य तिलक

जरत सब्द तैं ब्याधि प्रकासित कियो, सँदेसे सों मुकुर गई यह आक्षेपालंकार ब्यंगि। ५९ अ ॥

अथ कविप्रौढ़ोक्ति अलंकार तें वस्तुव्यंगि वर्णनं–(दोहा)

हरि हरि हरि ब्याकुल फरै, तजि सखानि को संग।
लखि यह तरल कुरंग द्दग, लटकन मुकुत सुरंग ॥ ६० ॥

अस्य तिलक

सुरंग पद तैं तद्गुन अलंकार है, आसक्त ह्वैबो बस्तु ब्यंगि है ऐसो तेरोई काम है। ६० अ ॥

[५७ अ] ते०–तेरो (भारत)।

[५८] तिहारे–तिहारो (भारत, वेंक०, बेल)।

[५८ अ] ह्वै–धोइ (भारत)।

[५९] कहत०–बचन कहत मुख (बेल०)। रहत०–बन्यो रहत (वही)।

[६०] सखानि–सखीनि (वेंक०); सखियन (बेल०)। मकुत–मुकुर (सर०)।

[६० अ] पद–X (सर०)। ऐसो०–ऐसो तेरोई काम (भारत); ऐसोई तेरो काम है यह प्रौढ़ोक्ति अलंकार व्यंग्य (वेंक०)।

अथ कविप्रौढ़ोक्ति अलंकारव्यंगि—(दोहा)

बाल बिलोचन बाल तेँ, रह्यो चंद-मुख संग।
बिष बगारिबे को सिख्यो, कहौ कहाँ तेँ ढंग॥ ६१॥

अस्य तिलक

ससि-मुख रूपक तातेँ बिष बगरिबो बिषमालंकार व्यंगि। ६१ अ॥

अथ प्रबंधध्वनि, यथा—(दोहा)

एकहि सब्दप्रकास मैँ, उभय सक्ति न लखाइ।
अब सुनि होति प्रबंधधुनि, कथाप्रसंगहि पाइ॥ ६२॥
बाहिर कढ़ि कर जोरिकै, रबि कौँ करौ प्रनाम।
मनइच्छित फल पाइकै, तब जैबो निज धाम॥ ६३॥

अस्य तिलक

जब न्हानसमै गोपिन को बस्त्र लयो है ता समै को कृष्न को बचन। ६३ अ॥

अथ स्वयंलक्षित व्यंगि वर्णनं—(दोहा)

वाही कहे बनै जु बिधि, वा सम दूजो नाहिँ।
ताहि स्वयंलक्षित कहैँ, व्यंगि समुझि मन माहिँ॥ ६४॥
सब्द वाक्य पद व्यंजको, एकदेस रस-बर्न।
होत स्वयंलक्षित तहाँ, समुझै सज्जन कर्न॥ ६५॥

अथ स्वयंलक्षित शब्द वर्णनं—(कबित्त)

पात फूल दातन के दीबे को अरथ धर्म
काम मोक्ष चारो फल मोल ठहरावती।
देख्यो दास देवदुरलभ गति दैकै महा
पापिन को पापन की लूटि ऐसी पावती।

---

[६१] बगरिबो—बगारिबो (भारत, वेंक०)।
[६२] अब—अरु (भारत, वेंक०, बेल०)। प्रबंध—प्रसंग (भारत)।
[६३] कौँ—कै (सर०)। तब—तौ (भारत, वेंक०)। जैबो—जैयो (बेल०)।
[६३ अ] न्हान—नहात (भारत)। को कृष्न—की कृष्ण (भारत); कृष्ण (वेंक०)
[६४] बिधि—धुनि (सर०)।
[६५] व्यंजको—पदहु को (भारत, वेंक०, बेल०)। रस—पद (वही)।

ल्यावत कहूँ तें तन जातरूप कोऊ ताकों
जातरूप-सैलहि की साहिबी सजावती।
संगति मैं बानी की कितेक जुग बीते देखि,
गंग पै न सौदा की तरह तोहि आवती ॥६६॥

अस्य तिलक

इहाँ बानी सब्द मैं चमत्कार है, और नाम सरस्वती के नाहीं लहते। ६६ अ ॥

अथ स्वयंलक्षित वाक्य वर्णनं–(कवित्त)

सुनि सुनि मोरन को सोर चहुँ ओरन तें,
धुनि धुनि सीस पछताती पाइ दुख कौं।
लुनि लुनि भाल-खेत बई बिधि बालिन्ह कौं,
पुनि पुनि पानि मीड़ि मारती बपुख कौं।
चुनि चुनि सजती सुमन-सेज आली तऊ,
भुनि भुनि जाती अवलोकि वाही रूख कौं।
गुनि गुनि बालम को आइबो अजहुँ दूरि,
हुनि हुनि देती बिरहानल मैं सुख कौं ॥६७॥

अस्य तिलक

इहाँ पुनरुक्ति ही मैं चमत्कार है और तरह मैं नाहीं। ६७ अ ॥

अथ स्वयंलक्षित पद वर्णनं–(सवैया)

बार अँध्यारनि मैं भटक्यो हौं निकाख्यो मैं नीठि सुबुद्धिनि सौं घिरि।
बूड़त आनन-पानिप-भीर पटीर की आड़ सौं तीर लग्यो तिरि।

---

[६६] के–को (भारत, वेंक, बेल०)। दीबे०–अर्थ धर्म काम मोक्ष दीबे कहँ चारि (बेल०)। देख्यो–देखो (भारत, वेंक०, बेल०)। को–के (वही)। तन–बन (वेंक०)। ताकों–ताहि (बेल०)। संगति–संगनि (सर०)। की–के (भारत, वेंक०, बेल०)। गंग–गंगा (वही)। तरह–सरह (भारत, बेल०)।

[६६ अ] इहाँ–यहाे (वेंक०)। नाहीं–नहीं (भारत, वेंक०)।

[६७] पानि०–हाथ मीजि (सर०)। अवलोकि०–अवलोके वाहि (भारत, वेंक०, बेल०)। देती–देति (भारत, बेल०)।

[६७ अ] ही–X (सर०)। नाहीं–नहीं (भारत, वेंक०, बेल०)।

मो मन बावरो यों ही हुत्यो अधरा-मधु-पान कै मूढ़ छक्यो फिरि।
दास कहौ अब कैसे कढ़ै निज चाड़ सों ठोढ़ी की गाड़ पर्‍यो गिरि ॥६८॥

अस्य तिलक

इहाँ पटीर ही की आड़ भली जो डूबते को काठ मिलतु है, केसरि रोरी आदि नहीं भली। ६८ अ ॥

अथ स्वयंलक्षित पदविभाग वर्णनं—(दोहा)

हौं गँवारि गाँवहि बसौं कैसो नगर कहंत।
पै जान्यो आधीन करि, नागरीन को कंत ॥ ६९ ॥

अस्य तिलक

इहाँ नागरीन बहुबचन ही भलो, एकबचन नहीं। ६९ अ ॥

अथ स्वयंलक्षित रस वर्णनं—(दोहा)

क्रुद्ध प्रचंडी चंडिका, तकत नयन तरेरि।
मूर्छि मूर्छि भू पर परे, गव्बर रहे जा घेरि ॥ ७० ॥

अस्य तिलक

इहाँ रुद्ररस है, उद्धत ही बरन चाहिये। ७० अ ॥

दोहा

द्वै अबिबांछित बाच्य अरु, रसब्यंगी इक लेखि।
सब्दसक्ति द्वै, आठ पुनि अर्थसक्ति अवरेखि ॥ ७१ ॥

---

[६८] हो—हु (भारत); स्व (बेल०)। निकारयो—निकायो (वेंक०)। भीर—नीर (भारत, वेंक०, बेल०)। कै—को (सर०)। कहौ—कह्यो (सर०); भनै (बेल०)।

[६८ अ] की—को (सर०)। भली—भलो (वही)। भली—भलो (वही)।

[६९] बसौं—बस्यौ (सर०); बसी (भारत, बेल०)। जान्यो—जानो (सर०)। नागरीन—नगरारन (वही)।

[६९ अ] ही—ही मे (सर०)।

[७०] चंडिका—चंडिके (सर०)। तक्कत—तकत न (वही)। गव्बर—खरग (भारत, बेल०)।

[७१] अबिबांछित—अविवच्छित (भारत, बेल०)। रस०—रसै व्यंगि (भारत, बेल०)। द्वै—है (भारत ; ह्वै (बेल०) । अर्थ०—अर्थयुक्ति (भारत)।

उभै सक्ति इक जोरि पुनि, तेरह सब्दप्रकास।
इक प्रबंधधुनि, पाँच पुनि, स्वयंलच्छि गुनि दास ॥ ७२ ॥
ए सब तैंतिस जोरि दस बक्ति आदि पुनि ल्याइ।
तैंतालीस प्रकासधुनि, दीन्हो मुख्य गनाइ ॥ ७३ ॥
सब बातनि सब भूषननि, सब संकरनि मिलाइ।
गुनि गुनि गनना कीजिये, तौ अनंत बढ़ि जाइ ॥ ७४ ॥

इति श्रीसकलकलाधरकलाधरवंशावतंसश्रीमन्महाराजकुमार-
श्रीबाबूहिंदूपतिविरचिते काव्येनिर्णये ध्वनिभेद-
वर्णनं नाम षष्ठोल्लासः ॥ ६ ॥

७

अथ गुणीभूतव्यंग्य-लक्षणं-(दोहा)

जा ब्यंगारथ मैं कछू, चमत्कार नहिँ होइ।
गुनीभूत सो ब्यंगि है, मध्यम काब्यौ सोइ ॥ १ ॥

(सोरठा)

गनि अगूढ़ अपरांग, तुल्यप्रधानो अस्फुटहि।
काकु बाच्यसिद्धांग, संदिग्धो 'रु असुंदरो ॥ २ ॥
आठौ भेद प्रकासु, गुनीभूत ब्यंगिहि गनौ।
लगै सुहाई जासु, बाच्यार्थहि की निपुनता ॥ ३ ॥

---

[७२] गुन–गुरु (वेंक०)।
[७३] बक्ति–ब्यक्ति (भारत, बेल०); बक्र (वेंक०)।
[१] सो–स्वै (सर०)।
[२] ०रु अ०–अरु (सर०)।
[३] भेद–भाँति (सर०)।

अथ अगूढ़व्यंगि-वर्णनं-(दोहा)

अर्थांतरसंक्रमित अरु, अत्यंततिरस्कृत होइ ।
दास अगूढ़ो व्यंगि मैं, भेद प्रगट है दोइ ॥ ४ ॥

यथा

गुनवंतन मैं जासु सुत, पहिले गनो न जाइ ।
पुत्रवती वह मातु तौ, बंध्या को ठहराइ ॥ ५ ॥

अस्य तिलक

जाको पुत्र निगुनी है त्रहै बंध्या है, यह व्यंगि सों प्रगट ही है । ५ अ ॥

अत्यंततिरस्कृतवाच्य-वर्णनं-(दोहा)

बंधु धंधु अवलोकि तुव, जानि परै सब ढंग ।
बीस बिसे यह वसुमती, जैहै तेरे संग ॥ ६ ॥

अस्य तिलक

हे बंधु भलाई करु पृथ्वी काहू के संग नाहीं गई, यह व्यंगि है । ६ अ ॥

अथ अपरांग, यथा-(दोहा)

रसवतादि बरननु किये, रसव्यंजक जे आदि ।
ते सब मध्यम काव्य हैं, गुनीभूत कहि बादि ॥ ७ ॥
उपमादिक दृढ़ करन कौं, सब्दसक्ति जो होइ ।
ताहू कौं अपरांग गुनि, मध्यम भाषत लोइ ॥ ८ ॥

यथा

सँग लै सीतहि लछिमनहि, देत कुबलयहि चाउ ।
राजत चंद-सुभाव सो, श्रीरघुबीर-प्रभाउ ॥ ९ ॥

---

[४] है-ये (बेल०) । दोइ-सोइ (भारत) ।
[५] तौ-तब (भारत, बेल०) ।
[५ अ] है०-वही (सर०) । यह-व्यंजना (वही) ।
[६ अ] पृथ्वी-जदपि (सर०) ।
[७] रस०-रसव्यंजन (भारत) । जे-जो (सर०) ।
[८] अपरांग०-अपरांगनी (भारत) ; अपरांग गनि (वेंक०) । लोइ-कोइ (भारत) ।
[९] सुभाव-सुभाय (सर०) ।

अस्य तिलक

इहाँ उपमालंकार सब्दसक्ति सौं दृढ़ करतु हैं। ६ अ ॥

अथ तुल्यप्रधान-लक्षणं-(दोहा)

चमत्कार मैं व्यंगि अरु, बाच्य बराबरि होइ।
वाही तुल्यप्रधान है, कहैं सुमति सब कोइ ॥ १० ॥

यथा

मानौ सिर धरि लंकपति, श्रीभृगुपति की बात।
तुम करिहौ तौ करहिंगे, वेऊ द्विज उतपात ॥ ११ ॥

अस्य तिलक

व्यंगि यह कि तुमहू द्विज हौ परसुराम मारहिंगे, सो बाच्य की बराबरि है। ११ अ ॥

(कबित्त)

आभरन साजि बैठौ ऐंठौ जनि भौंहैं लखि,
लालन कहैगो प्यारी कला जैसी चंद की।
सुंदरि सिँगारनि बनाइबे की ब्यौंत मैं,
तिलोतमै सी ठहरैहौ सौहैं सुखकंद की।
दास बर आनन-उदारता मैं देखिकै,
कहे ही जो कमल सो है बानी नँदनंद की।
यौं ही परखति जाति उपमा की पंगति हौं,
संगति अजहुँ तजौ मान मतिमंद की ॥ १२ ॥

[६ अ] करतु—करते (वेंक०)।
[१०] वाही०—वहइ० (सर०) ; तुल्य प्रधान सुव्यंग (बेल०)।
[११] वेऊ—वोऊ (भारत, वेंक०)।
[११ अ] कि—× (रस०)। मारहिंगे—मारैगो (वही)। की—× (भारत)। है—हो (वही)।
[१२] कहैगो—कहौगे (भारत, बेल०)। की ब्यौंत मैं—की पीतमै (सर०); के ब्यौंत मैं (भारत, वेंक०); के ब्योतनि (बेल०)। ठहरैहौ—ठहरैहौं (भारत, वेंक०)। उदारता०—उदास मैं जु (भारत, वेंक०); उदास मैं हूँ (बेल०)। कहे०—कहौगे ज्यौं (वही)। परखति-परति (सर०); परसति (बेल०)। पंगति—पातिन्ह (बेल०)। हौं—है (सर०); हो (भारत, वेंक०); को (बेल०)। तजौ—तजहु (सर०)।

अस्य तिलक

मान छोड़ाइबो बाच्य सोभा बर्निबो ब्यंगि दोउ प्रधान हैँ। १२ अ ॥

अथ अस्फुट—(दोहा)

जाकी ब्यंगि कहे बिना, बेगि न आवै चित्त।
जौ आवै तौ सरल हीं, अस्फुट सोई मित्त ॥ १३ ॥

यथा—(कवित्त)

देखे दुरजन संक गुरुजन संकनि सोँ,
हियो अकुलात दृग होत न दुखित हैँ।
अनदेखे होति मुसुकानि बतरानि मृदु,
बानियै तिहारी दुखदानि बिमुखित हैँ।
दास धनि ते हैँ जे बियोग हीं मैँ दुख पावैँ,
देखे प्रान-पी कोँ होति जिय मैँ सुखित हैँ।
हमैँ तौ तिहारे नेहु एकहू न सुख लाहु,
देखेहू दुखित अनदेखेहू दुखित हैँ॥ १४ ॥

अस्य तिलक

निसंक जगह मिलिबे की बिनै करति है। १४ अ ॥

अथ काकाक्षिप्त-वर्णनं (दोहा)

सही बात कोँ काकु तैँ, जहीँ नहीँ करि जाइ।
काकाक्षिप्त सु ब्यंगि है, जानि लेहु कबिराइ ॥ १५ ॥

[१२अ] सोभा—सो भाव (भारत); स्वभाव (वेंक०)। प्रधान—प्रधान्य (सर०)।

[१३] बेगि—ब्यंगि (भारत) ; व्यंग्य (वेंक०)। अस्फुट—स्फुट (वही)।

[१४] संक-संग (बेल०)। अकुलात—अकुलाति (भारत)। होत-होती (सर०) ; होति (भारत, वेंक०)। होति—होती (सर०, वेंक०) ; हू ते (बेल०)। बतरानि—पतरानि (सर०)। बानियै—बाणि ये (वेंक०)। दुखदानि—दृगदेनि (सर०)। कोँ-के (भारत, बेल०)। तौ तिहारे—तजि हारे (सर०)। लाहु—लेहु (बेल०)।

[१४ अ] निसंक—यह नायका निसंक (वेंक०)।

[१५] सही—साँच (बेल०)। जहीँ—जहाँ (भारत, वेंक०, बेल०)। काका०—काकुक्षिप्त सु (भारत) ; काक्वक्षिप्त सो (वेंक०) ; काकुक्षिप्त सो (बेल०)।

यथा

जहाँ रमै मनु रैनिदिन, तहाँ रहौ करि मौन।
•इन बातनि परि प्रानपति, मान ठानती हौं न॥ १६॥

मान किये ही है, नहिँ कियो काकु है। १६ अ॥

अथ वाच्यसिद्धांग-लक्षणं-(दोहा)

जा लगि कीजतु ब्यंगि सो बातहि मैं ठहरात।
कहत बाच्यसिद्धांग को अर्थ सुमति-अवदात॥ १७॥

यथा

बरषाकाल न लाल गृह गौन करौ केहि हेतु।
ब्याल-बलाहक बिष बरसि, बिरहिनि को जिय लेतु॥ १८॥

अस्य तिलक

बिष जलहू कौँ कहिये पै ब्यालहू को कह्यो है। तातैं बाच्य-सिद्धांग है। १८ अ॥

यथा-(दोहा)

स्याम-संक पंकजमुखी, जकै निरखि निसि-रंग।
चौंकि भजै निज छाँह तकि, तजै न गुरुजन-संग॥ १९॥

अस्य तिलक

स्यामता की संका ब्यंजित होति है सो नायक की संका छोड़िकै प्रयोजन ही नायक परबाच्यसिद्धांग है। १९ अ॥

अथ संदिग्धलक्षण-वर्णनं-(दोहा)

दोइ अर्थ संदेहमै, पै नहिँ कोऊ दुष्ट।
सो संदिग्धप्रधान है, ब्यंगि कहै कबि पुष्ट॥ २०॥

---

[१६] जहाँ०-जिहि मनु रमैतु रैनि (भारत) ; जहाँ रमै मन रैन (बेल०)। तहाँ-तहाँ (वही)। परि-पर (वेंक०, बेल०)।

[१६ अ] ही-हौ (सर०)। नहिँ०-ब्रहिकिबो (वेंक०)।

[१७] को-की (भारत) ; तेहि (बेल०)। अर्थ-सकल (वही)।

[१८] न-नद (सर०)। बिरहिनि-बिरहिन (वेंक०)।

[१९] पै-ये (भारत)। को-× (सर०)।

[१९ अ] ही-नहीँ (भारत)।

[२०] दोइ-होइ (भारत, वेंक०, बेल०)। मै-मैँ (वही)। पै०-इन्है न (भारत)।

यथा

जैसे चंद निहारिकै, इकटक रहत चकोर।
त्यों मनमोहन तकि रहे, तिय-बिंबाधर-ओर ॥ २१ ॥

अस्य तिलक

सोभा बरनन चूँबिबे को अभिलाप दोऊ संदेहप्रधान हैं । २१ अ ।

अथ असुंदर-वर्णनं—(दोहा)

ब्यंगि कढ़ै बहुतक न पै बाच्य अर्थ तें चारु।
ताहि असुंदर कहत कबि, करिकै हिये बिचारु ॥ २२ ॥

यथा

बिहग-सोर सुनि सुनि समुझि, पछवारे की बाग।
जाति परी पियरी खरी प्रिया भरी अनुराग ॥ २३ ॥

अस्य तिलक

नायक को सहेट बदि राख्यो सो आवै है यह ब्यंगि कढ़ी सो बाच्यार्थ ही है तातें चारु नहीं । २३ अ ॥

(दोहा

एहि बिधि मध्यम काब्य को, जानि लेहु ब्यौहार।
तितनेहू सब भेद हैं, जितने धुनि-बिस्तार ॥ २४ ॥

अथ अवरकाव्य

बचनारथ रचना जहाँ, ब्यंगि न नेकु लखाइ।
सरल जानि तहि काव्य कों, अबर कहैं कबिराइ ॥ २५ ॥
अबरकाब्यहू मैं करै, कबि सुघराई मित्र।
मनरोचक करि देत है, बचन अर्थ कों चित्र ॥ २६ ॥

---

[२१] रहत—तकत (भारत, वेंक०, बेल०)।
[२१ अ] चूँबिबे—चूमिबे (भारत, वेंक०)।
[२२] कढ़ै—चढ़ै (सर०)। बहु०—बहु जतन (भारत); बहु तकन (वेंक०); बहुतकन्ह (बेल०)। तें०—संचार (भारत, वेंक०, बेल०)।
[२३ अ] आवै-आयौ (भारत, वेंक०)।
[२४] तितने०-जितनेहू सब (भारत); तितने ही सब (वेंक०); तितने यामैं (बेल०)। हैं—ऊ (भारत)।
[२५] बचनारथ—बचनाथिर (भारत)। रचना—चरना (सर०)।
[२६] 'सर०' मैं छूट गया है।

वाच्यचित्र–(कबित्त)

चंद चतुरानन - चखन के चकोरन के,
चंचरीक चंडीपति - चित चोपकारियै।
चहूँ चक्क चाखो जुग चरचा चिरानी चलै,
दास चाखो-फलद चपल भुज चारियै।
चोप दीजै चारु चरनन चित चाहिबे की,
चेरनि को चेरो चीन्हि चक्रन्ह निवारियै।
चक्रधर चक्कवै चिरैया के चढ़ैया चिंता-
चूहरी कौं चित्त तैं चपल चूरि डारियै ॥ २७ ॥

यथा, अर्थचित्र–(सवैया)

नीर बहाइकै नैन दोऊ मलिनाई की खेह करै सनि गारो।
बातैं कठोर लुगाई करै अपनी अपनी दिसि ढेल सो डारो।
दास को ईस करै न मनो जु है बैरी मनोजु हुकूमतिवारो।
छाती के ऊपर व्याधि के भौन उठावतो राज सनेह तिहारो ॥ २८ ॥

इति श्रीसकलकलाधरकलाधरवंशावतंसश्रीमन्महाराजकुमार-
श्री बाबूहिंदूपतिविरचिते काव्यनिर्णये गुणीभूतादि-
व्यंग्यअवरकाव्यवर्णनं नाम
सप्तमोल्लासः ॥ ७ ॥

---

[२७] चकोरन के–चकोरन को (भारत, बेल०)। चक्क–चक्र (भारत, वेंक०, बेल०)। फलद०–फल देत पल (भारत, बेल०)। चरनन–चरचन्ह (सर०)। की–को (वही)। चेरनि को-चेरनी को (भारत, वेंक०)। चक्रन्ह–चूकन (भारत); चूकन्ह (वेंक०); चूक को (बेल०)। चिरैया–रचैया (भारत); चिरी के (बेल०)। चढ़ैया–चढ़वैया (वही)। कौं–के (सर०)।

[२८] बहाइ–बहार (भारत)। ढेल-रेत (वही)। को–के (बेल०)। करै न०–के रैन (भारत); करन (वेंक०)। मनो जु०–मनै जहँ (वेंक०); मने जहँ (बेल०)।

८

(दोहा)

अलंकार-रचना बहुरि, करौं सहित-बिस्तार ।
एक एक पर होत जे, भेद अनेक प्रकार ॥ १ ॥
कबि-सुघराई कौं कहैं, प्रतिभा सब कबिराइ ।
तेहि प्रतिभा को होतु है, तीनि प्रकार सुभाइ ॥ २ ॥
सब्दसक्ति प्रौढ़ोक्ति अरु स्वतःसभवी चारु ।
अलंकार छबि पावतो, कीन्हे त्रिबिधि प्रकारु ॥ ३ ॥
बड़े छंद मों एक ही, भूषन को बिस्तारु ।
करौ घनेरो धर्ममै, कै माला सजि चारु ॥ ४ ॥
और हेतु नहिं केवलै, अलंकार-निरबाहु ।
कबि पंडित गनि लेत हैं, अवरकाव्य में ताहु ॥ ५ ॥
रुचिर हेतु रस को बहुरि, अलंकारजुत होइ ।
चमत्कारगुन-जुक्त है, उत्तम कबिता सोइ ॥ ६ ॥
अलंकार रसबात गुन, ये तीनौ दृढ़ जाहि ।
और ब्यंगि कछु नाहि तौ मध्यम कहिये ताहि ॥ ७ ॥

---

[१] जे—जहँ (बेल०) । भेद—जुक्ति (सर०) ।

[२] इसके अनंतर 'वेंक' मैं यह अंश अधिक है—अस्य तिलक । श्रो प्रतिभा जो है तिसको ग्रंथकर्ता तीन प्रकार को कहा. एक प्रतिभा सब्दसक्ति से होती है, दूसरी प्रतिभा कविप्रौढ़ोक्ति करिकै होती है. तीसरी प्रतिभा स्वतःसंभवी जानिये ।

[३] पावतो—पावते (सर०) । कीन्हे—कीन्हो (भारत, वेंक०, बेल०) ।

[४] बड़े०—छंद भरे मैं (वेंक०) । एक ही—एक कहि (भारत) । मो—मैं (बेल०) । भूषन०—करि भूषन (बेल०) । मै—मनि (भारत, वेंक०); मैं (बेल०) । कै—इक (वही) ।

[५] और—अवर (भारत, बेल०) । अवर—और (सर०, वेंक०) ।

[६] गुन—जन (भारत) ।

[७] और—अवर (भारत, बेल०) । कहिये०—कहिबो० (भारत) ; कविता आहि (बेल०) ।

(छप्पय)

उपमा पूरन अर्थि लुप्त उपमा 'रु अनन्वय।
उपमेयोपम अरु प्रतीप श्रौती उपमाचय।
पुनि दृष्टांत बखानि जानि अर्थांतरन्यासहि।
बिकस्वरो निदरसन तुल्यजोगिता प्रकासहि।
गनि लेहु सु प्रतिबस्तूपमा, अलंकार बारह बिदित।
उपमान और उपमेय को, है बिकार समुझौ सु चित ॥ ८ ॥

अथ उपमालंकार-वर्णनं—(दोहा)

जहँ उपमा उपमेय है, सो उपमाबिस्तार।
होत आरथी श्रौतियौ, ताको दोइ प्रकार ॥ ९ ॥
बर्ननीय उपमेय है, समता उपमा जानि।
जो है आई आदि तें, सो आरथी बखानि ॥ १० ॥

अथ आर्थी उपमा, यथा

समता समबाचक धरम बर्न्य चारि इक ठौर।
ससि सो निर्मल मुख, जथा पूरन उपमा डौर ॥ ११ ॥
ससि समता सो समबचन, निर्मलता है धर्म।
बर्न्य सुमुख इहि भाँति सौं, जानौ चारौ मर्म ॥ १२ ॥

पूर्णोपमा बहु धर्म तें, यथा

संपूरन उज्जल उदित, सीतकरन अँखियान।
दास सुखद मन कौं, प्रिया-आनन चंद-समान ॥ १३ ॥

---

[८] अर्थि—अर्थ (भारत, वेंक०, बेल०)। उपमा 'रु०—उपमा अनन्य (भारत); उपमान० (वेंक०, बेल०)। बिकस्वरो०—बिकस्वर निदरसन सु (भारत); बिकस्वरो निदरसन और (बेल०)। समुझौ—समुझिय (सर०)।

[११] बर्न्य—बर्न (भारत, वेंक०)। डौर—गौर (भारत, वेंक०, बेल०)। इसके अनंतर 'वेंक०' मैं यह अंश अधिक है—अस्य तिलक। यहाँ सखि उपमान सो बाचक निर्मल धर्म मुख उपमेय ये चारो जहाँ रहैं तिनको पूर्णोपमा कहिये।

[१२] बर्न्य—बर्नि (सर०, वेंक०)। सुमुख—सुमुखि (सर०)। 'वेंक०' मैं यह अधिक है—तिलक।

यथा–(कबित्त)

कढ़िकै निसंक पैठि जाति झुंड झुंडन मैं,
लोगन कौं देखि दास आँनद पगति है।
दौरि दौरि जाहि ताहि लाल करि डारति है,
अंग लगि कंठ लगिबे कौं उमगति है।
चमक - झमकवारी ठमक - जमकवारी,
रमक - तमकवारी जाहिर जगति है।
राम असि रावरे की रन मैं नरन मैं,
निलज्ज बनिता सी होरी खेलन लगति है॥ १४॥

अथ पूर्णोपमामाला-वर्णनं–(दोहा)

कहुँ अनेक की एक है, कहुँ एक की अनेक।
कहूँ अनेक अनेक की, मालोपमा-बिबेक॥ १५॥

अथ अनेक की एक

नैन कंज-दल से बड़े, मुख प्रफुलित ज्यौं कंजु।
कर पद कोमल कंज से, हियो कंज सो मंजु॥ १६॥

अथ एक की अनेक, यथा

जहँ एक की अनेक तहँ भिन्न धर्म तैं कोइ।
कहूँ एक ही धर्म तैं, पूरन माला होइ॥ १७॥

अथ भिन्न धर्म की मालोपमा, यथा

मरकत से दुतिवंत हैं, रेसम से मृदु बाम।
निपट महीन मुरार से, कच काजर से स्याम॥ १८॥

---

[१४] पैठि–बैठि (सर०)। ताहि–तेहि (वही)। रमक–दमक (भारत, बेल०)। 'वेंक०' मैं अधिक—तिलक। पूर्नोपमा का माला।

[१५] एक की–है एक (भारत, बेल०)।

[१६] कंज से–कंज सौं (वेंक०)।

[१७] कोइ–जोइ (भारत, बेल०)।

[१८] निपट०–चिक्कन महिन (वेंक०)। से–सो (सर०)।

अथ एक धर्म तें मालोपमा–(सवैया)

सारद नारद पारद अंग सी छीरतरंग सी गंग की धार सी।
संकर-सैल सी चंद्रिका-फैल सी सारस-रैल सी हंसकुमार सी।
दास प्रकास हिमाद्रिबिलास सी कुंद सी कास सी मुक्तिभँडार सी।
कीरति हिंदूनरेस की राजति उज्जल चारु चमेली के हार सी ॥१६॥

अथ अनेक अनेक की मालोपमा

पंकज से पग लाल नवेली के केदली-खंभ सी जानु सुढार हैँ।
चारि के अंक सी लंक लगी तनु कंजकली से उरोज-प्रकार हैँ।
पल्लव से मृदु पानि जपा के प्रसूनन से अधरा सुकुमार हैँ।
चंद सो निर्मल आनन दासजू मेचक चारु सेवार से बार हैँ ॥२०॥

अथ लुप्तोपमा-वर्णनं–(दोहा)

समतादिक जे चारि हैँ, तिनमैँ लुप्त निहारि।
एक दोइ की तीनि, तौ लुप्तोपमा बिचारि ॥ २१ ॥

अथ धर्मलुप्तोपमा, यथा

देखि कंज से बदन पर, दृग खंजन से दास।
पायो कंचनबेलि सी बनिता-संग बिलास ॥ २२ ॥

अस्य तिलक

यामैँ काव्यलिंग को संकर है। २२ अ ॥

अथ उपमानलुप्त-वर्णनं–(दोहा)

सुबस करन बरजोर सखि, चपल चित्त को चौर।
सुंदर नंदकिसोर सो, जग मैँ मिलै न और ॥ २३ ॥

अथ वाचकलुप्त-वर्णनं

अमल सजल घनस्याम दुति, तड़ित पीतपट चारु।
चंद बिमल मुख-हरि निरखि, कुल की काहि सँभारु ॥ २४ ॥

---

[१६] रैल–तार (बेल०) । के–कि (भारत) ; की (वेंक०) । प्रकार–उदार (भारत, बेल०) ।
[२१] की– के (वेंक०) । तौ–लौं (भारत, बेल०) ।
[२२] पर–बर (भारत) । कंचन०–कंजने बेल (सर०) ।
[२३] को–की (भारत); के (बेल०) ।
[२४] दुति–तन (भारत, वेंक०, बेल०) ।

अथ उपमेयलुप्त-वर्णनं

जपा पुहुप से अरुनमै, मुकुतावलि से स्वच्छ।
मधुर सुधा सी कढ़ति है, तिनतें दास प्रतच्छ ॥ २५ ॥

अथ वाचक-धर्मलुप्त-वर्णनं

लखि लखि सखि सारस नयन, इंदु बदन घन स्याम।
बिज्जु हास दारयो दसन, बिंबाधर अभिराम ॥ २६ ॥

अथ वाचक-उपमानलुप्त

हिय सियरावै बदन-छबि, रस बरसावै केस।
परम घाय चितवनि करै, सुंदरि यहै अँदेस ॥ २७ ॥

अथ उपमेय-धर्मलुप्त-वर्णनं—(सवैया)

मगु डारत ईंगुर-पावड़े से सुमना से बगारत आइ गई।
जियरे मैं ठगौरी सी दैकै भले हियरे बिच होरी सी लाइ गई।
नहिं जानिये को ही कहाँ की ही दासजू धन्य हिरन्यलता सी नई।
ससि सो दरसाइ सरे सी लगाइ सुधा सो सुनाइकै जात भई ॥ २८ ॥

अथ उपमेय-वाचक-धर्मलुप्त-वर्णनं—(दोहा)

तिहूँ लुप्त सो जो रहै, केवल ही उपमान।
वाही कौं रूपकातिसयउक्ति कहैं मतिमान ॥ २९ ॥

---

[२५] जपा—जया (सर०) । मै—मैं (वेंक०, बेल०) । दास—हास (भारत, बेल०) ।

[२६] लखि०—लखि सखि (भारत); लखु लखि (बेल०) ।

[२७] बरसावै—दरसावै (भारत, वेंक०, बेल०) । घाय—घाव (भारत, बेल०) । यहै—यही (भारत, वेंक०, बेल०) ।

[२८] सुमना से—सुमना सो (भारत, वेंक०, बेल०) । भले—भलो (भारत); भली (वेंक०) । ही—है (भारत, बेल०) । ही—है (भारत, वेंक०, बेल०) । धन्य०—कंचनबेलि सी बाल (बेल०) । सरे सी०—सरे सो० (भारत, वेंक०); मुरी मुसुकाइ (बेल०) ।

[२९] तिहूँ—तीहू (भारत) । सो०—ते और है (भारत); ते वोर है (वेंक०); जहँ होत हैं (बेल०) । ताही०—ताही कौं रूपातिसय० (भारत, वेंक०); रूपकातिसय उक्ति तहँ बरनत हैं । (बेल०) ।

यथा-(दोहा)

नभ ऊपर सर बीचिजुत, कहा कहौं बृजराज।
तापर बैठो हौं लख्यो, चक्रवाक जुग आज ॥ ३० ॥

अथ अनन्वय, उपमेयोपमा लक्षणं

जाकी समता ताहि कौं, कहत अनन्वय भेय।
उपमा दोऊ दुहुँन की, सो उपमाउपमेय ॥ ३१ ॥

अनन्वय, यथा

मिली न और प्रभा रती करी भारती दौर।
सुंदर नंदकिसोर सो, सुंदर नंदकिसोर ॥ ३२ ॥

उपमेयोपमा, यथा

तरलनयनि तुश्र कचनि से, स्याम तामरस-तार।
स्याम तामरस-तार से, तेरे कच सुकुमार ॥ ३३ ॥

अथ प्रतीप-लक्षणं

सो प्रतीत उपमेय को, कीजै जब उपमान।
कै काहू बिधि बर्न्य को, करौ अनादर ठान ॥ ३४ ॥

उपमेय को उपमान, यथा

लख्यो गुलाब प्रसून मैं, मैं मधुछक्यो मलिंदु।
जैसे तेरे चिबुक मैं, ललिता लीलाबिंदु ॥ ३५ ॥
छुटे सदा गति-सँग लसैं, पानिपभरे अमान।
स्याम घटा सोहै अली, सुंदर कचन-समान ॥ ३६ ॥

---

[३०] बीचि–बीच (सर्वत्र)।

[३२] 'वेंक०' मैं 'अस्य तिलक' देकर खड़ी बोली मैं संपादक ने गद्य मैं अनन्वय को स्पष्ट किया है। यह अंश ग्रंथसंपादक का ही है, अतः नहीं दिया जाता।

[३३] वेंक० मैं गद्य की व्याख्या ग्रंथसंपादक की है जो नहीं दी जाती।

[३४] जब-बड़ (सर०)।

[३५] जैसे–जैसो (भारत, वेंक०)। तेरे–तेरो।

अनादरवर्ण्य-प्रतीप-वर्णनं, यथा—(कवित्त)

बिद्या बर बानी दमयंती की सयानी
मंजुघोषा मधुराई प्रीति रति की मिलाई मैँ।
चख चित्ररेखा के तिलोत्तमा के तिल लै,
सुकेसी के सुकेस सची साहिबी सोहाई मैँ।
इंदिरा उदारता औ' माद्री की मनोहराई,
दास इंदुमती की लै सुकुमारताई मैँ।
राधा के गुमान मैँ समान बनिता न, ताके
हेतु या बिधान एकठान ठहराई मैँ ॥३७॥

यथा—(दोहा)

महाराज रघुराजजू, कीजै कहा गुमान।
दंड कोस दल के धनी, सरसिज तुम्हैँ समान ॥ ३८ ॥

अथ लक्षण प्रतीप को

उपमा कौँ जु अनादरै, बन्र्य आदरै देखि।
समता देइ न नाम लै, तऊ प्रतीपै लेखि ॥ ३९ ॥

उपमान को अनादर, यथा

बाग-लता मिलि लेइ किन, भौँरनि प्रेमसमेत।
आवति पद्मिनी ग्राम ढिग, फिर न लगैगी सेत ॥ ४० ॥

समता न दीबो, यथा

दुजगन को आस्रय बड़ो, देवन को प्रिय प्रान।
ता रघुपति आगे कहा, सुरपति करै गुमान ॥४१॥

---

[३७] दमयंती—की दमैती (सर०)। राधा—राधे (वही) मैँ—यो (वही)।
[३९] बन्र्य-बन्वि (सर०); बरन (भारत); बर्नै (वेंक०)।
[४०] समेत—समेति (भारत, बेल०)। लगैगी-लहैगी (भारत, वेंक०,बेल०)। सेत—सेति (भारत, बेल०)।
[४१] आस्रय—आसय (सर०)। प्रिय—तिय (वेंक०)। सुरपति—सुरतरु (वही)।

यथा–(कवित्त)

अलक पै अलिबृंद भाल पै अरध चंद,
भ्रू पै धनु नयननि पै वारौं कंज-दल मैं।
नासा कीर मुकुर कपोल बिंब अधरनि,
दाखो वारौं दसननि ठोढ़ी अंबफल मैं।
कंबु कंठ भुजनि मृनाल दास कुच कोक,
त्रिबली तरंग वारौं भौंर नाभिथल मैं।
अचल नितंबन पै जंघनि कदलि-खंभ,
बाल-पग-तल वारौं लाल मखमल मैं ॥४२॥

यथा–(दोहा)

सही सरस चंचल बड़े, मड़े रसीली बास।
पै न दुरेफनि इन दृगनि, सरिस कहौं मैं दास ॥४३॥

पुनः प्रतीप-लक्षणं

जहँ कीजत उपमेय लखि, उपमा ब्यर्थ बिचार।
ताहू कहत प्रतीप हैं, यह पाँचयो प्रकार ॥४४॥

यथा

जहाँ प्रिया-आनन उदित, निसि-बासर सानंद।
तहाँ कहा अरबिंद है, कहा बापुरो चंद ॥४५॥
प्रभाकरन तमगुनहरन, धरन सहसकर राजु।
तव प्रताप ही जगत मैं, कहा भानु को काजु ॥४६॥

इति आर्थी उपमा।

अथ श्रौती उपमा-लक्षणं–(दोहा)

धर्म सहज कै स्लेष लखि सुकबि सुरुचि सरि देइ।
श्रौती उपमा पूरनै, सुनै सुमति चित लेइ ॥४७॥

---

[४२] अरध–अर्ध (सर०)। भ्रू–भ्रुव (वही)। अंब–अंबु (वही)।
[४३] मड़े–मढ़े (वेंक०, बेल०)।
[४४] पाँचयो –पाँचौ परकार (सर०)।
[४७] कै०–अस्लेषि (भारत)। लखि–करि (बेल०)। सुकबि–जहाँ (बेल०) सुरुचि–सरुचि (भारत); सुकबि (बेल०)। सरि–कहि (वेंक०)। देइ–देत (बेल०)। पूरनै–ताहि को (वही)। सुनै०–कहत सदा सुभ चेत (वही)।

यथा

बुध गुन ऐगुन संग्रहैं, खोलैं सहित बिचार।
ज्यों हर-गर गोए गरल प्रगटे ससिहि लिलार ॥४८॥

श्लेष धर्म तें

ज्यौं अहिमुख बिष सीपमुख मुकुत स्वातिजल होइ।
बिगरत कुमुख सुमुख बनत, त्यौं ही अच्छर सोइ ॥४९॥

यथा—(सवैया)

ऊपर ही अनुराग लपेटे जे अंतर को रँग है कछु न्यारो।
क्यौं न तिन्हैं करतार करै हरुवो अरु गुंजनि लौं मुँह कारो।
भीतर बाहिरहू जहँ दास वही रँग दूजो को नाहिं सँचारो।
ते गुनवंत गरू ह्वै करैं नित मूँगा ज्यौं मोतिन संग बिहारो ॥५०॥

मालोपमा एक धर्म तें, यथा—(कवित्त)

दास फनि मनि सौं ज्यौं पंकज तरनि सौं ज्यौं,
तामसी रजनि सौं ज्यौं चोर उमहत हैं।
मोर जलधर सौं चकोर हिमकर सौं ज्यौं,
भौंर इंदीबर सौं ज्यौं कोबिद कहत हैं।
कोकिल बसंत सौं ज्यौं कामिनी सुकंत सौं ज्यौं,
संत भगवंत सौं ज्यौं नेमहि गहत हैं।
भिच्छुक भुआल सौं ज्यौं मीन जल-माल सौं ज्यौं,
नैन नँदलाल सौं त्यौं चायनि चहत हैं ॥५१॥

---

[४८] गुन०—अगुनो गुन (भारत, वेंक०)। ज्यौं—जौं (भारत)। प्रगटे—प्रगटै (भारत, वेंक०)

[४९] सोइ—दोय (वेंक०)।

[५०] लपेटे०—लपेटने (भारत, वेंक०); लसै जेहि (बेल०)। मुहँ—मुख (सर०)। जहँ—जे हैं (सर०); यह (भारत, वेंक०)। वही—वहै (बेल०)। दूजो०—दूसरो नाहिँ सँभारो (भारत)। गरू०—गरू है रहैं (भारत); महा गरुये (बेल०)। नित—जग (वही)। ज्यौं—और (सर०)।

[५१] सुकंत—स्वकंत (बेल०)।

मालोपमा भिन्न धर्म तें, यथा–(सवैया)

मित्र ज्यौं नेहनिबाह करै कुलनारिनि ज्यौं परलोक-सुधारिनि।
संपति-दानि सुसाहिब ज्यौं गुरु लोगनि ज्यौं गुरुग्यान-पसारिनि।
दासजू भ्रातनि ज्यौं बलदाइनि मातनि ज्यौं बहुदुक्ख-निवारिनि।
या जग मैं बुधिवंतन कौं बर बिद्या बड़ी बित ज्यौं हितकारिनि ॥५२॥

यथा–(कबित्त)

चंद की कला सी सीतकरनि हियें की गुनि,
पानिपकलित मुकताहल के हार सी।
बेनी बर बिलसै प्रयागभूमि ऐसी, है
अमल छबि छाइ रही जैसी कछु आरसी।
दास नित देखिये सची सी सँग-उरबसी,
कामद अनूप कलपद्रुम की डार सी।
सरस सिँगार सुबरन बर भूषन सी,
बनिता की फबिता है कबिता उदार सी ॥५३॥

अथ दृष्टांतालंकार-लक्षणं–(दोहा)

लखि बिंब-प्रतिबिंब गति, उपमेयो उपमान।
लुप्त सब्द-बाचक किये, है दृष्टांत सुजान ॥५४॥
साधर्मो बैधर्म सो, कहुँ वैसोई धर्म।
कहूँ दूसरी बात तैं जानि परै सोइ मर्म ॥५५॥

उदाहरण साधर्म्य दृष्टांत को

कान्हर कृपा-कटाच्छ की करै कामना दास।
चातिक चित मो चेततो, स्वाति-बूँद की आस ॥५६॥

---

[५२] बित–वित्तु (सर०); पितु (भारत, वेंक०)।

[५३] गुनि–गुन (सर०, भारत)। पानिप०–पानी पंकलित (भारत)। के–को (सर०)। छाइ–छाति (सर०); छाज (भारत); छाजि (वेंक०)।

[५४] लखि–लखी (भारत, वेंक०)। बिंब–बिंबा (बेल०)। है–यह (भारत)।

[५५] सो–से (बेल०)। वैसोई–बेसतइ (सर०); बिसेष है (बेल०)। दूसरी०–होत सामान्य (वही)। जानि०–जानत हैं जे (वही)।

[५६] मो०–मैं चेत त्यौं (भारत); चित मैं चेत तो (वेंक०); मैं बसत है (बेल०)। की–को (सर०)।

यथा—(सवैया)

और सौं केतऊ बोलै हँसै प्रिय, प्रीतम की तूँ पियारी है प्रान की।
केतो चुनै चिनगी पै चकोर के चोप है केवल चंदछटान की।
जौ लौं न तूँ तब ही लौं अली गति दास के ईस पै और तियान की।
भास तरैयन मैं तब लौं जब लौं प्रगटै न प्रभा जग भान की ॥५७॥

अथ माला, यथा

अरबिंद प्रफुल्लित देखिकै भौंर अचानक जाइ अरैं पै अरैं।
बनमाल-थली लखिकै मृग-सावक दौरि बिहार करैं पै करैं।
सरसी ढिग पाइकै ब्याकुल मीन हुलास सौं कूदि परैं पै परैं।
अवलोकि गुपाल कौं दासजू ये अँखियाँ तजि लाज ढरैं पै ढरैं ॥५८॥

वैधर्म्य दृष्टांत, यथा—(दोहा)

जीवन-लाभ हमैं लखे, लाल तिहारी काँति।
बिना स्याम घन छनप्रभा, प्रभा लहै कहि भाँति ॥५९॥

अथ अर्थांतरन्यास-लक्षणं

साधारन कहिये बचन, कछु अवलोकि सुभाउ।
ताकौं पुनि दृढ़ कीजिये, प्रगटि बिसेष बनाउ ॥ ६० ॥
कै बिसेष ही दृढ़ करौ, साधारन कहि दास।
साधर्महु बैधर्म तैं, है अर्थांतरन्यास ॥ ६१ ॥

---

[५७] प्रिय—पर (वेंक०, बेल०)। तूँ०—तु ही प्यारी (भारत)। केतो-केती (वेंक०, बेल०) पै—को (वेंक०, बेल०)। के—को (भारत); पै (वेंक०, बेल०)।

[५८] हुलास०—बिसाल से (सर०)।

[५९] लाल—स्याम (भारत, बेल०)।

[६०] सुभाउ—सुभाय (भारत, वेंक०, बेल०)। प्रगटि०—प्रगट बिसेष बनाय (भारत); प्रगट बिसेषि बताय (वेंक०); प्रगट बिसेषहि ल्याय (बेल०)।

[६१] करौ—करों (वेंक०) ; करै (बेल०)। साधर्महु—साधर्महि (वही)। तैं—करि (वही)।

साधर्म्य अर्थांतरन्यास, सामान्य की दृढ़ता विशेष सों

जाको जासों होइ हित, वहै भलो तिहि *दास*।
जगत ज्वालमय जेठ ही, जी सों चहै जवास ॥ ६२ ॥
बरजतहू जाचक जुरैं, दानवंत की ठौर।
करी करन झारत रहैं, तऊ भ्रमत हैं भौर ॥ ६३ ॥

माला, यथा–(सवैया)

धूरि चढ़ै नभ पौनप्रसंग तें कीच भई जलसंगति पाई।
फूल मिले नृप पै पहुँचै कृमि, काठनि संग अनेक बिथाई।
चंदनसंग कुदारु सुगध ह्वै नींबप्रसंग लहै करुआई।
*दास*जू देख्यो सही सब ठौरनि संगति को गुन-दोष न जाई ॥६४॥

वैधर्म्य, यथा–(दोहा)

जाको जासों होइ हित, वहै भलौ तिहि *दास*।
सावन जग-ज्यावन गुनौ, का लै करै जवास ॥ ६५ ॥

माला, यथा–(सवैया)

पंडित पंडित सों सुखमंडित सायर सायर के मन मानै।
संतहि संत भनंत भलो गुनवंतनि कों गुनवंत बखानै।
जा पहँ जा सह हेतु नहीं कहिये सु कहा तिहि की गति जानै।
सूर कों सूर सती कों सती अरु *दास* जती कों जती पहिचानै ॥६६॥

विशेष की दृढ़ता सामान्य तें साधर्म्य, यथा–(दोहा)

कैसे फूले देखिये, प्रात कमल के गोत।
दास मित्रउद्दोत लखि, सबै प्रफुल्लित होत ॥ ६७ ॥

---

[६२] भलो–भलै (भारत)।
[६३] की–के (भारत, बेल०)। भ्रमत०–भ्रमैं तित मोर (सर०); तजत नहिं भौंर (बेल०)।
[६४] काठनि–काटनि (भारत); काँटनि (बेल०)।
[६५] तिहि–हित (भारत, वेंक०, बेल०)।
[६६] पहँ–पर (बेल०)। सह–कहँ (वेंक०); कर (बेल०)। हेतु-प्रेम (वही)। वेंक० में आधुनिक 'अस्य तिलक' भी दिया है।
[६७] मित्र०–जु मित्र उदोत (भारत)।

वैधर्म्य, यथा

मूढ़ कहा गथ-हानि की सोच करत मलि हाथ।
आदि अंत भरि इंदिरा, रही कौन के साथ ॥ ६८ ॥

अथ विकस्वरालंकार-लक्षणं–(दोहा)

कहि बिसेष सामान्य पुनि, कहिये बहुरि बिसेष।
ताहि बिकस्वर कहत हैं, जिनके बुद्धि असेष ॥ ६९ ॥

यथा–(सवैया)

देति सुकीया तुँ पी को सुखै निजु केती बगारतहूँ मति मैली।
दासजू ये गुन हैं जिनमैं तिन ही की रहै जग कीरति फैली।
बात सही बिधि कीन्हो भलो तिहि यौं ही भलाइनि सौं निरमैली।
काढ़ि अँगारन मैं गहि गारहूँ देति सुबासना चंदन-चैली ॥७०॥

अथ निदर्शनालंकार-लक्षणं--(दोहा)

एक क्रिया तैं देत जहँ, दूजी क्रिया लखाइ।
सत असतहु तैं कहत हैं, निदरसना कबिराइ ॥७१॥
सम अनेक वाक्यार्थ को, एक कहै धरि टेक।
एकै पद के अर्थ को, थापै यह वह एक ॥७२॥

वाक्यार्थ की एकता सत् की, यथा–(सवैया)

तीरथ-तोम नहाननि कै बहु दाननि दै तपपुंज तपै तूँ।
जोम कै सामुहे जंग जुरै दृढ़ होम कै सीस धरै अरपै तूँ।

---

[६८] वेंक० में आधुनिक 'तिलक' भी है।
[६९] के–की (बेल०)।
[७०] केती–काज (बेल०)। हूँ–ही (भारत, वेंक०) ; है (बेल०)। मैली–फैली (सर०)। कीन्हो–की हौं (भारत)। भलो–भली (भारत, बेल०)। तिहि–तोहि (बेल०)। गहि–गढ़ि (भारत, वेंक०, बेल०)। गारहूँ–गेरेहू (भारत, बेल०)।
[७१] सत०–संत असंतहु को कहत (भारत)। तैं–को (वेंक०) ; से (बेल०)। धरि–घटि (सर०)। कै–कर (वही)।

दासजू बेद पुराननि कौं करि कंठ मुखागर नित्य लपै तूँ।
घोस तमाम मैं जो इक जामहु राम को नाम निकाम जपै तूँ ॥७३॥

वाक्यार्थ की असत् असत् की एकता, यथा

प्रानबिहीन के पाइ पलोट्यो अकेले ह्वै जाइ घने बन रोयो।
आरसी अंध के आगे धर्यो बहिरे सौं मतो करि ऊतरु जोयो।
ऊसर मैं बरस्यो बहु बारि पषान के ऊपर पंकज बोयो।
दास बृथा जिन साहिब सूम के सेवन मैं अपनो दिन खोयो ॥७४॥

वाक्यार्थ असत् सत् की एकता, यथा

जोगुनू भानु के आगे भली बिधि आपनी जोतिन्ह को गुन गैहै।
माखियौ जाइ खगाधिप सौं उड़िबे की बड़ी बड़ी बात चलैहै।
दास जु पै तुकजोरनिहार कबिंद उदारन की सरि पैहै।
तौ करतारहु सौं औ' कुम्हार सौं एक दिनो झगरो बनि ऐहै ॥७५॥

पुनः, यथा

पूरब तें फिरि पच्छिम ओर कियो सुरआपगा-धारन चाहैं।
तूलन तोपिकै ह्वै मतिअंध हुतासन-धंध प्रहारन चाहैं।
दासजू देखौ कलानिधि-कालिमा छूरिन सौं छिलि डारन चाहैं।
नीति सुनाइ ये मो हिय तें नँदलाल को नेह निवारन चाहैं ॥ ७६ ॥

पदार्थ की एकता, यथा—(दोहा)

इन दिवसन मनभावतो, ठहरायो सबिबेक।
सूर ससी कंटक कुसुम, गरल गंधबह एक ॥ ७७ ॥

---

[७३] तोम०—तोमन—हाननि (भारत, वेंक०) ; तो मन न्हाननि (बेल०)। कै—को (भारत) ; कौ (बेल०)। धरै—धरो (सर०)। अरपै—उर पै (भारत) ; अरि पै (वेंक०, बेल०)।

[७४] बहिरे—बहिरो सो (सर०) ; बहिरो को (भारत)। करि—कहि (सर०)। मैं—मौं (भारत)।

[७५] जु पै—जबै (भारत, बेल०) ; जु वै (वेंक०)। दिनो—दिना (भारत, वेंक०, बेल०)। वेंक० मैं आधुनिक 'अरय तिलक' भी है।

[७६] धंध—दंद (बेल०)। ये—कै (भारत, वेंक०, बेल०)। तैं—मैं (वही)।

[७७] गंधबह—बाधबह (सर०)।

(सवैया)

ब्याल मृनाल सुडार कराकृति भावतेजू की भुजानि मैं देख्यो।
आरसी सारसी सूर ससी दुति आनन आँनदखानि मैं देख्यो।
मैं मृग मीन ममोलन की छबि दास उन्हीं अँखियानि मैं देख्यो।
जो रस ऊख मयूख पियूष मैं सो हरि की बतियानि मैं देख्यो ॥७८॥

एक क्रिया तें दूजी क्रिया की एकता, यथा– (दोहा)

तजि आसा तन प्रान की, दीपहिं मिलत पतंग।
दरसावत सब नरन कौं, परम प्रेम को ढंग ॥ ७९ ॥
पदुमिनि-उरजनि पर लसत, मुकुतमाल जुतजोति।
समुझावत यों सुथल-गति, मुक्त नरन की होति ॥ ८० ॥

अथ तुल्ययोगितालंकार-वर्णनं

सम बस्तुनि गनि बोलिये, एक बार ही धर्म।
समफलप्रद हित अहित कौं काहू कौं यह कर्म ॥ ८१ ॥
जा जा सम जहि कहन कौं, वहै वहै कहि ताहि।
तुल्यजोगिता भूषनहि, निधरक देहु निबाहि ॥ ८२ ॥

सम वस्तुनि को एक बार धर्म

साँझ भोर निसि बासरहुँ, क्यों हूँ छीन न होति।
सीतकिरन की कालिमा, वालबदन की जोति ॥ ८३ ॥

यथा वा– (सवैया)

थाह न पैये गभीर बड़े हैं सदा ही रहैं परिपूरन पानी।
राकै बिलोकिकै श्रीजुत दासजू होत उमाहिल मैं अनुमानी।
आदि वही मरजाद लिये रहैं है जिनकी महिमा जगजानी।
काहू के क्यों हूँ घटाए घटैं नहिं सागर औ' गुनआगर प्रानी ॥८४॥

---

[७८] सुडार०–सुडाल० (भारत); सुढाल० (वेंक०); करीकर आकृति (बेल०)। ममोलन-मृनालन (भारत)।

[७९] को–के (सर०)। 'वेंक०' मैं आधुनिक 'तिलक' भी है।

[८०] जुत–की (बेल०)।

[८२] जा०–जेहि जेहि के सम (बेल०)। निधरक–त्रय बिधि (भारत, वेंक०)।

[८३] किरन–करनि (सर०); किरिनि (भारत, वेंक०)।

[८४] राकै–एकै (भारत, वेंक०, बेल०)। 'वेंक०' मैं 'भावार्थ' रूप मैं आधुनिक गद्यांश अधिक है।

हिताहित को फल सम, यथा

जे तट पूजन कौं बिसतारैं पखारैं जे अंगनि की मलिनाई।
जे तुव जीवन लेत हैं देत हैं जीवन जे करि आपु दिढ़ाई।
दास न पापी सुरापी तपी अरु जापी हितू अहितू बिलगाई।
गंग तिहारी तरंगनि सौं सब पावैं पुरंदर की प्रभुताई ॥८५॥

(दोहा)

जो सींचै सर्पिष सिता, अरु जो हनै कुठाल।
कटु लागै तिन दुहुन कौं, इहै नींब की चाल ॥ ८६ ॥

समता को मुख्य ही कहिबो, यथा

सोवत जागत सुख दुखहु, सोई नंदकिसोर।
सोइ व्याधि बैदौ सोई, सोइ साहु सोइ चोर ॥ ८७ ॥
जाइ जोहारै कौन कौं, कहा कहूँ है काम।
मित्र मातु पितु बंधु गुरु, साहिब मेरो राम ॥ ८८ ॥

यथा—(कबित्त)

गुंबज मनोज के महल के सोहाए स्वच्छ,
गुच्छ छबिछाए गजकुंभ गजगामिनी।
उलटे नगारे तने तंबू सैल भारे मठ
मंजुल सुधारे चक्रवाक गतजामिनी।
दास जुग संभुरूप श्रीफल अनूप मन
घावरे करन घावरेन किल कामिनी।
कंदुक कलस बटे संपुट सरस मुकुलित
तामरस हैं उरोज तेरे भामिनी ॥ ८९ ॥

---

[८५] जापी०—जापिहु तू (सर०)।
[८६] इहै—वहै (भारत, वेंक०, बेल०) चाल—छाल (वही)।
[८७] बैदौ०—सो बैदहू (बेल०)। सोई चोर—स्वै० (सर०)।
[८८] कहूँ है—काहु से (भारत, बेल०)। मेरो—मेरे (बेल०)।
[८९] गत—गति (सर०, वेंक०)। घावरे—घायल (बेल०)। करन—करत (भारत, बेल०)। घावरेन—घावरन (सर०, वेंक०); घायलन (बेल०)। बटे—बैठे (भारत), बड़े (वेंक०, बेल०)।

अस्य तिलक

यामैं लुप्तोपमा को संदेहसंकर है। ८९ अ ॥

अथ प्रतिवस्तूपमा-वर्णनं-(दोहा)

नाम जु है उपमेय को, सोई उपमा नाम।
ताकौं प्रतिबस्तूपमा, कहै सकल गुनधाम ॥ ९० ॥
जहँ उपमा उपमेय को नाम, अर्थ है एक।
ताहू प्रतिवस्तूपमा, कहै सा बुद्धिबिबेक ॥ ९१ ॥

यथा-(सवैया)

मुक्त नरो घने जामैं बिराजत रात सितासित भ्राजत ऐनी।
मध्य सुदेस तैं है ब्रह्मांड लौं लाग कहैं सुरलोकनिसेनी।
पावन पानिप सौं परिपूरन देखत दाहि दुखै सुखदेनी।
दास भरै हरि के मन काम कौं बीसबिसै यह बेनी सी बेनी ॥ ९२ ॥

(दोहा)

नारी छूटि गए भई, मोहन की गति सोइ।
नारी छूटि गए जु गति, और नरन की होइ ॥ ९३ ॥
लाल त्रिलोचन अधखुले, आरससंजुत प्रात।
निंदत अरुन प्रभात कौं, बिकसत सारस-पात ॥ ९४ ॥

पुनः लक्षणं

जहाँ बिंब-प्रतिबिंब, नहिँ, धर्महि तैं सम ठान।
प्रतिबस्तुपमा तहि कहैं, दृष्टांतहि मो जान ॥ ९५ ॥

यथा-(सवैया)

कौन अचंभो जौ पावक जारै गरू गिरि है तौ कहा अधिकाई।
सिंधुतरंग सदैव खराई नई न है सिंधुरअंग कराई।

---

[९०] ताकौं०-ताहि प्रतीबस्तूपमा (भारत, बेल०); ताही० (वेंक०)। कहै-कहत (भारत, वेंक०, बेल०)। सकल-सुकबि (भारत, बेल०)।
[९१] कहै०-कहैं सुबुद्धि (भारत, वेंक०, बेल०)।
[९२] रात-राते (बेल०)। भ्राजत-भाजत (सर०)। ब्रह्मांड-ब्रह्मांड (सर०, वेंक०, बेल०); यह माँड (भारत)। सी-सु (वही)।

मीठो पियूष करू बिषरूप पै दासजू यामैं न निंद बड़ाई।
भार चलाइहि आए धूरीन भलेन के अंग सुभावै भलाई॥ ९६॥

इति श्रीसकलकलाधरकलाधरवंशावतंसश्रीमन्महाराजकुमार-
श्रीबाबूहिंदूपतिविरचिते काव्यनिर्णये
उपमादिअलंकारवर्णनं नाम
अष्टमोल्लासः॥ ८॥

९

अथ उत्प्रेक्षादि-वर्णनं-(दोहा)

उत्प्रेक्षा 'रु अपन्हुत्यौ, सुमिरन भ्रम संदेहु।
इनके भेद अनेक हैं, ये पाँचै गनि लेहु॥ १॥

उत्प्रेक्षा-अलंकार-लक्षणं

बस्तु निरखिकै हेतु लखि, कै आगम फल-काज।
कबि कै बकता कहत यह, लगै और सो आज॥ २॥
सम बाचक कहुँ परत यहु मानहु मेरे जान।
उत्प्रेक्षा भूषन कहैं, इहि बिधि बुद्धिनिधान॥ ३॥

---

[९३] भई–जु भौं (वेंक)। 'वेंक०' मैं 'अस्य तिलक' मैं नई-पुरानी मिली-जुली शब्दावली मैं व्याख्या भी जुड़ी है।
[९४] आरस–सारस (सर०)। प्रभात–प्रभाव (वेंक०)।
[९५] ठान-ठानि (भारत, वेल०)।
[९६] रूप०–रीत-ये० (भारत); रीति ये० (वेंक०); दासजू है यह रीति (बेल०)। 'वेंक०' मैं 'अस्य तिलक' शीर्षक से व्याख्या अधिक जुड़ी है।
[१] पाँचै–पाँचो (भारत, वेंक०, बेल०)।
[३] यहु–बहु (भारत); है (वेंक०)।

वस्तूत्प्रेक्षा-वर्णनं

वस्तुत्प्रेक्षा दोइ बिधि, उक्ति अनुक्ति बिषैन।
उक्तिबिषै जग अनउकुति, होत कबिहि को बैन ॥ ४ ॥

उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा

रैनि तिमहले तिय चढ़ी, मुख-छबि लखि नँदनंद।
घरी तीन उदयाद्रि तैं, जनु चढ़ि आयो चंद ॥ ५ ॥

अस्य तिलक

चंद्रमा चढ़िबो आश्चर्य नहीं है, यातैं उक्तबिषया कहिये। ५ अ ॥

यथा वा

लसै बाल-बक्षोज यौं, हरित-कंचुकी-संग।
दल-तल-दबे पुरैनि के, मनौं रथंग बिहंग ॥ ६ ॥

अस्य तिलक

पुरैनि-दल-तरे रथांग जो है चकवा ताको दबिबो आचरजु नहीं, तातैं उक्तविषया है। ६ अ ॥

यथा—(सवैया)

स्याम सुभाय मैं नेह-निकाय मैं आपहू ह्वै गए राधिका जैसी।
राधो करै अवराधो जु माधो मै रीति प्रतीति भई तनमै सी।
ध्यान ही ध्यान सौं ऐसो कहा भयो कोऊ कुतर्क करै यह कैसी।
जानत हौं इन्हैं दास मिल्यो कहुँ मंत्र महा परपिंड-प्रबैसी ॥ ७ ॥

अस्य तिलक

परपिंड-प्रबेसी मंत्र को मिलिबो आचरजु नाहीं। ७ अ ॥

---

[४] × (सर०)। को—की (भारत, बेल०)।

[५ अ] चंद्रमा—चंद्रमा को (भारत, वेंक०)। उक्त—उक्ति (सर०, भारत, वेंक०)। कहिये—× (भारत); अलंकार कहिये जनु सब्द जो है सोई है उत्प्रेक्षा (वेंक०)।

[६ अ] है—मनो सब्द इतना उत्प्रेक्षा (वेंक०)।

[७] राधो—राधे (भारत, वेंक०, बेल०)। सौं—मैं (भारत, बेल०); लै (वेंक०)।

[७ अ] नाहीं—नहीं ॥ अनुक्तिविषया वस्तुत्प्रेक्षा (वेंक०)।

अनुक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा–(सवैया)

चंचल लोचन चारु बिराजत पास लुरी अलकै थहरैं।
नाक मनोहर औ' नकमोतिन की कछु बात कही न परैं।
दास प्रभानि भर्यो तिय-आनन देखत ही मनु जाइ अरैं।
खंजन साँप सुआ सँग तारे मनौं ससि बीच बिहार करैं॥ ८॥

अस्य तिलक

इन सबको चंद्र बीच बिहार करिबो आचरजु है, तातें अनुक्त-बिषया कहिये॥ ८ अ॥

पुनः, यथा–(सवैया)

दास मनोहर आनन बाल को दीपति जाकी दिपै सब दीपै।
श्रौन सुहाए बिराजि रहे मुकताहल सौं मिलि ताहि समीपै।
सारी मिहीन सौं लीन बिलोकि बखानतु हैं कबि के अवनीपै।
सोदर जानि ससीहि मिलो सुत संग लिये मनौं सिंधु मैं सीपै॥ ९॥

अस्य तिलक

सीप को ससि सौं मिलिबो आचरजु है तातें अनुक्तबिषया कहिये, सोदर जानिबो हेतुसमर्थन है। ९ अ॥

हेतूत्प्रेक्षा-लक्षणं–(दोहा)

हेतु फलनि के हेतु द्वै, सिद्ध असिद्ध बखान।
होनी सिद्ध, असिद्ध कौं अनहोनी पहिचान॥ १०॥

सिद्धविषया हेतूत्प्रेक्षा-वर्णनं–(सवैया)

जौ कहौ काहू के रूप सौं रीझे तौ और को रूप रिझावनवारी।
जौ कहौ काहू के प्रेम पगे हैं तौ और को प्रेम पगावनवारी।
दासजू दूसरी बात न और इती बड़ी बेर बितावनवारी।
जानति हौं गई भूलि गुपालै गली इहि वोर की आवनवारी॥ ११॥

[८ अ] इन–खंजन, साँप, सुग्गा इन (वेंक०)। को–को संग (भारत)। चंद्र–चंद्रमा (भारत); चंद्रमा के (वेंक०)। कहिये–है (भारत); है ताते अनुक्तिविषया अलंकार है (वेंक०)।

[९] सौं मिलि–संजुत (सर०)। के–को (भारत); जे (बेल०)।

[११] वारी–वारो (वेंक०, बेल०)। दूसरी०–दूसरो मेत्र (बेल०)। इती०–इतो अवसेर लगावनवारो (बेल०)। गई–गयो (वही)। गुपालै०–गुपालहिँ पंथ इतै कर (वही)।

अस्य तिलक

गली को भूलिबो सिद्ध विषया है, अचरजु नहीँ है । ११ अ ॥

असिद्धविषया हेतूत्प्रेक्षा-वर्णनं–(दोहा)

पूस दिनन मैँ ह्वै रहै, अगिनि-कोन मैँ भानु ।
मैँ जानौँ जाड़्वै बली, सोऊ डरै निदानु ॥ १२ ॥

अस्य तिलक

सूरज को डरिबो असिद्ध हेतु है । १२ अ ॥

(दोहा)

बिरहिनि के असुआन तैँ, भरन लग्यो संसार ।
मैँ जानौँ मरजाद तजि, उमड़्यो सागर खार ॥ १३ ॥

अस्य तिलक

सागर को उमड़िबो असिद्ध हेतु है । १३ अ ॥

सिद्धविषया फलोत्प्रेक्षा-वर्णनं–(दोहा)

बाल अधिक छबि लागि निज नैननि अंजन देति ।
मैँ जानौँ मो हनन कोँ, बाननि बिष भरि लेति ॥१४॥

अस्य तिलक

बाननि मैँ बिष भरिबे मैँ मारिबे को फल सिद्ध है । १४ अ ॥

बिरहिनि असुअन बिधु रहै, दरसावत नित सोधि ।
दास बढ़ावन कोँ मनोँ, पूनो दिननि पयोधि ॥१५॥

अस्य तिलक

पून्यौ-दिननि मैँ पयोधि को बढ़िबो सिद्ध फल है । १५ अ ॥

---

[१२] रहै–रह्यो (वेंक०); रहे (बेल०) । मैँ०–जानति हौँ जाड़ो (भारत, बेल०); जानत हौँ जाड़ो (वेंक०) । सोऊ–तासौँ (भारत, बेल०) ।

[१२ अ] असिद्ध–आश्चर्य है यातैँ असिद्धिविषया (वेंक०) । हेतु-रूप (भारत) ।

[१३ अ] हेतु–हेतोक्त उत्प्रेक्षा (वेंक०) ।

[१४ अ] को०–की फलसिद्धि (भारत) ।

[१५] दरसावत–बरसावत (बेल०) ।

[१५ अ] दिननि–दिन (भारत); बढ़िबो–बाढ़िबो (भारत, वेंक०) । सिद्ध–सिद्धि (वेंक०) ।

असिद्धविषया फलोत्प्रेक्षा-वर्णनं—(दोहा)

खंजरीट नहिँ लखि परत कछु दिन साची बात।
'बाल-दृगनि सम होन कौँ, मनौँ करन तप जात ॥ १६ ॥

अस्य तिलक

खंजन को तप कौँ जैबो असिद्ध बिषय है। १६ अ ॥

लुप्तोत्प्रेक्षा-लक्षणं—(दोहा)

लुप्तोत्प्रेक्षा तिहि कहैँ, बाचक बिन जो होइ।
याकी बिधि मिलि जाति है, काव्यलिंग मैँ कोइ ॥१७॥

यथा

बिनहु सुमनगन बाग मैँ भरे देखियत भौँर।
दास आजु मनभावती, सैल कियो येहि ओर ॥१८॥

बालम कलिका-पत्र अरु, खौरि सजे सब गात।
लाल चाहिबे जोगु यह, चित्रित चंपक-पात ॥१९॥

अस्य तिलक

मनौँ सब्द लुप्त है, सोई बाचक है। १९ अ ॥

उत्प्रेक्षा की माला—(कबित्त)

चौखँडे तेँ उतरि बड़े ही भोर बाल आई,
देवसरि आई मानो देबी कोऊ ब्योम तेँ।
सोभा सोँ सफरि खरी तट सोहै भीगे पट,
बलित बरफ सोँ कनकबेलि मो मतेँ।
धोए तेँ दिठौनादिक आनन अमल भयो,
कढ़ि गयो मानहु कलंक पूरे सोम तेँ।
अलकन जल-कन धावै मनौँ आवै चली,
पति पै हरष रली तारा तम तोम तेँ ॥ २० ॥

[१६ अ] कौँ०—करिबो (भारत)।

[१९] लाल—बाल (बेल०)। चाहिबे—जोहिबे (भारत)।

[१९ अ] है—कहै (वेंक०)।

[२०] सफरि—सपरि (बेल०)। भीगे—भीँगो (भारत, वेंक०, बेल०),। धावै—धायो (वेंक०); धाये (बेल०)। मनौँ०—अध आवैँ चले आवै पाँति तारन की मानौँ (बेल०)। हरष—हरषि (भारत, वेंक०)। रली—नली (सर०)।

अथ अपन्हुति-अलंकार-वर्णन–(दोहा)

और धरम जहँ थापिये, साँचो धरम दुराइ ।
औरहि दीजै जुक्तिबल, और हेतु ठहराइ ॥ २१ ॥
मेटि और सों गुन जहाँ, कहैं और मैं थापु ।
भ्रम काहू कों ह्वै गयो, ताकों मिटवत आपु ॥ २२ ॥
काहू पूछ्यो मुकरि करि, औरै कहै बनाइ ।
मिसु करि और कथन छ बिधि, होत अपन्हुति भाइ ॥ २३ ॥
धरम हेतु परजस्त भ्रम, छेक कैतबहि देखि ।
बाचक एक नकार है, सबमैं निहचै लेखि ॥ २४ ॥

धर्मापन्हुति, यथा–(सवैया)

चौहरी चौक सों देख्यो कलामुख पूरब तैं कढ़यो आवत है री ।
ठाढ़ो सँपूरन चोखो भरो बिधु सो लहि घायन घूमै घनै री ।
माँजि मिसी जम जोर दयो साइ दास बिचै बिच स्याम लगै री ।
चाइ चबाइ बियोगिनि कों दुजराज नहीं दुजराज है बैरी ॥२५॥

हेतु अपन्हुति–(दोहा)

अरी घुमरि घहरात घन, चपला चमक न जानु ।
काम कुपित कामिनिन पर, धरत सान किरवानु ॥ २६ ॥

---

[२२] मैं–की (बेल०) । थापु–आयु (भारत) । आपु–आयु (वही) ।

[२३] पूछ्यो–पून्यो (भारत) ; पूछै (वेंक०) ; बूझ्यो (बेल०) । करि–तिहि (भारत) ; कै (बेल०) । और०–औरौ कथन पट (बेल०) । 'वेंक०' मैं 'अरथ तिलक' देकर आधुनिक व्याख्या भी जुड़ी है ।

[२४] धरम–सुद्ध (बेल०) । छेक०–छेका कैतव (सर०) । कैतवहि–कइतवहि (वेंक०) । निहचै–निश्चय (भारत, वेंक०, बेल०) ।

[२५] चौहरी–चौहरे (बेल०) । सों–तैं (वही) । देख्यो–देखो (भारत, बेल०) । कलामुख–कलाधर (बेल०) । ठाढ़ो–डारयौ (सर०) । चोखो–चोखे (वही) । घायन–घाइनि (सर०) ; घायरि (भारत) । घूमै–घूम (बेल०) । जम–मुँह (वेंक०) ; द्विज (बेल०) । चाइ–चाउ (सर०) ; चाई (भारत); चाव (बेल०) । चबाइ–चपाइ (सर०) ; चवाई (भारत) ; चवाव (बेल०) । दुजराज है–द्विज-राजि है (भारत, बेल०) ।

[२६] किरवानु–किरपान (वेंक०) ।

पर्यस्तापन्हुति–(सोरठा)

कालकूट बिष नाहि, बिषा है केवल इंदिरा।
हर जागत छकि जाहि, वा सँग हरि नींद न तजै ॥ २७ ॥

भ्रांतापन्हुति–(सवैया)

आनन है अरबिंद न फूल्यो अलीगन भूल्यो कहा मड़रात हौ।
कीर तुम्हैं कहा बाइ लगी भ्रम बिंब के ओठन कौं ललचात हौ।
दासजू ब्याली न बेनी बनाव है पापी कलापी कहा इतरात हौ।
बोलती बाल न बाजति बीन कहा सिगरे मृग घेरत जात हौ ॥२८॥

छेकापन्हुति

दच्छिन जातिन्ह के बिच ह्वैकै हरैं हरैं चाँदनी मैं चलि आयो।
बास बगारिकै ढारि रसै लगि सीरो कै हीरो कियो मनभायो।
दासजू वा बिन या उदबेग सो प्रान वही यह जानि हौं पायो।
भेट्यो कहूँ मनरौन अली नहिं री सखि राति को पौन सुहायो ॥२९॥

कैतवापन्हुति

दास लख्यो टटको करिकै नट कोऊ कियो मिस कान्हर केरो।
याको अचंभो न ईठि गनो इहि दीठि को बाँधिबो आवै घनेरो।
मो चित मैं चढ़ि आपु रह्यो उतरै न उपाइ कियो बहुतेरो।
तैंहूँ कहै अरु हौंहूँ लख्यो यहि ऊपर चित्त रह्यो चढ़ि मेरो ॥३०॥

अपन्हुतिन की संसृष्टि–(कबित्त)

एक रद है न सुभ्र साखा बढ़ि आई,
लंबोदर मैं बिबेक-तरु जो है सुभ्र बेस को।
सुंडादंड कैतव हथ्यार है उदंड यह,
राखत न लेस अघ बिघन असेष को।

---

[२८] फूल्यो–फूले (भारत, बेल०)। भूल्यो–भूले (वही)। हौ–है (सर०)। कहा–कहो (सर०)। बाइ–बाई (भारत); बाय (बेल०)। मृग–मिलि (सर०, भारत)।

[२९] रसै–कैसे (सर०)। कै०–कियो हियरो (बेल०)।

[३०] उपाइ–अपाए (सर०)। तैंहूँ–तू हू (भारत)।

मद कहै भूलि ना झरत सुधाधार यह,
ध्यान ही तेँ ही को हृद हरन कलेस को।
दास यह बिजन बिचारो तिहूँ तापनि कोँ,
दूरि को करनवारो करन गनेस को ।। ३१ ।।

स्मरण, भ्रम, संदेह लक्षण–(दोहा)

सुमिरन भ्रम संदेह यह, लच्छन प्रगटै नाम।
उत्प्रेक्षादिक है नहीँ, तदपि मिलै अभिराम ।। ३२ ।।

स्मरण, यथा

कछु लखि कछु सुनि सुधि करो, सो सुमिरन सुखकंद।
सुधि आवत ब्रजचंद की, निरखि सँपूरन चंद ।।३३।।

यथा–(सवैया)

लखे सुखदानि पखानि तेँ जानि मयूरनि देति भगाइ भगाइ।
मनै कै दियो पियरे पहिराउ कोँ गाँउ मैँ प्यादे लगाइ लगाइ।
भुलावती याके हिये तेँ हरीहि कथानि मैँ दास पगाइ पगाइ।
कहा कहिये पिय बोलि पपीहा व्यथा जिय देत जगाइ जगाइ ।।३४।।

भ्रांत्यलंकार, यथा–(दोहा)

ओढ़े जाली जरद की, कंचनबरनी बाल।
चतुर चिरी-चित फँदि गयो, भ्रम्यो भूलि रँगजाल ।।३५।।

अस्य तिलक

यह रूपकसंकलित है। ३५ अ ।।

---

[३१] सुभ्र–फल (बेल०)। यह–वह (भारत, बेल०)। सुधाधार–सुधादास (सर०)।

[३२] यह–ये (भारत, वेंक०); को (बेल०)। है–मैं (भारत, वेंक०, बेल०)।

[३३] करो–करिय (भारत, वेंक०); किये (बेल०)।

[३४] सुखदानि–सुधिदानि (भारत)। पखानि–पयान (वेंक०)। भगाइ०–भगाइ भगाई (वेंक०)। याके–वाके (बेल०)। जिय–तन (वही)।

[३५] की–लखि (भारत, वेंक०)। रँगजाल–गो जाल (भारत)।

(दोहा)

बिल बिचारि प्रबिसन लग्यो, ब्यालसुंड मैँ ब्याल।
तौंहू कारी ऊख भ्रम, लियो उठाइ उताल ॥३६॥

अस्य तिलक

यह अन्योन्यसंकलित है। ३६ अ ॥

यथा–(सवैया)

पंननि की किरनारि खरी री हरीरी लतानि कोँ तूलि रही है।
नीलक मानिक आभा अनूपम सोसनि लालनि हूलि रही है।
हीरनि मोतिन की दुति दासजू बेला चमेली सी फूलि रही है।
देखि जराउ को आँगन राउ को भौँरन की मति भूलि रही है ॥३७॥

अस्य तिलक

इहाँ उदात्त अलंकार को संकर है, फुलवारी को रूपक व्यंगि है। ३७ अ ॥

यथा–(कबित्त)

देखत ही जाकोँ बैरीबृंद-गजराजनि मैँ,
धीर न धरत जस जाहिर जहान है।
गजमुकुतानि को खिलौना करि डारतु है,
उमँगि उछाह सोँ करत जब दान है।
बाहन भवानी को पराक्रम बसत और
अंगनि मैँ सूरता को प्रगट प्रमान है।
हिंदूपति साहिब के गुन मैँ बखाने,
मृगराज जिय जानै की हमारो गुनगान है ॥३८॥

---

[३६] बिल–बिन (वेंक०) । ब्यालसुंड–करीसुंड (भारत) ।

[३७] किरनारि०–किरनाली० (भारत, वेंक०); किरनै लहरै (बेल०) । नीलक–नीलम (भारत, बेल०) ।

[३७ अ] को रूपक–रूपक (वेंक०) ।

[३८] जाकोँ–जाके (भारत, वेंक०, बेल०) । मैँ–के (भारत, वेंक०); की (बेल०) । धरत–रहत (भारत, वेंक०, बेल०) । जब–जबै (वेंक०, बेल०) । और–औरै (भारत, वेंक०); उरु (बेल०) । प्रमान–प्रभानु (सर०); गुमान (भारत) । की–कै (भारत, बेल०) ।

अस्य तिलक

इहाँ सब्दसक्ति तेँ भ्रांति अलंकार है. प्रतीपालंकार ब्यंगि है । ३८ अ ॥

अथ संदेहालंकार-वर्णनं— (सवैया)

लखे उहि टोल मैँ नौलबधू इक *दास* भए द्दग मेरे अडोल ।
कहौँ कटि खीन की डोलनो डौल की पीन नितंब उरोज की तोल ।
सराहौँ अलौकिक बोल अमोल की आनन-कौल मैँ रंग-तमोल ।
कपोल सराहौँ कि नील निचोल किधौँ बिय लोचन लोल अमोल ॥३९॥

यथा—(दोहा)

तम-दुख-हारिनि रबि-किरन, सीतलकारिनि चंद ।
बिरह-कतल-काती किधौँ, पाती आनँदकंद ॥४०॥

यथा—(कवित्त)

चारु मुखचंद को चढ़ायो बिधि किंसुक की,
सुक नयो बिंबाधर-लालच-उमंग है ।
नेह-उपजावन अतूल तिलफूल कैधौँ,
पानिप-सरोवरी की उरमि उतंग है ।
दास मनमथ-साहि कंचन-सुराही-मुख,
बंसजुत पालकी कि पाल सुभ रंग है ।
एक ही मैँ तीनौ पुर ईस को है अंस कीधौँ,
नाक नवला की सुरधाम सुरसंग है ॥४१॥

इति श्रीसकलकलाधरकलाधरवंशावतंसश्रीमन्महाराजकुमार-
श्रीबाबूहिंदूपतिविरचिते काव्यनिर्णये उत्प्रेक्षादिअलंकारवर्णनं
नाम नवमोल्लासः ॥ ९ ॥

[३८ अ] भ्रांत्यलंकार—भ्रांतालंकार (सर०, वेंक०)।

[३९] इक—मृदु (बेल०) । दास—सास (भारत); हास (बेल०) । भए०—भयो द्दग मेरो (सर०); मैँ मेरो भयो मन डोल (बेल०) । की—को (भारत, वेंक०, बेल०) । की—कै (भारत) । की—कै (वही) । कौल—कोष (बेल०) । बिय—पिय (सर०); बिबि (भारत, बेल०) । अमोल—कपोल (भारत, बेल०); कलोल (वेंक०) ।

[४०] दुख—देख (सर०) । रबि०—तमकि द्दग (वही); रबि कि द्दग (भारत) ।

[४१] किंसुक की—किंसुक कै (भारत, बेल०); किंसुकन (वेंक०) । सुक०—

१०

अथ व्यतिरेक-रूपकालंकार-वर्णनं–(दोहा)

ब्यतिरेकहु रूपकहु के भेद अनेक प्रकार।
दास इन्हैं उल्लेखजुत, गनौ तीनि निरधार ॥ १ ॥

व्यतिरेकालंकार-लक्षणं

पोषन करि उपमेय को, दोषन दै उपमान।
नहिं समान कहिये तहाँ, है व्यतिरेक सुजान ॥ २ ॥
कहुँ पोषन कहुँ दोषनै, कहूँ कहूँ नहिं दोउ।
चारि भाँति ब्यतिरेक है, यह जानत सब कोउ ॥ ३ ॥

अथ पोषन दोषन दुहुँन को कथन

लाल लाल उनमानि कै, उपमा दीजै और।
मृदुल अधर सम होइ क्यों, बिद्रुम होइ कठोर ॥ ४ ॥

यथा–(सवैया)

सखि वामैं जगै छनजोति-छटा इत पीतपटा दिनरैनि मड़ो।
वह नीर कहूँ बरसै सरसै यह तौ रसजाल सदा ही अड़ो।
वह सेत ह्वै जातो अपानिप ह्वै इहि रंग अलौकिक रूप गड़ो।
कहि *दास* बराबरि कौन करै घन सौं घनस्याम सौं बीच बड़ो ॥ ५ ॥

पोषन ही को कथन–(दोहा)

प्रगट तीनिहूँ लोक मैं, अचल प्रभा करि थाप
जीत्यो *दास* दिवाकरहि, श्रीरघुबीर-प्रताप ॥ ६ ॥

किंसुक यौं (वेंक०) । सरोवरी–सरोवर (भारत, वेंक०, बेल०) । सांहि–साही (वेंक०, बेल०) । बस०–बासजुत (बेंक०); बाँसजुत (बेल०)। पालकी–पान की (भारत) । कि–कै (भारत); को (बेल०) । पाल–खान (भारत) ।

[२] दोषन–दूषन (बेल०) । दै–करि (भारत, वेंक०) ।

[३] दोषनै–दूषनै (भारत, बेल०) । कहूँ०–कहैं कहूँ (भारत, बेल०) ।

[४] बिद्रुम०–बिद्रुम निपट (भारत, वेंक०, बेल०) ।

[५] इहि–एहि (बेल०) । कहि–कह (भारत, बेल०) ।

[६] प्रगट–प्रबल (वेंक०) ।

सरस सुबास प्रसन्न अति, निसि-बासर सानंद।
ऐसे मुख कौं कमल सो, क्यौं भाषत मतिमंद ॥ ७ ॥

दोषन ही को कथन

घटै बढ़ै सकलंक लखि, सब जग कहै ससंक।
बाल-बदन सम है नहीं, रंक मयंक ए कंक ॥ ८ ॥

यथा—(सवैया)

बारिद लेखत हौं पर देखत हौं तजिकै जल देत न आन है।
पारस कौं उनमानत हौं पहिचानत हौं तौ निदान पषान है।
है पसुजाति की कामदुघा कलपद्रुम बापुरो काठ-प्रमान है।
और मैं काहि कहौं प्रभु दूसरो दान-कथान मैं तोहि समान है ॥ ९ ॥

शब्दशक्ति तें, यथा—(कबित्त)

आवै जित पानिपसमूह सरसात नित,
मानै जलजात सो तौ न्याइ ही कुमति होइ।
दास या दरप कौं दरप कंदरप को है,
दरपन सम ठानै कैसे बात सति होइ।
राधिका को आनन बरोबरी को बल करै,
और अबलानन मैं कबि कूर अति होइ।
पैये निसि-बासर कलंकित न अंक सम
बरनै मयंक कबिताई की अपति होइ ॥ १० ॥

---

[७] ऐसे—ऐसो (सार०, वेंक०,)। सो—सौं (वेंक०, बेल०)। क्यौं—को (भारत)।

[८] सब जग—जग सब (भारत, वेंक०, बेल०)।

[९] लेखत—देखत (बेल०)। पर०—नित ही जग मैं (वही)। कामदुघा—कामदुधा (सर०, भारत); कामदुहा (बेल०)। कथान०—कथा मैं न (भारत)।

[१०] आवै०—आवत है (बेल०)। मानै—मानो (भारत, वेंक०, बेल०)। होइ—है (भारत)। या०—या दरस० (भारत); कंदरप के दरप को है आदरस (बेल०)। को—सो (भारत)। दरपन०—दर्पन समान कहे (बेल०)। ठानै—ठानि (सर०)। और०—राधिका के आनन समान और नारिन के आनन कहत कौन (बेल०)।

यथा—(दोहा)

सब सुख सुषमा सों भर्यो, तेरो बदन सुबेस।
ता सम ससि क्यों बरनिये, जाको नाम कलेस ॥११॥

अथ व्यंग्यार्थ व्यतिरेक

कहा कंज-केसरि तिन्हैं, केतकि केतकि-बास।
दास बसे जे एक पल, वा पदुमिनि के पास ॥१२॥

अथ रूपकालंकार-लक्षणं

उपमा अरु उपमेय तें, बाचक धर्म मिटाइ।
एकै कै आरोपिये, सो रूपक कबिराइ ॥१३॥
कहुँ कहिये यह दूसरो, कहुँ राखिये न भेद।
अधिक हीन सम त्रिबिधि पुनि, ते तद्रूप अभेद ॥१४॥

तद्रूप रूपक अधिकोक्ति, यथा

सत को कामद असत को, भय-प्रद सब दिसि दौर।
दास जाचिबे जोग्य यह, कलपबृक्ष है और ॥१५॥

तद्रूप रूपक हीनोक्ति, यथा

लखि सुनि जाइ न ज्वाब दै, सहे परै कतु नीचु।
बास खलन के बीच को, बिना मुए की मीचु ॥१६॥

तद्रूप रूपक समोक्ति, यथा

दृग कैरव की दुखहरनि, सीतकरनि मनु-देस।
यह बनिता भुअलोक की, चंदकला सुभबेस ॥१७॥

को–के (भारत, वेंक०, बेल०)। बरोबरी–बराबरी (भारत, वेंक०)। क्रूर–क्रुर (वेंक०)। कलंकित०–कलंकी तन० (भारत); कलंक अंक जाके तन (बेल०)।

[११] भर्यो–मढ्यो (बेल०)।

[१२] केतकि०–केतक केतकि (सर०); कितिक केतकी (भारत, वेंक०, बेल०)।

[१३] कै–करि (भारत, वेंक०, बेल०)। कबिराइ–कहि जाइ (भारत)।

[१५] जोग्य–जोगु (भारत, बेल०)।

[१६] की–को (भारत)।

[१७] की–के (सर०, बेल०); को (भारत)।

कमलप्रभा नहिँ हनत है, दृगनि न देत अनंद ।
कै न सुधाधर तियबदन, क्योँ गरबित वह चंद ॥१८॥

अस्य तिलक

यामैँ प्रतीप की व्यंगि है । १८ अ ॥

अभेद रूपक अधिकोक्ति, यथा-(सवैया)

है रति को सुखदायक मोहन योँ मकराकृत कुंडल साजै ।
चित्रित फूलन को धनुबान तन्यो गुन भौँर की भ्रांति को भ्राजै ।
सुभ्र स्वरूपनि मैँ गनौ एक बिबेक हनै तिय-सैन-समाजै ।
दासजू आजु बने बृज मैँ बृजराज सदेह अदेह बिराजै ॥१९॥

यथा-(दोहा)

बाँधन डर नृप सौँ करै, सागर कहा बिचार ।
इनको पार न सत्रु है, अरु श्री-संग निहार ॥२०॥

अस्य तिलक

इहाँ व्यंग्यार्थ मैँ राम को बिष्नु को रूपक है, बस्तु तैँ अलंकार । २० अ ॥

अभेद रूपक हीनोक्ति, यथा-(दोहा)

सबके देखत ब्योम-पथ, गयो सिंधु के पार ।
पच्छिराज बिनु पच्छ को, बीर समीरकुमार ॥२१॥

---

[१८] हनत—हरत (भारत, बेल०) । है—कै (वेंक०) । न देत०—देत आनंद (भारत, बेल०) । वह—कहु (वेंक०) ।

[१८ अ] व्यंगि—संव्यंग्य (वेंक०) ।

[१९] योँ—यो (वेंक०) । चित्रित—चिक्रित (सर०) । भ्रांति—पाँति (बेल०)। भ्राजै—भाजै (सर०) ।

[२०] बाँधन—बंधन (भारत, वेंक०, बेल०) । डर—दुर (भारत) । सौँ—को (भारत) । बिचार—बिचारि (वेंक०, बेल) । पार न—पारनु (वेंक०) । श्री०—हरि गई न नारि (वेंक०, बेल०) ।

[२० अ] राम को बिस्नु को—× (भारत, वेंक०) ।

यथा–(सवैया)

कंज के संपुट हैं पै खरे हिय मैं गड़ि जात ज्यौं कुंत की कोर हैं।
मेरु हैं पै हरि-हाथन आवत चक्रवती पै बड़ेई कठोर हैं।
भावती तेरे उरोजनि मैं गुन *दास* लख्यो सब औरई और हैं।
संभु हैं पै उपजावैं मनोज सुबृत्त हैं पै परचित्त के चोर हैं ॥२२॥

अस्य तिलक

इहाँ ब्यतिरेक रूपक को संकर है। २२ अ ॥

पुनः लक्षणं–(दोहा)

रूपक होत निरंग पुनि, परंपरित परिनाम।
अरु समस्तबिषयक कहैं, बिबिध भाँति अभिराम ॥२३॥

निरंग रूपक, यथा

हरिमुख पंकज भ्रुव धनुष, खंजन लोचन मित्त।
बिंब अधर कुंडल मकर, बसे रहत मो चित्त ॥२४॥

परंपरित रूपक, यथा

जहाँ बिषय आरोपिये, और बस्तु के हेतु।
स्लेष होइ कै भिन्न पद, परंपरित सो चेतु ॥२५॥
सब तजि *दास* उदारता, रामनाम उर आनि।
ताप तिनूका-तोम कौं, अग्निकिनूका जानि ॥२६॥

परंपरितमाला श्लेष तैं, यथा–(कबित्त)

कुबलय जीतिबे कौं बीर बरिबंड राजैं,
करन पै जाइबे कौं जाचक निहारे हैं।
सितासित अरुनारे पानिप के राखिबे कौं,
तीरथ के पति हैं अलेख लखि हारे हैं।

---

[२२] है पै–हैं ये (भारत, बेल०); पै है (वेंक०)। खरे०–खड़ो हिय मैं (वेंक०)। हरि०–हर हाथ न (भारत०); हरि हाथ मैं (बेल०)। बड़ेई–बड़ोई (सर०)। तेरे–तेरो (वही)। हैं पै–पै (वही)। के–को (वही)।

[२३] पुनि–पै (वेंक०)। कहैं–कहूँ (वेंक०)।

[२४] भ्रुव–भ्रू (भारत, बेल०)। बिंब०–बिंबाधर (सर०)।

[२५] बिषय-बस्तु (भारत०, वेंक०)।

[२६] उदारता–उदासिता (भारत०, वेंक०, बेल०)। कौं-कै (भारत)।

बेधिबे कों सर मारि डारिबे कों महा विष,
मीन कहिबे कों दास मानस बिहारे हैं।
देखत ही सुबरन हीरा हरिबे कों,
पस्यतोहर मनोहर ये लोचन तिहारे हैं ॥२७॥

यथा वा, भिन्नपद

नीति-मग मारिबे कों ठग हैं सुभग मन,
बालक बिकल करि डारिबे कों टोने हैं।
डीठि-खग फाँदिबे कों लासाभरे लागैं हिय,
पींजरे मैं राखिबे कों खंजन के छोने हैं।
दास निज प्रान-गथ अंतर तें बाहिर न
राखत हैं केहूँ कान्ह कृपिन के सोने हैं।
ग्यान तरिबर तोरिबे कों करिबर जिय,
रोचन तिहारे बिय रोचन सलोने हैं ॥२८॥

माला रूपक, यथा

जच्छिनी सुखद मो उपासना किये की श्री जु,
सारस हिये की दारु-दुख की जु आगि है।
बपुष बरत की जु बरफ बनाई,
सीत-दिन की तुराई जो गुनन्ह रही तागि है।
दास दृग-मीनन की सरित सुसीली, प्रेम
रस की रसीली कब सुधारस पागिहै।
हाइ मम गेह-तमपुंज की उज्यारी,
प्रानप्यारी उतकंठ सों कबहि कंठ लागिहै ॥२९॥

---

[२७] मारि०—मोहि मारिबे (वेंक०)।

[२८] मन—जिय (बेल०)। लागैं—लग (सर०)। केहूँ—ज्यौहू (वही)। तरिबर—तरवर (भारत, बेल०); तरुवर (वेंक०)। जिय—मन (बेल०)। रोचन—लोचन (वेंक०)। बिय—तिय (भारत)।

[२९] श्री जु—सिरी (बेल०)। जु—सु (वही)। बनाई—बसाई (भारत, वेंक०, बेल०)। तुराई—रजाई (बेल०)। सुसीली—सुसीले (वेंक०); सुसेल्ही (बेल०)। रस की—रसिक (भारत, बेल०)।

यथा वा

अब तौ बिहारी के वे बानक गए री तेरी
तनदुति-केसरि कौं नैन कसमीर भो।
श्रौन तुअ बानी-स्वातिबुंदन कौं चातिक भो,
स्वासन को भरिबो द्रुपदजा को चीर भो।
हिय कौं हरष मरुधरनि कौं नीर भो री,
जियरो मदन-तीरगन कौं तुनीर भो।
एरी बेगि करिकै मिलाप थिर थापु नत,
आप अब चाहतु अतन कौं सरीर भो ॥३०॥

परिणाम रूपक–(दोहा)

करत जु है उपमान ह्वै, उपमेयहि को काम।
नहिँ दूषन उनमानिये, है भूषन परिनाम ॥ ३१ ॥
करकंजनि खंजनदृगनि, ससिमुखि अंजन देति।
बीजहास तैँ दासजू, मनबिहंग गहि लेति ॥ ३२ ॥

समस्तविषयक रूपक-लक्षणं

सकल वस्तु तैँ होत जहँ, आरोपित उपमान।
तहि समस्तविषयक कहैँ रूपक बुद्धिनिधान ॥ ३३ ॥
कहुँ उपमाबाचक कहूँ उत्प्रेक्षादिक होइ।
कहूँ लिये परिनाम कहुँ, रूपक रूपक सोइ ॥ ३४ ॥

उपमावाचक, यथा–(कबित्त)

नेम प्रेम साहि मति बिमति सचिव चाहि,
दुकुल की सीवँ हाव भाव पील सरि जू।
पति औ' सुपति नैनगति ज्यौँ तरल तुरी,
सुभासुभ मनोरथ रथ रहै लरि जू।

---

[३०] मदन०–मनोभव सरनि (भारत, वेंक०)। अतन कौं–अतन के (सर०)।

[३२] बीज–बिज्जु (भारत, वेल०)।

[३३] जहँ–है (भारत)।

[३५] सीवँ–सील (भारत, वेंक०)। ज्यौँ–और (भारत, वेंक०, बेल०)। ज्यौँ–त्यौँ (भारत, बेल०)।

आठौ गाँठि धरम की आठौ भाव सात्विकी ज्यौं,
प्यादे दास दुहुँधा प्रबल भिरे अरि जू।
लाज औ' मनोज दोऊ चतुर खेलार उर,
वाके सतरंज कैसी बाजी राखी भरि जू ॥ ३५ ॥

उत्प्रेक्षावाचक, यथा

धूसरित धूरि मानौं लपटी बिभूति भूरि,
मोतीमाल मानहुँ लगाए गंग गल सौं।
बिमल बघनहा बिराजै उर दास मानौं,
बालबिधु राख्यो जोरि द्वै कै भालथल सौं।
नीलगुन गूँदे मनिवारे अभरन कारे,
डौंरू कर धारे जोरि द्वैक उतपल सौं।
ताके कमला के पति गेह जसुदा के फिरैं,
छाके गिरिजा के ईस मानौं हलाहल सौं ॥ ३६ ॥

अपन्हुतिवाचक, यथा

धावै धुरवा री न दवारा असवारी की है,
कारी कारी घटा न मतंग मदधारी है।
न्यारी न्यारी दिसि चारी चपला चमतकारी,
बरनैं अनारी ये कटारी तरवारी है।
केका किलकारी दास बुंद न सरारी, पौन
दुंदुभि-धुकारी, तोप गरज डरारी है।
बिना गिरिधारी भर भारी मिस मैन,
बृजनारी-प्रानहारी देवदलनि उतारी है ॥ ३७ ॥

---

[३६] गल–जल (भारत, वेंक० बेल०)। बिमल०–बंक बघनहिया (बेल०)। द्वै–दै (भारत, बेल०)। गुन–गन (सर०)। गूँदे–गूँथे (बेल०)। डौंरू०–डौरकरु कर धारे जोरि द्वैक उतपमनि नामल सो (सर०)। कर–डर (भारत, वेंक०)।

[३७] केका–केकी (भारत, बेल०)।

रूपक रूपक, यथा

गिलि गए स्वेदनि जहाँई तहाँ छिलि गए,
मिलि गए चंदन भिरे हैं इहि भाय सौं।
गाड़े ह्वै रहे ही सहे सन्मुख तुकानि लीक,
लोहित लिलार लागी छीट अरिघाय सौं।
श्रीमुख-प्रकास तन *दास* रीति साधुन की,
अजहूँ लौं लोचन तमीले रिसिताय सौं।
सोहैं सरबंग सुख पुलक सोहाए हरि,
आए जीति समर समर महाराय सौं॥ ३८॥

यथा वा

केलिथल कुंड साजि समिध सुमनसेज,
बिरह की ज्वाल बाल बरै प्रति रोमु है।
उपचार आहुति कै बैठी सखी आसपास,
स्रुवा पल नैन नेह-अँसुवा अधोमु है।
बलिपसु मोद भयो बिलपनि मंत्र ठयो,
अवधि की आस गनि लयो दिन नोमु है।
दास चलि बेगि किन कीजिये सफलकाम,
रावरे सदन स्याम मदन को होमु है॥ ३९॥

परिणाम समस्तविषयक–(सवैया)

अनी नेह-नरेस की माधौ बने बनी राधौ मनोज की फौज खरी।
भटभेरो भयो जमुनातट *दास*जू सान दुहूँ की जु सान धरी।
उरजात चँडोलनि गोल कपोलनि जौ लौं मिलाप सलाह करी।
तौ लौं वाके हरौल भटाछन सौं री कटाछन की तरवारि परी॥४०॥

---

[३८] गाड़े–गाढ़े (भारत, बेल०)। ही–हैं (वही)। सरबंग–सब अंग (वही)।

[३९] सखी०–सखिआन (भारत)। अधो०–अधोम है (बेल०)। भयो–भये (वही)।

[४०] राधौ–राधे (बेल०)। सान–साव (वही)। दुहूँ०–दुहूँन की सान (वही)। जु–ज्यौ (सर०)। तौ–तब (बेल०)। वाके–बीर (भारत); X (वेंक०); ही (बेल०)।

अथ उल्लेखालंकार-वर्णनं–(दोहा)

एकहि मैं बहु बोध कै बहु गुन सों उल्लेख।
परंपरितमालानि सों, लीन्हे भिन्न बिसेप ॥ ४१ ॥

एक में बहुते को बोध, यथा–(सवैया)

प्रीतम प्रीतिमई उनमानै परोसिनि जानै सुनीतिनि सों ठई।
लाजसनी है बड़ीन भनी बरनारिन मैं सिरताज गनी गई।
राधिका कों बृज की जुवती कहैं याहि सोहागसमूह दई दई।
सौती हलाहल सोती कहैं औ' सखी कहैं सुंदरि सील-सुधामई ॥ ४२ ॥

एकै में बहुत गुन, यथा–(दोहा)

साधुन कों सुखदानि है, दुर्जनगन-दुखदानि।
बैरिन बिक्रम हानिप्रद, राम तिहारो पानि ॥ ४३ ॥

इति श्रीसकलकलाधरकलाधरवंशावतंसश्रीमन्महाराजकुमार-
श्रीबाबूहिंदूपतिविरचिते काव्यनिर्णये
व्यतिरेकरूपकालंकारवर्णनं नाम
दशमोल्लासः ॥ १० ॥

११

अथ अतिशयोक्ति-अलंकार-वर्णनं–(दोहा)

अतिसयोक्ति बहु भाँति की, उदात्तो तहँ ल्याइ।
अधिक अल्प सबिसेषनो, पंच भेद ठहराइ ॥ १ ॥

---

[४१] एकहि–एकै (भारत, वेंक०, वेल०)। लीन्हे–लीन्हो (वही)।
[४२] सुनीतिनि–सुनीतिहि (सर०)।
[४३] गन–को (बेल०)। बैरिन–बिप्रन (वही)। हानि–दान (वही)
[१] उदात्तो-अरु उदात्त (बेल०)। अधिक०–अधिकाल्पा (सर०)।

अथ अतिशयोक्ति-लक्षणं

जहँ अत्यंत सराहिये, अतिसयोक्ति सु कहंत ।
भेदक संबंधो चपल, अक्रमाति अत्यंत ॥ २ ॥

भेदकातिशयोक्ति–(दोहा)

भेदकातिसयउक्ति जहँ, सु बहम ही सब बात ।
जग तेँ यह कछु औरई, सकल ठौर कहि जात ॥ ३ ॥

यथा–(कबित्त)

भावी भूत बर्तमान मानवी न ह्वैहै ऐसी,
देवी दानवीन हूँ सोँ न्यारो एक डौरई ।
या बिधि की बनिता जौ बिधना बनायो चाहै,
दास तौ समुझिये प्रकासै निज बौरई ।
चित्रित करैगो क्योँ चितेरो यहि चाहि कालिह,
परौँ दिन बीते दुति औरै और दौरई ।
आजु भोर औरई पहर होत औरई है,
दुपहर औरई रजनि होत औरई ॥ ४ ॥

(दोहा)

अनन्वयहु की ब्यंगि यह, भेदकातिसय उक्ति ।
उतहि कियो थापित निरखि, परबीनन की जुक्ति ॥ ५ ॥

---

[२] सराहिये–सराहिबो (सर०) । अक्रमाति–अक्रम अति (वही) ।
[३] सु बहम ही–सुबहमही (सर०) ; सुबह मही (भारत) ; सुन हमही (वेंक०) ; मग मैं है (बेल०) ।
[४] ह्वैहै-होइ (बेल०) । न्यारो०–न्यार यह (भारत) ; न्यारो यह (वेंक०) । बनायो०–बनायी चहै (भारत) ; बनायो चहै (बेल०)। चित्रित०–कैसे लिखै चित्र को चितेरो चकि जात लखि दिन द्वैक (बेल०) । करैगो०–करै भौँ क्योँ (भारत) ; करै क्यौँ है (वेंक०)। यहि०–यह चालि कालि (भारत, वेंक०) । होत–आए (सर०) ।
[५] 'सर०' मैं छूट गया है ।

संबंधातिशयोक्ति-लक्षणं

संबंधातिसयोक्ति कौं, द्वै बिधि बरनत लोग ।
कहुँ जोग तैं अजोग है, कहुँ अजोग तैं जोग ॥ ६ ॥

योग्य तें अयोग्यकल्पना, यथा

छामोदरी उरोज तुअ, होत जु रोज उतंग ।
अरी इन्हैं या अंग मैं, नहि समान को ढंग ॥ ७ ॥

यथा—(सवैया)

घाँघरो भीन सौं सारी मिहीन सौं पीन नितंबनि भार उठै खचि ।
दास सुबास सिँगार सिँगारत बोझनि ऊपर बोझ उठै मचि ।
स्वेद चलै मुखचंद तैं च्वै डग द्वैक धरै महि फूलन सौं सचि ।
जात है पंकज-पात बयारि सौं वा सुकुमारि की लंक लला लचि ॥ ८ ॥

अस्य तिलक

कुच अंग मैं अमाइबे जोग है कह्यो न अमाइहै, नायिका चलिबे जोग्य है कह्यो न चलि सकैगी । ८ अ ॥

अयोग्य तें योग्यकल्पना—(दोहा)

कोकनि अति सब लोक तैं, सुखप्रद रामप्रताप ।
बन्यो रहत जिन्ह दंपतिन्ह, आठो पहर मिलाप ॥ ९ ॥

यथा—(कबित्त)

कंचनकलित नग-लालनि बलित सौध,
द्वारिका ललित जाकी दीपति अपार है ।
ताके पर बलभी बिचित्र अति ऊँची जासौं
निपटै नजीक सुरपति को अगार है ।

---

[६] कहुँ अजोग तैं—कहूँ अजोगै (बेल०) ।

[७] तुअ—तू (वेंक०) । जु०—उरोज (वही) । खचि—ह्चि (सर०) । जात—जातु (सर०, भारत) ; जाति (वेंक०) । की—को (भारत, वेंक०, बेल०) ।

[८ अ] अमाइबे—अभाव (भारत) ; अमाव (वेंक०) । अमाइहै—अमात है (भारत, वेंक०) ।

दास जब जब जाइ सजनी सयानी संग,
रुकमिनी रानी तहाँ करत बिहार है।
तंब तब सची सुर-सुंदरी-निकर लै,
कलपतरु-फूल लै मिलत उपहार है ॥१०॥

चपलातिसयोक्ति—(दोहा)

निपट उताली सौं जहाँ, बरनत हैं कछु काज।
सो चपलातिसयोक्ति है, सुनौ सुकबि-सिरताज ॥११॥

यथा—(कबित्त)

काहू सोध दयो कंसराइ के मिलाइबे को,
लेन आयो कान्ह कोऊ मथुरा अलंग तैं।
त्यौं ही कह्यो आली सो तौ गयो हरि ब्याब दयो,
मिलैं हम कहा ऐसे मूढ़ बिन ढंग तैं।
दास कहै ता समै सोहागिनि को कर भयो
बलया-बिगत दुहूँ बातनि प्रसंग तैं।
आधिक ढरकि गईं बिरह की छामता तैं,
आधिक तरकि गईं आनँद-उमंग तैं ॥१२॥

पुनः

तेरे जोग काम यह राम के सनेही,
जामवंत कह्यो औधिहू को द्यौस दस द्वै रह्यो।
एती बात अधिक सुनत हनुमंत गिरि
सुंदर तैं कूदिकै सुबेल पर ह्वै रह्यो।
दास अति गति की चपलता कहाँ लौं कहौं,
भालु-कपि-कटक अचंभा जकि ज्वै रह्यो।
एक छिन वारपार लगि वारापार के
गगन-मध्य कंचन-धनुष ऐसो वै रह्यो ॥१३॥

---

[१०] ताके०—जाकी बर (भारत, बेल०) निकर०—न संग मैं (बेल०)। फूल—फलु (सर०)। मिलत—लै देती (बेल०)।

[११] उताली—सीघ्रता (बेल०)।

[१२] सोध०—कह्यो आय (बेल०)। तौ०—न गयो (भारत); गयो न (वेंक०)। हरि०—वह अब दैव (बेल०)। आधिक—अधिक (सर०, वेंक०, बेल०)।

[१३] सुनत—सुने ते (भारत)। लगि—लागी (भारत, बेल०)।

अस्य तिलक

यामैं उपमा को अंगांगी संकर है। १३ अ ॥

पुनः–(सवैया)

चकि चौंकती चित्रहु के कपि सों जकि क्रूर-कथानि सुने जु डरै।
सुनि भूत पिसाचनि की चरचानि बिमोहित ह्वै अकुलाइ परै।
चलिबो सुनि पाउ दुखै, तन घाम के नामहि सों स्रम भूरि भरै।
तिहि सीय चह्यो बन को चलिबो हिय रे धृग तू न अजौं बिहरै ॥१४॥

अक्रमातिसयोक्ति–(दोहा)

अक्रमातिसयउक्ति जहँ, कारज कारन साथ।
भू परसत हैं साथ ही, तो सर अरु अरिमाथ ॥ १५ ॥

यथा–(कबित्त)

राम असि तेरी असु बैरिन को कीन्हो हाथ,
तातेँ दोऊ काज एक साथ ही छजतु हैं।
ज्यौं ही यह कोस कौं तजति है दयाल त्यौं ही,
वेऊ सब निज निज कोस कौं तजतु हैं।
दास यह धारा को सजति जब जब
तब तब वै सकल असुधारा कौं सजतु हैं।
याकौं तूँ कँपाइकै भजावत है ज्यौं ज्यौं त्यौं त्यौं,
वेऊ कँपि कंपि ठौर ठौरनि भजतु हैं ॥१६॥

अत्युक्ति, यथा–(दोहा)

जहाँ दीजिये जोग्य कौं, अधिक जोग्य ठहराइ।
अलंकार अत्युक्ति तहँ, बरनत हैं कबिराइ ॥१७॥

यथा–(सवैया)

एती अनाकनी कीबो कहा रघु के कुल मैं को कहाइकै नायक।
आपनो मेरो धौं नाम बिचारौ हौं दीन अधीन तूँ दीन कौं दायक।

[१३ अ] 'सर०' मैं छूट गया है

[१४] तिहि०–तेहि सौं पि (बेल०)। हिय०–हियरौ धिग (वही)।

[१६] हाथ–हाल (भारत, बेल०)। छजतु-सजतु (भारत, वेंक०, बेल०)।
है–हौ (बेल०)।

मैं हौं अनाथ अनाथनि मैं इक तेरोई नाम न दूजो सहायक।
मंगन तेरे को मंगन सों कलपद्रुम आजु है माँगिबे लायक ॥१८॥

यथा—(दोहा)

सुमनमई महि मैं करै, जब सुकुमारि बिहार।
तब सखियाँ संगहि फिरैं, हाथ लिये कचभार ॥१९॥

अत्यंतातिशयोक्ति

जहाँ काज पहिले सधै, कारन पीछे होइ।
अत्यंतातिसयोक्ति तिहि, बरनत हैं सब कोइ ॥२०॥

यथा—(सवैया)

जातें सबै हुते माह की राति निदाह के द्यौस को साजु सजावते।
फेरि बिदेस को नाम न लेते जौ स्याम दसा यह देखन पावते।
दास कहा कहिये सुनिहौं सुनि प्रीतम आवते प्रीतम आवते।
जात भई पहिले वह ताप तौ पीछे मिलाप भयो मनभावते ॥२१॥

(दोहा)

अतिसयोक्ति संभावना संकर करो निबाहु।
उपमा और अपन्हुत्यो, रूपक उत्प्रेक्षाहु ॥२२॥

संभावना-अतिशयोक्ति, यथा—(कबित्त)

सागर सरित सर जहँ लौं जलासै जग,
सब मैं जौ केहूँ किल कज्जल रलावई।
अवनि अकास भूरि कागद गजाइ लै,
कलम कुस मेरु-सिर बैठक बनावई।

---

[१८] मैं को–बीच (बेल०)। बिचारौ०–बिचारिहौ (वेंक०)। दीन–हनी (भारत)। मैं हौं–हौं तौ (बेल०)। तेरे०–तेरो के (सर०); तेरो को (भारत); तेरे यौं (वेंक०)।

[१९] संगहि–सँगही (भारत, वेंक०, बेल०)।

[२१] भई–भयो (भारत, बेल०)। वह–तन (वही)। तौ–औ (वही)।

दास दिन रैनि कोटि कलप लौं सारदा,
सहसकर ह्वै जौ लिखिबे ही चित लावई।
होइ हद काजर कलम कागदन को,
गुपाल गुन-गन को तऊ न हद पावई ॥२३॥

उपमा-अतिसयोक्ति–(दोहा)

बुधिबल तैं उपमान पर अधिक अधिकई होइ।
तब उपमा-अत्योक्ति है, प्रौढ़उक्ति है सोइ ॥२४॥

यथा–(सवैया)

दास कहै लसै भाँदो कुहू की अँध्यारी घटा घन से कच कारे।
सूरजबिंब मैं इँगुर-बोरे बँधूक से हैं अधरा अरुनारे।
बाड़ौ की आँच तैं ताए बुझाए महाबिष के जम जी के सँवारे।
मारन-मंत्र से बीजुरी-सान लगे ये नराच से नैन तिहारे ॥२५॥

सापन्हुति अतिशयोक्ति–(दोहा)

जहँ दीजै गुन और को, औरहि मैं ठहराइ।
सापन्हुति अत्योक्ति तिहि, बरनत हैं कबिराइ ॥२६॥

यथा–(सवैया)

तेरहीं नीके लख्यो मृग नैननि तोही कों सत्य सुधाधर मानैं।
तोही सौं होति निसा हरि कों हम तोही कलानिधि काम की जानैं।
तेरे अनूपम आनन की पदवी उहि कों सब देत अयानैं।
तूँही है बाम गोबिंद को रोचन चंदहि तौ मतिमंद बखानैं ॥२७॥

---

[२३] भूरि–भरि (भारत, वेंक०); होय (बेल०)। गजाइ०–कलपतरु कलम सुमेर (बेल०)। कर–करै (सर०)। जौ–के (बेल०)। को–गो (सर०); की (भारत)।

[२४] तब०–सो उपमातिसयोक्ति (बेल०)।

[२५] लसै–लगै (भारत, वेंक०, बेल०)। ताए–ताप (भारत) ; तापे (बेल०)। जी के–आप (बेल०)। लगाए–लगे ये (भारत, बेल०)।

[२६] सापन्हुति०–अतिसयोक्ति सापन्हु (बेल०)।

[२७] तेरहीं–तेरोई (भारत, बेल०)। लख्यो–लगैं (भारत) ; लसैं (बेल०)। सत्य–नीके (भारत, वेंक०); सत्र (बेल०)। तेरे–तेरो (भारत, बेल०) है–हो (वेंक०)। रोचन–लोचन (भारत, वेंक०); रोचक (बेल०)।

अस्य तिलक

प्रजस्तापन्हुति मैं हेतु प्रगट करत है, यामें नाहीं। २७ अ ॥

रूपक-अतिशयोक्ति—(दोहा)

बिदित जानि उपमान को, कथन काव्य मैं देखि।
रूपकतिसयउक्ति सो, बर्नं एकता लेखि ॥२८॥

यथा

दास देवकुर्लभसुधा राहुसंक-निरसंक।
सकलकला कब ऊगिहै, बिगतकलंक मयंक ॥२९॥

यथा—(सवैया)

चंद मैं ओप अनूप बढ़ै लगी रागनि की उमड़ी अधिकाई।
सोति कलिंदिजा की कछु होति है कोकनि के दरम्यान लखाई।
दासजू कैसी चँबेली खिलै लगी फैली सुबासहु की रुचिराई।
खंजन कानन ओर चले अवलोकि तुम्हैं हरि साँझ सोहाई ॥३०॥

उत्प्रेक्षा-अतिशयोक्ति, यथा

दास कहाँ लौं कहौं मैं बियोगिनि के तन तापनि की अधिकाई।
सूखि गए सरिता सर सागर औनि अकास धरा अकुलाई।
काम के बस्य भए सिगरे जग यातैं भई मनो संभु-रिसाई।
जारिकै फेरि सँवारन कौं छिति के हित पावक ज्वाल बढ़ाई ॥३१॥

अथ उदात्त अलंकार—(दोहा)

संपति की अत्युक्ति कौं, सुकबि कहैं उदात।
जहँ उपलच्छन बड़ेन्ह को, ताहू की यह बात ॥३२॥

---

[२८] उपमान—उपमहि (भारत, वेंक०)।
[३०] खिलै—खिली (भारत) ; खुली (वेंक०)। फैली—फैले (भारत)
अवलोकि०—अवलोकत हौ (भारत, वेंक०) ; अवलोकत ही (बेल०)।
[३१] औनि०—स्वर्ग अकास (भारत, वेंक०) ; स्वर्ग पताल (बेल०)।
भए०—भयो सिगरो (बेल०)।
[३२] सुकबि०—सब कबि कहैं उदात (बेल०)।

[संपति की अत्युक्ति] यथा

जगत जनक बरनो कहा, जनक-देस को ठाट ।
सहल महल हीरन बने, हाट बाट करहाट ॥३३॥

बड़ेन्ह को उपलक्षण

भूषित संभु स्वयंभु सिर, जिन्ह के पग की धूरि ।
हठि करि पाँव झँवावती, तिन्ह सोँ तिय मगरूरि ॥३४॥

यथा—(कबित्त)

महाबीर पृथ्वीपति दल के चलत ढलकत
बैजयंती खलकत ज्यौं सुरेस को ।
दास कहै बलकत बल महाबीरन्ह के,
धलकत डर मैं महीप देस देस को ।
फलकत बाजिन्ह के भूरि धूरिधारा उठै,
तारा ऐसो झलकत मंडल दिनेस को ।
थलकत भूमि हलकत भूमिधर,
छलकत सातौ सिंधु दलकत फन सेस को ॥३५॥

अथ अधिकालंकार-वर्णनं—(दोहा)

अधिकारी आधेय की, जहँ अधार तेँ होइ ।
अरु अधार आधेय तेँ, अधिक अधिक ये दोइ ॥३६॥

आधार तेँ आधेय-अधिकता

सोभा नंदकुमार की, पारावार अगाध ।
दास वोछरे दृगनि मैँ, क्योँ भरिये भरि साध ॥३७॥

आधेय तेँ आधार-अधिकता, यथा

बिस्वामित्र मुनीस की, महिमा अपरंपार ।
करतलगत आमलक सम, जिन्ह कोँ सब संसार ॥३८॥

---

[३३] बरनो—बरनौँ (भारत) ।

[३४] पाँव०—पाँ धुवावती (वेंक०) ।

[३५] ज्यौ—ज्यौँ (भारत, वेंक०) ; जौ (बेल०) । बल०—महाबल बीरन्ह (भारत, बेल०) ; महाबल बीरन (वेंक०) । बाजिन्ह—पारन (बेल०)।

[३६] अधिकारी-अधिकाई (भारत, बेल०) ।

[३७] वोछरे—ओछरे (भारत, बेल०) ; बोछरे (वेंक०) ।

यथा--(सवैया)

सातौ समुद्र घिरी बसुधा यह सातौ गिरीस धरे सब ओरै।
सात ही द्वीप सबै दरम्यान मैँ होहिँगे खंड किते तेहि ठोरै।
दास चतुर्दसै लोक प्रकासित है ब्रहमंड इकीस ही जोरै।
एतेही मैँ भजि जैहै कहाँ खल श्रीरघुनाथ सौँ बैर बिथोरै ॥३९॥

अस्य तिलक

इहाँ व्यंग्यार्थ मैँ राम को अमल अधिक है जग तेँ। ३९ अ ॥

पुनः--(दोहा)

सुनियत जाके उदर मैँ, सकल-लोक-बिस्तार।
दास बसै तो उर कहूँ, सोई नंदकुमार ॥४०॥

अथ अल्पालंकार-वर्णनं

अल्प अल्प आधेय तेँ, सूछम होइ अधार।
छला छिगुनिया-छोर को, पहुँचनि करत बिहार ॥४१॥

यथा

दास परम तनु सुतनु-तनु, भो परिमान प्रमान।
तहाँ न बसियत साँवरे, तुम तेँ तनु को आन ॥४२॥

यथा–(सवैया)

कोऊ कहै करहाट के तंतु मैँ काहू परागनि मैँ उनमानी।
ढूँढहु री मकरंद के बुंद मैँ दास कहैँ जलजा-गुन-ज्ञानी।
छामता पाइ रमा ह्वै गई परजंक कहा करै राधिका रानी।
कौल मैँ *दास* निवास किये है तलास कियेहूँ न पावत प्रानी ॥४३॥

---

[३९] सबै–धरे (भारत, वेंक०)।

[३९ अ] मैँ-तेँ (भारत, वेंक०)।

[४०] कहूँ–सदा (भारत, वेंक०, बेल०)।

[४१] सूछम०–सूक्ष्म होइ आधार (भारत, बेल०); सूक्ष्म होइ अधार (वेंक०)। पहुँचनि–भुज मैँ (बेल०)।

[४२] परम०–परम लघु (वेंक०)। न०–बसतु हौ (भारत, वेंक०, बेल०)। तनु–लघु (वही)।

[४३] करहाट०–करहाटक (वेंक०)। ढूँढहु०–ढूँढि फिरे (बेल०)। जलजा०–जलजातन (भारत, वेंक०, बेल०)।

अथ विशेषणालंकार-वर्णनं—(दोहा)

अनाधार आधेय अरु, एकहि तैं बहु सिद्धि।
एकै सब थल बरनिये, त्रिबिधि बिसेषन-बृद्धि ॥ ४४ ॥

अनाधार आधेय, यथा

सुभदाता सूरो सुकबि सेत करै आचार।
बिना देहहूँ दास ये, जीवत इहि संसार ॥ ४५ ॥

एकहि तें बहु सिद्धि, यथा

तिय तुव तरल कटाच्छ जे, सहैं धीर उर धारि।
सही मानिये तिन्ह सह्यो, तुपक तीर तरवारि ॥ ४६ ॥

एकै सब थल बरनिबो, यथा

जल मैं थल मैं गगन मैं, जड़-चेतन मैं दास।
चर-अचरन मैं एक है, परमातमा-प्रकास ॥ ४७ ॥

इति श्रीसकलकलाधरकलाधरवंशावतंसश्रीमन्महाराजकुमार
श्रीबाबूहिंदूपतिविरचिते काव्यनिर्णये अतिशयो-
क्त्यादिअलंकारवर्णनं नाम एका-
दशमोल्लासः ॥ ११ ॥

१२

अथ अन्योक्त्यादि-अलंकार-वर्णनं—(दोहा)

अप्रस्तुतपरसंस अरु, प्रस्तुतअंकुर लेखि।
समासोक्ति ब्याजस्तुत्यौ, आच्छेपहि अवरेखि ॥ १ ॥
परजाजोक्तिसमेत किय, षट भूषन इकठौर।
जानि सकल अन्योक्तिमय सुनहु सुकबिसिरमौर ॥ २ ॥

---

[४५] सेत—सेतु (भारत, वेंक०, बेल०)। जीवत०—जीव तरहिं (भारत)।
[४६] मानिये०—मानु ते सहि चुके (भारत); मानि० (वेंक०)।
[४७] एक है—देखिये (भारत, वेंक०); एक ही (बेल०)।
[१] मय—मैं (भारत, बेल०)।
[२] है—द्वै (भारत)।

अप्रस्तुतप्रशंसा के भेद–(दोहा)

कारजमुख कारनकथन, कारन के मुख काज।
कहूँ सामान्य बिसेष ह्वै, होत ऐसेही साज॥ ३॥
कहूँ सरिस-सिर डारिकै, कहै सरिस सौं बात।
अप्रस्तुतपरसंस के, पाँच भेद अवदात॥ ४॥
कबि-इच्छा जिहि कथन की, प्रस्तुत ताकौं जानु।
अनचाहेहुँ कहे परै, अप्रस्तुत सो मानु॥ ५॥
अप्रस्तुत के कहत जहँ प्रस्तुत जान्यो जाइ।
अप्रस्तुतपरसंस तेहि, कहैं सकल कबिराइ॥ ६॥
दोऊ प्रस्तुत देखिकै, प्रस्तुतअंकुर लेखि।
समासोक्ति प्रस्तुतहि तैं अप्रस्तुत अवरेखि॥ ७॥
इनमैं स्तुति-निंदानिमैं, ब्याजस्तुति पहिचान।
सबमैं यह जोजित किये, होत अनेक बिधान॥ ८॥

अथ अप्रस्तुतप्रशंसा, कारजमुख कारन को कथन–(कबित्त)

न्हान समै *दास* मेरे पायनि पर्यो है सिंधु,
तट नररूप ह्वै निपट बेकरार मैं।
मैं कही तूँ को है, कह्यो बूझत कृपा कै तौ,
सहाय कछु करौ ऐसे संकट अपार मैं।
हौं तौ बड़वानल बसायो हरि ही को मेरी
बिनती सुनावौ द्वारिकेस-दरबार मैं।
बृज की अहीरिन की अँसुवावलित आइ,
जमुना जरावै मोहिं महानल-झार मैं॥ ९॥

---

[४] कहै–कहत (भारत, वेंक०)। पाँच–पंच (वही)।
[५] अनचाहेहुँ०–अनचहिहूँ सु० (भारत) ; अनचाहितहूँ कहि० (वेंक०); अनचाहो कहिबे परो (बेल०)।
[६] जहँ–हीं (बेल०)। कहैं–कहहिं (भारत, वेंक०) ; कहत (बेल०)।
[७] देखिकै–होत जहँ (बेल०)।
[८] निंदानि०–निंदा मिलैं (भारत, वेंक०, बेल०)।
[९] है–हो (सर०)। बूझत–बूझतो (वही) ; बूझती (भारत, वेंक०)। हौं तौ–मैं हौं (भारत, वेंक०)।

अस्य तिलक

ए सब कारज कह्यो सो अप्रस्तुत है, गोपिन को बिरह् कारन है सोई प्रस्तुत है सो कह्यो । ९ अ ॥

अथ अप्रस्तुतप्रशंसा, कारनमुख कारज को कथन–(सवैया)

जोति के गंज मैं आधो बराइ बिरंचि रची बृषभानकुमारी ।
आधो रह्यो फिरि ताहू मैं आधो लै सूरज-चंद-प्रभानि मैं डारी ।
दास द्वै भाग किये उबरे को तरैयन मैं छबि एक की सारी ।
एकहि भाग तैं तीनिहुँ लोक की रूपवती जुवतीनि सँवारी ॥ १० ॥

अस्य तिलक

या कथा कारन तैं कारज जो है नाइका ताकी सोभा बरन्यो । १० अ ॥

अथ अप्रस्तुतप्रशंसा, सामान्यमुख विशेष को कथन

या जग मैं तिन्हैं धन्य गनौ जे सुभाय पराए भले कहँ दौरैं ।
आपनो कोइ भलो करै ताको सदा गुन माने रहैं सब ठौरैं ।
दासजू ह्वै जौ सकै तौ करैं बदले उपकार के आपु करोरैं ।
काज हितू के लगे तन-प्रान के दान तैं नेकु नहीं मुँह मोरैं ॥ ११ ॥

अथ अप्रस्तुतप्रशंसा, विशेषमुख सामान्य को कथन

दास परस्पर प्रेम लख्यो गुन छीर को नीर मिले सरसातु है ।
नीरै बेचावत आपने मोल जहाँ जहँ जाइकै छीर बिकातु है ।
पावक जारन छीर लगै तब नीर जरावत आपनो गातु है ।
नीर की पीर निवारिबे कारन छीर घरी ही घरी उफिनातु है ॥ १२ ॥

तुल्यप्रस्ताव मेँ तुल्य को कथन–(दोहा)

तुँ ही बिसदजस भाद्रपद, जग कौं जीवन देत ।
रुचै चातिकै कातिकै, बुंद स्वाति के हेत ॥ १३ ॥

[९अ] ए–यह (भारत, वेंक०) ।
[१०] द्वै–दु (बेल०)
[१०अ] जो है–जेहि (भारत) ।
[११] आपनो०–आपनऊँ सो (भारत, वेंक०) । मुहँ–मन (बेल०) ।
[१२] लख्यो–लखो (भारत, वेंक०, बेल०) । को–के (वही) । छीर–आप (भारत, बेल०) । निवारिबे–निवारन (बेल०) ।
[१३] कौं–मैं (बेल०) ।

शब्दशक्ति तेँ

गुनकरनी गज को धनी, गारो धरै सुसाज।
अहो गृही तिहि राज सोँ, सधै आपनो काज ॥ १४ ॥

यथा–(सवैया)

दासजू याको सुभाय यहै निज अंक मैँ डारि* कितै नहिँ मारै।
को हरुवो अरु को गरुवो को भलो को बुरो कबहूँ न बिचारै।
और कोँ चोट सहाइबे काज प्रहार सहै अपने उर भारै।
आइ परो खल खाली के बीच करै अब को तुअ छोह छोहारै ॥१५॥

प्रस्तुतांकुर, कारन कारज दोऊ प्रस्तुत–(दोहा)

दास उसासनि होतु है, सेत कमलबन नील।
राधे-तन-आँचन अली, सूखत अँसुवा-झील ॥ १६ ॥

अस्य तिलक

इहाँ बिरह को तेज अँसुवा को अधिकार दोऊ बर्नत हैँ। १६ अ ॥

यथा–(सवैया)

आरज आइबो आली कह्यो भजि सामुहे तेँ गई ओट मैँ प्यारी।
एकही एँडी महावरिही श्रम तेँ दुहुँ फैली खरी अरुनारी।
दास न जानै धौँ कौने है दीबो चितै दुहुँ पाइनि नाइनि हारी।
आपु कह्यो अरी दाहिने दै मोहिँ जानि परै पग बाम है भारी ॥१७॥

अस्य तिलक

इहाँ अंग की सुकुमारता पाय की ललाई सब प्रस्तुत है। १७ अ ॥

यथा–(कबित्त)

सिंघिनी औ' भृंगनी की ता ढिग जिकिरि कहा,
बारहू मुरारहू तेँ खीन चित्त धरि तूँ।
दूर ही तेँ नेसुक नजरि भार पावतहीँ,
लचकि लचकि जात जी मैँ ज्ञान करि तूँ।

---

[१४] गारो०–गरो धरै सुभ (भारत)। सधै०–साधै अपनो (वेंक०)।
[१५] याको-याके (भारत, वेंक०); जाको (बेल०)। कितै०–कितेकन्ह (बेल०)।
[१६] झील–हील (सर०, वेंक०)।
[१६अ] अँसुवा–आँसू (भारत, वेंक०)। बर्नत–प्रस्तुत (भारत)।
[१७] सामुहे–सामहे (सर०)। आपु–आपी (भारत); आली (वेंक०)।

तेरो परिमान परिमान के प्रमान है पै,
दास कहै गरुआई आपनी सँभरि तूँ ।
तूँ तौ मनु है रे वह निपट ही तनु है रे,
लंक पर दौरत कलंक सोँ तौ डरि तूँ ॥ १८ ॥

अस्य तिलक

इहाँ कटि को बर्नंनु मनु को बरजिबो दोऊ प्रस्तुत हैँ । १८ अ ॥

अथ समासोक्ति-लक्षणं–(दोहा)

जहँ प्रस्तुत मैँ पाइये, अप्रस्तुत को ज्ञान ।
कहुँ बाचक कहुँ स्लेष तैँ समासोक्ति पहिचान ॥१९॥

यथा–(सवैया)

आनन मैँ झलकै श्रम-सेद लुरैँ अलकैँ बिथुरी छबिछाई ।
दास उरोज घने थहरैँ छहरैँ मुकतानि की माल सोहाई ।
नैन नचाइ लचाइ कै लंक मचाइ बिनोद बचाइ कुराई ।
प्यारी प्रहार करै करकंज कहा कहौँ कंदुक-भाग-भलाई ॥२०॥

अस्य तिलक

कंदुक पुरुष सो जान्यो जातु है ए काम सब बिपरीति कैसो जान्यो जातु है यह समासोक्ति है । २० अ ॥

यथा–(दोहा)

सैसव हति जोबन भयो, अब या तन-सिरदार ।
छीनि पगनि तैँ दृगनि दिय, चंचलता-अधिकार ॥२१॥

अस्य तिलक

सैसव जोबन दोऊ नृप पग दृग दोऊ आमिल चंचलता टहल सो जान्यो जातु है । २१ अ ॥

---

[१८] भृंगिनी–मृगिनी (भारत, वेंक०, बेल०) ।
[१८अ] बर्नंनु–बर्नत (वेंक०) ।
[२०] सेद०–सीक० (सर०); सीकर यौँ (भारत); सीकर औ (बेल०) ।
[२०अ] सो– × (भारत, वेंक०) ।
[२१अ] 'भारत' मैँ छूट गया है ।

श्लेष तें, यथा–(सवैया)

बहु ज्ञान-कथानि लै थाकिहौं मैं कुलकानिहू को बहु नेम लियो।
यह तीखी चितौनि के तीरनि तें भनि *दास* तुनीर भयोई हियो।
अपने अपने घर जाहु सबै अब लौं सखि सीख दियो सो दियो।
अब तौ हरि-भौंह-कमाननि हेत हौं प्राननि कौं कुरबान कियो ॥२२॥

अस्य तिलक

भौंह-कमान पर प्रान नेवछावरि कीबो यह प्रस्तुत है कुरबान कमान को म्यानहू जान्यो जातु है। २२ अ ॥

अथ व्याजस्तुति-लक्षणं–(दोहा)

अप्रस्तुतपरसंस अरु, ब्याजस्तुति की बात।
कहूँ भिन्न ठहरात अरु, कहूँ जुगल मिलि जात ॥२३॥
स्तुति निंदा के ब्याज कहुँ, निंदा स्तुति के ब्याज।
अस्तुति अस्तुति-ब्याज कहुँ, निंदा निंदा साज ॥२४॥

निंदाव्याज स्तुति, यथा–(कवित्त)

भौंर-भीर तन भननाती मधुमाखी सम,
कानन लौं फाटी फाटी आँखी बाँधी लाज की।
ब्यालिनि सी बेनी खीन लंक बलहीन, श्रम
लीन होति संक लहि भूषन-समाज की।
दास परचित्तन्ह की चोर ठहराइ उरजन
पाई पदवी कठोर-सिरताज की।
कौन जानै कौने धौं सुकृत की भलाई बस,
भामिनी भई तूँ मनभाई बृजराज की ॥२५॥

---

[२२] भयोई–भरोई (सर०)।
[२२अ] पर–कौं (भारत, वेंक०)। कीबो–कियो (वही)। कमान को–को कमान (वही)।
[२३] की–कबि (सर०)।
[२४] अस्तुति०–स्तुति अस्तुति के (भारत, बेल०); स्तुति स्तुति (वेंक०)।
[२५] फाटी०–फाटि फाटि (भारत, बेल०)। बाँधी–बँधी (भारत, वेंक०, बेल०)। संक०–सकलहि (भारत, वेंक०)। पर०–परचित्तहूँ० (भारत); चित्तचोर ठहरायो उरजन जग पाई तब पदवी (बेल०)। (बेल०)। उरजन–उरजानि (वेंक०)।

स्तुतिव्याज निंदा, यथा

गोरस को बेचिबो बिहाइकै गँवारिनि
अहीरिनि तिहारे प्रेम पालिबे कौं क्यों अरै।
एते पर चाहिये जौ रावरे के कोमल
हिये कौं नित आपने कठोर कुच सौं दरै।
दास प्रभु कीन्ही भली दीन्ही यौं सजाइ अब,
नीके निसिबासर बियोगानल मैं जरै।
हौ जू बृजराज सब राजन के राज, तुम
बिनु आजु ऐसी राजनीति कहौ को करै ॥२६॥

स्तुतिव्याज स्तुति-वर्णनं–(दोहा)

दास नंद के दास की, सरि न करै पुरहूत।
बिद्यमान गिरिबरधरन, जाको पूत सपूत ॥ २७ ॥
अमल कमल की है प्रभा, बाल-बदन को डौर।
ताको नित चुंबन करै, धन्य भाग तुअ भौंर ॥ २८ ॥

अस्य तिलक

पहिले मैं दोऊ प्रस्तुत हैं प्रस्तुतअंकुर मैं मिलतु है, दूजे मैं बदन प्रस्तुत है अप्रस्तुतप्रसंसा मैं मिलतु है। २७ अ ॥

निंदाव्याज निंदा-वर्णनं, यथा–(दोहा)

नहिं तेरो यह बिधिहि को दूषन काग कराल।
जिन तोहूँ कलरवहु कौं, दीन्हो बास रसाल ॥ २९ ॥
दई निरदई सौं भई, दास बड़ीयै भूल।
कमलमुखी को जिन्ह कियो, हियो कठिनई-मूल ॥ ३० ॥

व्याजस्तुति अप्रस्तुतप्रशंसा सों मिलित

बात इती तोसौं भई, निपट भली करतार।
मिथ्याबादी काग कौं, दीन्हो उचित अहार ॥ ३१ ॥

---

[२६] यौं–जो (बेल०)। कहौ–और (भारत, वेंक०, बेल०)।
[२८] को–की (भारत, बेल०); के (वेंक०)।
[२९] तोहूँ–तो कहँ (भारत, बेल०)।

जाहि सराहत सुभट तुम, दसमुख बार अनेक ।
सु तौ हमारे कटक मैं, ओछो धावन एक ॥ ३२ ॥

यथा–(कवित्त)

काहू धनवंत को न कबहूँ निहारयो मुख,
काहू के न आगे दौरिबे को नेम लियो तैं ।
काहू को न रिन करै काहू के दिये ही बिनु,
हरो तिन्ह असन बसन छोड़ि दियो तैं ।
दास निज सेवक सखा सौं अति दूरि रहि,
लूटै सुख भूरि कौं हरष पूरि हियो तैं ।
सोवतो सुरुचि जागि जोवतो सुरुचि धंध,
बंधव कुरंग कहि कहा तप कियो तैं ॥ ३३ ॥

यथा–(सवैया)

तैहूँ सबै उपमान तैं भिन्न बिचारतहीँ बहु द्योस मरो पचि ।
दासजू देखे सुने जु वहौ अति चिंतनि के ज्वर जात खरो तचि ।
सोऊ बिना अपनो अनुरूप को नायक भेटे बिथानि रही खचि ।
ए करतार कहा फल पायो तूँ ऐसी अपूरब रूपवती रचि ॥ ३४ ॥

अथ आक्षेपालंकार-वर्णनं–(दोहा)

जहाँ बरजिबो कहि इहै, अवसि करौ यह काजु ।
मुकुरि परत जेहि बात कौं, मुख्य वही जहँ राजु ॥ ३५ ॥
दूषि आपने कथन कौं फेरि कहै कछु और ।
आक्षेपालंकार के, जानौ तीन्यौ ठौर ॥ ३६ ॥

आयसु मिस बरजिबो–(सवैया)

जैये बिदेस महेस करौ उत बात तिहारी सबै बनि आवै ।
प्रीतम कौं बरजै कछु काम मैं बाम अयानिनि को पद पावै ।

---

[३३] अब०–अति दूर (भारत, बेल०); अबिदूर (वेंक०) । धंध–धन्य (भारत, बेल०) । कहि–कहु (वही) ।

[३४] जु वहौ–जु बहू (भारत); जे कहूँ (बेल०) । अपनो–अपने (सर०) । ए–रे (भारत); ऐ (बेल०) । पायो–याको (सर०); पाये (वेंक०) ।

[३५] बरजिबो–बरजिये (भारत, वेंक०, बेल०) ।

एती बिनै करौं दासिनि सौं कहि जाइबी नेकु बिलंब न लावै।
कान्ह पयान करौ तुम ता दिन मोहिं लै देवनदी नहवावै ॥३७॥

निषेधाभास-वर्णनं

आजु तें नेह को नातो गयो तुम तेह गह्यो हौंहूँ नेम गहौंगी।
दासजू भूलि न चाहिये मोहि तुम्हैं अब क्यौंहूँ न हौंहूँ चहौंगी।
वा दिन मेरी प्रजंक मैं सोए हौ हौं यह दाउ लहौं पै लहौंगी।
मानौ बुरो कि भलो मनमोहन सेज तिहारी मैं स्वैही रहौंगी ॥३८॥

निज कथन को दूषन भूषन वर्णनं- (दोहा)

तुश्र मुख बिमल प्रसन्न अति, रह्यो कमल सो फूलि।
नहिं नहिं पूरनचंद सो, कमल कह्यो मैं भूलि ॥३९॥
जिय की जीवनमूरि मम, वह रमनी रमनीय।
यहौ कहत हौं भूलिकै, दास वही मो जीय ॥४०॥

अथ पर्यायोक्ति-अलंकार-वर्णनं

कहिय लच्छना-रीति लै, कछु रचना सौं बैन।
मिसु करि कारज साधिबो, परजाजोक्ति सु श्रैन ॥४१॥

रचना सों बैन-(सवैया)

जो तुश्र बेनी के बैरी के पच्छ की राजी मनोहर सीस चढ़ाई।
दासजू हाथ लिये रहै कंठ उरोज भुजा चख तेरे को भाई।
तेरेही रंग को जाको पटा जिन तो रद-जोति की माल बनाई।
तो मुख के तौ हरायल आजु दई उनकों अति हायलताई ॥४२॥

---

[३७] करौ–करै (भारत); करैं (बेल०)। उत०–उतपात (वेंक०)। करौं–करि (बेल०)। दासिनि–दासनि (भारत, वेंक०); दासिन (बेल०)। कान्ह–काहू (वेंक०)। नहवावै–अन्हवावै (बेल०)।
[३८] तेह–नेम (भारत, वेंक०); नेह (बेल०)। गह्यो–गहौ (भारत, बेल०)। मेरी–मेरे (वही)। सोए–सोयौ (सर०)। बुरो०–भलो कि बुरो (भारत, वेंक०, बेल०)। स्वैही-सोहि (सर०); सोय (भारत, बेल०)।
[४०] वह–वा (भारत, बेल०)।
[४२] को–कै (भारत, बेल०)। हरायल–हरायत (भारत)।

मिसु करि कारज साधिबो–(कबित्त)

आजु चंद्रभागा चंपलतिका बिसाखा कौं,
पठाई हरि बाग तैं कलामैं करि कोटि कोटि।
साँझ समैं बीथिन मैं ठानि दृगमीचनो,
भोराई तिन्ह राधे कौं जुगुति कै निखोटि खोटि।
ललिता के लोचन मिचाइ चंद्रभागा सौं,
दुराइबे कौं ल्याई वै तहाँई दास पोटि पोटि।
जानि जानि धरी तिय बानी लरबरी तकि,
आली तिहिं घरी हँसि हँसि परी लोटि लोटि ॥४३॥

इति श्रीसकलकलाधरकलाधरवंशावतंसश्रीमन्महाराजकुमार-
श्रीबाबूहिंदूपतिविरचिते काव्यनिर्णये अन्योक्तादि-
अलंकारवर्णनं नाम द्वादशमोल्लासः ॥१२॥

१३

अथ विरुद्धादि-अलंकार-वर्णनं–(दोहा)

बिबिधि बिरुद्ध बिभावना, ब्याघातहिं उर आनि।
बिसेषोक्ति 'रु असंगत्यो, बिषम समेत छ जानि ॥ १ ॥

विरुद्धालंकार-लक्षणं

कहत सुनत देखत जहाँ, है कछु अनमिल बात।
चमत्कारजुत अर्थजुत, सो बिरुद्ध अवदात ॥ २ ॥
जाति जाति, गुन जाति अरु, क्रिया जाति अवरेखि।
जाति द्रब्य, गुन गुन, क्रिया क्रिया, क्रिया गुन लेखि ॥ ३ ॥

---

[४३] चंद्रभागा–चंद्रावलि (वेंक०)। धरी–धारी (वही)।
[१] 'रु०–अरु संगतौ (वेंक०)।
[३] क्रिया गुन–गुन क्रिया (सर०)।
[४] गुनो–गने (भारत, बेल०); गनो (वेंक०)।

क्रिया द्रव्य, गुन द्रव्य अरु, द्रव्य द्रव्य पहिचानि।
ये दस भेद बिरुद्ध के, गुनो सुमति उर आनि ॥ ४ ॥

जाति जाति सोँ विरुद्ध

प्रानिनि हरत न धरत उर, नेकु दया को साजु।
एरी यह द्विजराज भो, कुटिल कसाई आजु ॥ ५ ॥

अस्य तिलक

यामैँ रूपक अपरांग है। ५ अ ॥

जाति गुण सोँ विरुद्ध–(दोहा)

दरसावत थिर दामिनी, केलि-तरुनि गति देतु।
तिलप्रसून सुरभित करत, नूतन बिधि झपकेतु ॥ ६ ॥

रूपकातिसयोक्ति ब्यंगु है। ६ अ ॥

जाति क्रिया सोँ विरुद्ध–(कवित्त)

पंगुनि को पग होत अंधनि को आसा-मग,
एकै जान ह्वैकै जग कीरति चलाई है।
बिरचै बितान बैजयंती बारि गहै थाँभै,
बाससी बिलासी बिस्व बिदित बड़ाई है।
छाया करै जग कोँ थहाया करै ऊँचो नीचो,
पाई जिहि बंस मैँ योँ बढ़ती सदाई है।
कान्हमुख लागी करै करम कसाइनि को,
वाही बंस बाँसुरी जनमजरी जाई है ॥ ७ ॥

जाति द्रव्य सोँ विरुद्ध–(दोहा)

चंद कलंकित जिन्ह कियो, कियो सकंट मृनार।
वहै बुधनि बिरही करै अबिबेकी करतार ॥ ८ ॥

[५अ] या मैँ–×(भारत)। अपरांग– अपरंग (सर०); अंग (भारत)।
[७] होत–होते (सर०, वेंक०)। बारि–बार (बेल०)। थाँभै–थामै (भारत, बेल०)। बाससी–बाँस सी (सर०)। ऊँचो०–ऊँच नीच (बेल०)। पाई–पाय (सर०, वेंक०; पाया (भारत)। बंस–बेस (सर०)। मैँ०–के मै (सर०, वेंक०)।

गुण गुण सोँ विरुद्ध

प्रिया फेरि कहि वैसहीँ, करि बिय लोचन लोल।
मोहिँ निपट मीठी लगै, यह तेरी कटु बोल ॥ ९ ॥

क्रिया क्रिया सोँ विरुद्ध

सिव साहब अचरजभरो, सकल रावरो अंग।
क्योँ कामहिँ जारयो, कियो क्योँ कामिनि अरधंग ॥ १० ॥

गुण क्रिया सोँ विरुद्ध–(सवैया)

दच्छिन पौन त्रिसूल भयो त्रिगुनै नहिँ जानै कि सूल है कैसो।
सीरो मलै जगती मैँ बहै दुख दैन कोँ भो अहिसंगी अनैसो।
बारिजहूँ बिपरीति लियो अब *दास* भयो यह औसर ऐसो।
जाहि पियूषमयूष कहैँ वहै काम करै रजनीचर कैसो ॥ ११ ॥

गुण द्रव्य सोँ विरुद्ध–(दोहा)

दास छोड़ि, दासीपनो, कियो न दूजो तंत।
भावी-बस तेहि कूबरी, लह्यौ कंत जगकंत ॥ १२ ॥

क्रिया द्रव्य सोँ विरुद्ध

केस मेद नख हाड़ जो बवै त्रिबेनी-खेत।
दास कहा कौतुक कहौँ, सुफल चारि लुनि लेत ॥ १३ ॥

द्रव्य द्रव्य सोँ विरुद्ध

ज्योँ पट लयो बघंबरी, सज्यो चंद्र-खत भाल।
डौरु ब्याल त्योँ संग्रह्यो, तजि मुरली बनमाल ॥ १४ ॥

---

[९] यह–ए (सर०)। तेरी–तेरो (वेंक०)।
[११] मलै०–मलैज गन्यौ (सर०, वेंक०)। बहै–बहो (सर०); बहू (वेंक०)। बिष०–बिपरीति (वही)। यह–अब (वही)। वहै–ससि (सर०); वह (भारत, बेल०)।
[१३] नख–कच (भारत, वेंक०, बेल०)।
[१४] लयो–लह्यो (भारत, वेंक०)। खत–नख (भारत, वेंक०); वत (बेल०)। डौरु–डौँर (वेंक०); डमरु (बेल०)।

यथा—(सवैया)

नेह लगावत रूखी परी नत देखि गही अति उन्नतताई।
प्रीति बढ़ावत बैर बढ़ायो तूँ कोमली बात गही कठिनाई।
जेती करी अनभावती तूँ मनभावती तेती सजाइ कोँ पाई।
भाकसी भौन भयो ससि सूर मलै बिष ज्योँ सर सेज सोहाई॥ १५॥

अथ विभावनालंकार-वर्णनं—(दोहा)

बिन कै लघु कारननि तैँ, कारज परगट होइ।
रोकतहू कि अकारनी बस्तुनि तैँ बिधि सोइ॥ १६॥
कारन तैँ कारज कछू, कारज ही तैँ हेतु।
होती छ बिधि बिभावना, उदाहरन कहि देतु॥ १७॥

बिन कारन कारज, विभावना—(कबित्त)

पीरी होति जाति दिन रजनी के रंग बिनु,
जीरो रहै बूड़त तिरत बिनु बारिहीँ।
बिस के बगारे बिनु वाके सब अंगनि,
बिसारे करि डारे हैँ बिलोकनि तिहारिहीँ।
दास बिन चले बृज बिनहीँ चलाए यह
चरचा चलैगी लाल बीते दिन चारिहीँ।
हाइ वह बनिता बरी री बिनु बारहीँ,
जरी री बिनु जारहीँ मरी री बिनु मारिहीँ॥ १८॥

थोरे कारन कारज, विभावना (सवैया)

राखत हैँ जग को परदा कहँ आपु सजे दिगअंबर राखैँ।
भाँग बिभूति भँडार भरी पै भरैँ गृह *दास* को जो अभिलाखैँ।
छाँह करैँ सबको हरजू निज छाँह को चाहत हैँ बट-साखैँ।
बाहन है बरदा यक पै बरदायक बाजि औ' बारन लाखैँ॥१९॥

---

[१५] नत–तन (भारत, बेल०)। बात– बानि (बेल०)। भाकसी–भाकसो (सर०, भारत)।

[१६] कि अ–करि (वेंक०, बेल०)।

[१८] जीरो–मन (बेल०)। री–है (वही)।

[१९] को–की (सर०, वेंक०)। भरी०–भरो है (भारत); भरो पै (बेल०)।

रोकेहू कारजसिद्धि की विभावना—(दोहा)

तुअ बेनी ब्यालिनि रहै, बाँधी गुननि बनाइ।
तऊ बाम बृजइंदु कौं, बदाबदी डसि जाइ॥ २०॥

अस्य तिलक

यामैं रूपक अपरांग है। २० अ॥

अकारनी बस्तु तें कारज की विभावना—(सवैया)

पाहन पाहन तें कढ़ै पावक केहूँ कहूँ यह बात फबै सी।
काठहू काठ सौं भूठो न पाठ प्रतीति परै जग जाहिर जैसी।
मोहन पानिप के सरसे रसरंग की राधे तरंगिनि ऐसी।
दास दुहूँ की लगालगी सौं उपजी यह दारुनि आगि अनैसी॥२१॥

अस्य तिलक

यामैं उपमा अपरांग है। २१ अ॥

कारन तें कारज कछु, यथा—(दोहा)

श्रीहिंदूपति तेग तुअ, पानिप-भरी सदा हि।
अचरज याकी आँच सौं, अरिगन जरि जरि जाहि॥२२॥

कारन तें कारज कछु की विभावना—(सवैया)

सखि चैत हैं फूलनि को करता करने सु अचेत अचैन लग्यो।
कहि दास कहा कहिये कलरौहि जु बोलन बैकल बैन लग्यो।
जगप्रान कहावत गौन कै पौनहु प्राननि कौं दुख दैन लग्यो।
यह कैसो निसाकर मोहिं बिना पिय साँकरे कै जिय लैन लग्यो॥२३॥

को—के (वेंक०, बेल०)। सबको०—सिगरे जग को (बेल०)। यह—इक (भारत, बेल०)।

[२०] ब्यालिनि—व्याली (बेल०)। इंदु—चंद्र (भारत, बेल०); इंद्र (वेंक०)।

[२०अ] 'भारत' मैं छूट गया है। यामैं— यहाँ (वेंक०)।

[२१अ] यामैं—यहाँ (भारत); इहाँ (वेंक०)।

[२२] श्री—जो (भारत)।

[२३] कछु—भिन्न (सर०)। लग्यो—लगै (सर०)। हि जु—हित (भारत); हिं जो (बेल०)। बैकल—जो कल (भारत)। गौन०—पौन के गौनहु (बेल०)। निसाकर—बिषाकर (भारत)।

(दोहा)

दास कहा कौतुक कहौं, डारि गरे निज हार।
जैतुवार संसार को, जीति लेति यह दार ॥ २४ ॥

कारज तें कारन, बिभावना

चंद निरखि सकुचत कमल, नहिं अचरज नँदनंद।
यह अचरज तियमुख-कमल निरखि जु सकुचत चंद ॥ २५ ॥
फेरि काढ़िबौं बारि तें, बारिजात दनुजारि।
चलि देखौ द्रग जहँ कढ़त बारिजात तें बारि ॥ २६ ॥

अथ व्याघात-अलंकार-लक्षणं—(दोहा)

जाहि तथाकारी गनै, करै अन्यथा सोउ।
काहू सुद्ध बिरुद्ध ही, है व्याघातै दोउ ॥ २७ ॥

तथाकारो अन्यथाकारी, यथा

जे जे बस्तु सँजोगिनिन, होति परम सुखदानि।
ताही चाहि बियोगिनिन, होति प्रान की हानि ॥ २८ ॥
दास सपूत सपूत ही, गथ बल होइ न होइ।
यहै कपूतहु की दसा, भूलि न भूलै कोइ ॥ २९ ॥
तो सुभाव भामिनि वहै, मोहिँ यहै संदेह।
सौतिन्ह कौं रूखी करै, पिय-हिय करै सनेह ॥ ३० ।

काहू को बिरुद्ध ही सुद्ध

लोभी धन-संचय करै, दारिद को डर मानि।
दास यहै डर मानिकै, दान देत है दानि ॥ ३१ ॥
मुनिगन जप तप करि चहैं, सूली-दरसन चाउ।
जिहि न लखै सूली वहै, तस्कर चहै उपाउ ॥३२॥

---

[२५] यह०—यह अदभुत (बेल०) । तिय—तिस (वेंक०) ।
[२६] द्रग०—जहँ कढ़त द्रग (भारत, वेंक०) ।
[२७] ही—सौं (बेल०) ।
[३०] मोहिं०—मो हिय है (बेल०) ।
[३१] यहै—वहै (भारत, बेल०) । डर—उर (वेंक०) ।
[३२] लखै—लहै (भारत, वेंक०, बेल०) । वहै—वहौ (सर०); यही (भारत, वेंक०) ।

यथा—(सवैया)

वा अधरारस-रागी हियो जिय पागी वहै छबि दास बिसाली।
नैननि सूझि परै वहै सूरति बैननि बूझि परै वहै आली।
लोग कलंक लगायहीबी ते लुगाई कियो करैं कोटि कुचाली।
बादि बिथा सखि क्यौं 'ब सहै री गहै न भुजा भरि क्यौं बनमाली ॥३३॥

अथ विशेषोक्ति-वर्णनं—(दोहा)

हेतु घनेहू काज नहिँ, बिसेषोक्ति निसंदेह।
देह-दसा निसिदिन बरै, घटै न हिय को नेह ॥ ३४ ॥

यथा—(सवैया)

नाभि-सरोवरी औ' त्रिबली की तरंगनि पैरत ही दिनराति है।
बूड़ी रहै तन-पानिप ही मैं नहीँ बनमालहू तैँ बिलगाति है।
दासजू प्यासी नई अँखियाँ घनस्याम बिलोकत ही अकुलाति है।
पीबो करैं अधरामृत हू कौं तऊ उनकी सखि प्यास न जाति है ॥३५॥

अथ असंगति-अलंकार-वर्णनं—(दोहा)

जहँ कारन है और थल, कारज औरै ठाम।
अनत करन कौं चाहिये, करै अनत ही काम ॥ ३६ ॥
और काज करने लगै, करै जु औरै काज।
त्रिबिधि असंगति कहत हैं, सुकबिन के सिरताज ॥ ३७ ॥

कारन कारज भिन्न थल, यथा

दास दुजेस घरान मैं, पानिप बढ़्यो अपार।
जहाँ तहाँ बूड़े अमित, बैरिन्ह के परिवार ॥ ३८ ॥

---

[३३] लगायहीबी०—लगाइहि बीत्यो (भारत, वेंक०); लगावत हैं औ (वेल०)। क्यौं 'ब—क्यौं बस है (भारत); क्यौं न सहै (वेंक०); क्यौं बसिहै (बेल०)।

[३४] निसंदेह—न सँदेह (भारत, वेंक०, बेल०)। दसा—दिया (भारत, बेल०)।

[३५] तैँ—मैँ (भारत, वेंक०)। उनकी—इनकी (भारत, वेंक०, बेल०)।

यथा–(कबित्त)

रीति तुअ सौतिन की कैसी तुअ माड़े मुख,
केसरि सौं उनको बदन होत पियरो।
तेरे उर भार उरजातनि को अधिकार,
उनकों दरकिबे कों अकुलात हियरो।
दास तुअ नैननि मैं बिधिना लोनाई भरी,
उनकों किरिकिरी तैं सूझत न नियरो।
पानिप-समूह सरसात तुअ अंगनि मैं,
बूड़ि बूड़ि आवत है उनको क्यौं जियरो ॥ ३९ ॥

यथा–(सवैया)

मो मति पैरन लागी अली हरिप्रेम-पयोधि की बात न जानी।
दास थक्यो मन संक बही गई बूड़ि सबै कुलरीति-कहानी।
फूलि रह्यो हियरो भरि पानिप लाजभरी बहुखो उतरानी।
अंग दहै उपचार की आगि सौं कैसी नई भई रीति सयानी ॥ ४० ॥

और थल की क्रिया और थल–(सोरठा)

मैं देख्यो बन न्हात, रामचंद्र तो अरि-तियन।
कटितट पहिरे पात, दृग कंकन कर मैं तिलक ॥ ४१ ॥

यथा–(सवैया)

लाहु कहा खए बैंदो दिये औ' कहा है तखोना के बाहु गड़ाए।
कंकन पीठि हिये ससि-रेख की बात बनै बलि मोहिं बताए।
दास कहा गुन ओठ मैं अंजन भाल मैं जावक-लीक लगाए।
कान्ह सुभाय ही बूझति हौं मैं कहा फलु नैननि पान खवाए ॥ ४२ ॥

---

[३९] भार–मौंझ (बेल०)। अधिकार–अधिकाति (भारत); अधिकात (वेंक०)। बिधिना–बिधि ने (भारत, वेंक०, बेल०)।

[४०] संक०–संगति ह्वै (बेल०)। हियरो-हियरे (सर०)। आगि–आँच (बेल०)। सौं–सु (भारत, वेंक०, बेल०)।

[४१] तो–तुअ (भारत, वेंक०, बेल०)।

[४२] खए–कहौ (भारत); कर (बेल०)। बैंदो–बैंदी (भारत, वेंक०, बेल०)।

और काज अरंभिये और करिये–(दोहा)

प्रगट भए घनस्याम तुम, जगप्रतिपालन-हेतु।
नाहक बिथा बढ़ाइ क्यौं, अबलनि को ज्यौ लेतु ॥ ४३ ॥

यथा–(सवैया)

आनँद-बीज बयो अँखियानि जमायो बिथानि की जी मैं जई है।
बेलि बढ़ायो चवाई की जो बृज धामनि धामनि फैलि गई है।
दास देखाइ कै तौंबरि-फूल फली दियो आनि कृसानुमई है।
प्रीति बिहारी की मालिनि है यहि बारी मैं रीति बगारी नई है॥४४॥

अस्य तिलक

यामैं रूपक को संकर है। ४४ अ ॥

अथ विषमालंकार-वर्णनं–(दोहा)

अनमिल बातनि को जहाँ, परत कैसहूँ संग।
कारन को रँग औरई, कारज औरै रंग ॥ ४५ ॥
करता कौं न क्रिया फलै, अनरथ ही फल होइ।
बिषमालंकृत तीनि बिधि, बरनत हैं सब कोइ ॥ ४६ ॥

अनमिल बातनि को, यथा–(सवैया)

किल कंचन सी वह अंग कहाँ कहँ रंग कदंबिनि के तनु कारो।
कहँ सेजकली बिकली वह होइ कहाँ तुम सोइ रहौ गहि डारो।
नित *दास*जू ल्यावहि ल्याव कहौ कछु आपनो वाको न बीच बिचारो।
वह कौलसी कोरी किसोरी कहाँ औ' कहाँ गिरिधार न पानि तिहारो ॥४७॥

कारन कारज भिन्न रंग को

नैन बमैं जल कज्जलसंजुत पी अधरामृत की अरुनाई।
दास भई सुधि बुध्धि हरी लखि केसरिया-पट-सोभ सोहाई।

---

[४३] क्यौं–के (बेल०)। ज्यौ–जिय (भारत, वेंक०, बेल०)।

[४४] तौंबरि–ताबरी (सर०); तौंब्ररि (वेंक०); तूँबरि (बेल०)। है–द्वै (सर०); री (वेंक०)।

[४७] किल–काल (बेल०)। सी–सौं (वही)। कहँ०–औ कहाँ यह मेचन सौं (वही)। सेज–कौल (वही)। बिकली–बिकसी (वही)। नित–निज (सर०)। कौल सी–कोमल (बेल०)। कोरी–गोरी (भारत, बेल०)।

कौन अचंभो कहूँ अनुरागी भयो हियरो जस-उज्जलताई ।
साँवरे रावरे नेह पगे ही परी तिय-अंगनि मैं पियराई ।। ४८ ।।

कर्ता कौं क्रियाफल न होइ तापर अनर्थ–(दोहा)

हुत्यो नीरचर-हनन कौं, किये तीर बक ध्यान ।
लीन्हो झपटि सचान तिहि, गयो ऊपरहि प्रान ।।४९।।
तुअ कटाच्छ-डर मन दुखो, तिमिर-केस मैं जाइ ।
तहँ ब्यालिनि बेनी डस्यो, कीजै कहा उपाइ ।।५०।।
सिंघीसुत की मानि भय, ससा गयो ससि-पास ।
ससिसमेत तहँ ह्वै गयो, सिंघीसुत को ग्रास ।।५१।।

यथा–(सवैया)

जेहि मोहिबे काज सिँगार सज्यो तेहि देखतै मोह मैं आइ गई ।
न चितौनि चलाइ सकी उनहीँ के चितौनि के घाइ अघाइ गई ।
बृषभानुलली की दसा सुनौ *दास*जू देत ठगौरी ठगाइ गई ।
बरसाने गई दधि बेचिबे कौं तहँ आपु ही आपु बिकाइ गई ।।५२।।

इति श्रीसकलकलाधरकलाधरवंशावतंसश्रीमन्महाराजकुमार-
श्रीबाबूहिंदूपतिविरचिते काव्यनिर्णये
विरुद्धाद्यलंकारवर्णनं नाम
त्रयोदशमोल्लासः ।।१३।।

---

[४८] नैन०–नैन वहँ (भारत, बेल०); नैनन मैं (वेंक०) ।
[४९] हुत्यो०–सरतट जलचर (बेल०) । किये०–धरे हुतो (वही) ।
[५०] डस्यो–डसी (सर०) ।
[५१] की–को (भारत, बेल०) ।
[५२] के–की (बेल०) । घाइ–भाय (वही) । सुनौ–यह (वही) ।
बेचिबे–बेचन (भारत, वेंक०, बेल०) ।

१४

अथ उल्लास-अलंकार-वर्णनं–(छप्पय)

बिबिधि भाँति उल्लास अवज्ञा अनुज्ञाहि गनि।
बहुरयो लेस बिचित्र तदगुनो स्वगुन *दास* भनि।
और अतदगुन पूरुबरूप अनुगुन अवरेखहि।
मिलित और सामान्य जानि उन्मिलित बिसेषहि।
ये होत चतुर्दस भाँति जो अलंकार सुनिये सुमति।
सब गुन दोषादि प्रकार गनि, किये एक ही ठौर तति॥१॥

अथ उल्लास अलंकार–(दोहा)

औरै के गुन दोष तेँ औरै के गुन दोष।
बरनत यौँ उल्लास हैँ, कबि पंडित मतिकोष॥२॥

गुन ते गुन वर्णनं

औरै के गुन और को गुन पहिलेँ उल्लास।
दास सपूरन चंद लखि, सिंधु-हियेँ हुल्लास॥३॥
कह्यो देवसरि प्रगट ह्वै, *दास* जोरि जुग हाथ।
भयो सीय तुव न्हान तेँ, मेरो पावन पाथ॥४॥

और के गुन तेँ और कोँ दोष

औरै के गुन और कौँ दोष उलासै होत।
बारिद जग जीवन भरत, मरत आक के गोत॥५॥
बास बरागत मालती, करि करि सहज बिकास।
पियबिहीन बनितानि हिय, बिथा बढ़त अनयास॥६॥

और को दोष और कोँ गुन

दोष और के और कौँ गुन उल्लासै लेखि।
रघुपति को बनवास भो, तपसिन्ह सुखद बिसेषि॥७॥

---

[१] किये–कियो (भारत, वेंक०)। तति–थिति (भारत, वेंक०, बेल०)।
[२] कोष–चोष (वेंक०)।
[३] पहिलेँ–पहिलो (बेल०)।
[५] कौँ–तेँ (भारत, वेंक०)।
[६] बनितानि०–बनितन्ह हिये (बेल०)।

भली भई करता कियो, कंटकबलित मृनाल।
तुव भुजानि की जानि सब, उपमा देते बाल ॥८॥

और के दोष और कौं दोष

उल्लासै जहँ और के दोष और कौं दोष।
भए संकुचित कमल निसि, मधुकर लह्यो न मोष ॥९॥

अप्रस्तुतपरसंस जहँ, अरु अर्थांतरन्यास।
तहाँ होत अनचाहू हूँ बिबिधि भाँति उल्लास ॥१०॥

अप्रस्तुतप्रशंसा, यथा–(सवैया)

है यह तौ बन बेनु को जौ लखिये सो सगाँठि असारु कठोरै।
दास ये आपुस मैं इहि भाँति करैं रगरो जिहिँ पावक दौरै।
आपनऊ कुल संकुल जारि जरावतु हैँ सहबास के औरै।
रे जगबंदन चंदन तोहि निवास कियो इहि ठौर करोरै ॥११॥

अथ अवज्ञा-लक्षणं–(दोहा)

औरै के गुन और कौं गुन न अवज्ञा गाइ।
बड़े हमारे नैन तौ तुम्हैँ कहा जदुराइ ॥१२॥
निज सुघराई को सदा, जतन करैं मतिमान।
पितु-प्रबीनता को गरबु, कीबो कौन सयान ॥१३॥

अवज्ञा [द्वितीय भेद]

औरहि दोष न और के दोष, अवज्ञा सोउ।
मूढ़ सरित डारै सुरा, भूलि न त्यागत कोउ ॥१४॥

---

[८] भली०–भलो भयो (बेल०)। कलित–व्रलित (वही)। की०–सम जानि कवि (वही)।

[११] बेनु–सेनु (वैंक०)। सो०–सहगाँठि (बेल०)। असारु–असाद (भारत)। सहवास–सब बास (सर०)। निवास–बिनास (भारत, बेल०)। इहि–यह (बेल०) करोरै–कुठौरै (भारत, बेल०)।

[१२] गाइ–पाइ (भारत, वैंक०)। तौ–सौं (वैंक०)।

यथा–(कवित्त)

आक औ' कनकपात तुम जौ चबात हौ तौ,
षटरस-ब्यंजन न केहूँ भाँति लटि गो।
भूषन बसन कीन्हैं ब्याल गजखाल को तौ
साल सुबरन को न पैन्हिबो उसटि गो।
दास के दयालहीं सुरीति ही उचित तुम्हैं,
लीन्ही जौ कुरीति तौ तिहारो ठाट ठटि गो।
ह्वैकै जगदीस कीन्हो बाहन बृषभ को तौ,
कहा सिव साहब गयंदन को घटि गो ॥१५॥

अवज्ञा [तृतीय भेद]–(दोहा)

जहँ दोष तेँ गुन नहीँ, यहौ अवज्ञा *दास*।
जहँ खलन को गन बसै, तहँ न धर्मप्रकास ॥ १६ ॥
काम क्रोध मद लोभ की, जा हिय बसी जमाति।
साधु-भावती भक्ति तहँ, *दास* बसै किहि भाँति ॥ १७ ॥

अवज्ञा [चतुर्थ भेद]

जहँ गुन तेँ दोषौ नहीँ, यहौ अवज्ञा बेस।
रामनाम-सुमिरन जहाँ, तहाँ न संकट-लेस ॥ १८ ॥

यथा–(सवैया)

कोरी कबीर चमार रै दास हो जाट धना सधना हो कसाई।
गीध गुनाह-भरोई हुत्यो भरि जन्म अजामिल कीन्ही ठगाई।
दास दई इनकौं गति जैसी न तैसी जपीन तपीनहू पाई।
साहब साँचो न दोष गनै गुन एक लहै जु समेत सचाई ॥ १९ ॥

अनुज्ञा-वर्णनं–(दोहा)

दोषहु मैं गुन देखिये, ताहि अनुज्ञा नाम।
भलो भयो मगभ्रम भयो, मिले बीच बन स्याम ॥ २० ॥

---

[१५] कीन्हे–कीन्हो (भारत, बेल०)। उसटि–उलटि (भारत, वेंक०, बेल०)। हीँ-हौ (भारत, वेंक०)। लीन्ही–लीन्हो (सर०)।

[१९] चमार०–चमार हो रैदास जाट (सर०) ; चमारह० (वेंक०) ; चमारहु दास ह्वै० (बेल०)। हो–हूँ (बेल०)।

[२०] भयो–भई (सर० ÷, वेंक०)। बन०– घनस्याम (भारत, बेल०)।

कौन मनावै मानिनी, भई और की और।
लाल रहे छकि लखि ललित, लाल बाल-दृगकोर ॥ २१ ॥

अथ लेशालंकार-वर्णनं–(दोहा)

जहाँ दोष गुन होत है, लेस वहै सुखकंद।
छीनरूप ह्वै द्वैज-दिन, चंद भयो जगबंद ॥ २२ ॥
ललित लाल मुख मेलिकै, दियो गँवारन्ह फेरि।
लीलि न लीन्ह्यो यह बड़ो लाभ, जौहरी हेरि ॥ २३ ॥

लेश पुनः

गुनौ दोष ह्वै जात है, लेस-रीति यह औरि।
फले सोहाए मधुर फल, आँब गए झकझोरि ॥ २४ ॥

अथ विचित्रालंकार-वर्णनं–(दोहा)

करत दोष की चाह जहँ, ताही मैं गुन देखि।
तेहि बिचित्र भूषन कहौ, हिये चित्र अवरेखि ॥ २५ ॥

यथा

जीवन-हित प्रानहि तजैं, नवैं उँचाई-हेत।
सुख-कारन दुख संग्रहैं, ऐसे भृत्य अचेत ॥ २६ ॥
दोषबिरोधी केवलै, गनौ न गुन-उद्दोत।
कछु भूषन-बिस्तरन गुन रूप रंग रस होत ॥ २७ ॥

अथ तद्गुण-अलंकार-लक्षणं–(दोहा)

तद्गुन तजि गुन आपनो, संगति को गुन लेत।
पाए पूरुबरूप फिरि, स्वगुन सुमति कहि देत ॥ २८ ॥

तद्गुण, यथा–(कवित्त)

पन्ना संग पन्ना ह्वै प्रकासत छनक लै,
कनक-रंग पुनि पै गुरंगनि पलतु है।
अधर ललाई लावै लाल की ललक पाए,
अलक-झलक मरकत-सो रलतु है।

---

[२२] वहै–वही (भारत, वेंक०)।
[२६] ऐसे०–ऐसो मृत्यु (भारत)।
[२७] उद्दोत–उद्योत (भारत)। बिस्तरन–उद्धरन (बेल०)।

ऊदो अरुनोहैं पीत पाटल हरोहैं ह्वैकै,
दुति लै दुघाँ की *दास* नैननि छलतु है।
समरथ नीके बहुरूपिया लौं थान ही मैं,
मोती नथुनी के बर बाने बदलतु है॥ २६॥

अस्य तिलक

इहाँ उपमा अपरांग है, तातैं अंगांगी संकर भयो। २६ अ॥

पुनः, यथा—(दोहा)

सखि तूँ कहै प्रबाल भो मुकुता हाथ-प्रसंग।
लख्यो डीठि चिहुँटाइ हौं, सु तौ चिहुचनी-रंग॥३०॥

स्वगुण, यथा—(सवैया)

भावतो आवतो जानि नवेली चँवेली के कुंज जौ बैठती जाइकै।
दास प्रसूननि सोनजुही करै कंचन सी तन-जोति मिलाइकै।
चौंकि मनोरथहू हँसि लेन चलै पगु लाल प्रभा महि छाइकै।
बीर करे करबीर झरे निखिले हरषै छबि आपनी पाइकै॥३१॥

अतद्गुण वो पूर्वरूप लक्षणं—(दोहा)

सु अतद्गुन क्योंहूँ नहीं, संगति को गुन लेत।
पुरुबरूप गुन नहिं मिटै, भए मिटन के हेत॥३२॥

अतद्गुण, यथा—(सवैया)

कैबा जवादिन सौं उबट्यो सज्यो केसरि को अँगराग अपारो।
न्हान अनेक बिधान सरै रस संत मैं संत करै नित डारो।

---

[२६] पन्ना—पंन्न (सर०)। गुरंगनि—कुरंगनि (वेंक०, बेल०)। रलतु—हलतु (भारत, वेंक०, बेल०)। दुघाँ की—दुहूँघा (बेल०)।

[२६ अ] तातैं—यातैं (भारत, वेंक०)। भयो—है (वही)।

[३०] चिहुँटाइ हौं—चिहुँठाइ हो (सर०, भारत)।

[३१] बैठती-बैठत (बेल०)। करे—करै (भारत, वेंक०, बेल०)। झरे—झरै (वही)। निखिले—निखिलै (वही)।

[३२] सु—सोइ (बेल०)। क्योंहूँ०—केहूँ नहीं (भारत, वेंक०); है नहीं (बेल०)। पुरुब—पूर्व (भारत, वेंक०, बेल०)।

दासजू हौं अनुराग-भरे हिय बीच बसाइ करो नहिँ न्यारो।
लीन सिँगार न होत तऊ तन आपनो रंग तजै नहिँ कारो ॥३३॥

पूर्वरूप, यथा

सारी सितासित पीरी रतीलिहु मैँ बगरावै वहै छबि प्यारी।
आभा-समूह मैँ अंबर कोँ पहिचानिये दास बड़ी किये ह्यारी।
चंद मीरीचिन्ह सोँ मिलि अंगन अंगन फैलि रहै दुति न्यारी।
भौन अँध्यारहु बीच गए मुखजोति तेँ वैसियै होति उज्यारी ॥३४॥

(दोहा)

हरि खड्गी अरु ब्यालगन, आगे दौरत राज।
राज छुटेहू तुव दुवन, बन लियो राज को साज ॥३५॥

अथ अनुगुण-लक्षणं—(दोहा)

अनुगुन संगति तेँ जहाँ, पूरन गुन सरसाइ।
नील सरोज कटाछ लहि, अधिक नील ह्वै जाइ ॥३६॥
जदपि हुती फीकी निपटि, सारी केसरि-रंग।
दास तासु दुति ह्वै गई सुंदरि-रंग प्रसंग ॥३७॥

अथ मीलित वो सामान्यालंकार-लक्षणं—(दोहा)

मिलित जानिये जहँ मिलै, छीर-नीर के न्याय।
है सामान्य मिलै जहाँ हीरा फटिक सुभाय ॥३८॥

मीलित, यथा—(सवैया)

हुतो बाग मैँ लेत प्रसून अली मनमोहनहू तहँ आइ पर्यो।
मनभायो घरीक भयो पुनि गेह चवाइन मैँ मनु जाइ पर्यो।
द्रुत दौरि गई गृह दास तहाँ न बनाइबे नेकु उपाइ पर्यो।
धक स्वेद उसास खरोटनि कोँ कछु भेद न काहूँ लखाइ पर्यो ॥ ३९ ॥

---

[३३] कैश्रा—कौवा (बेल०)। रस०—रसा सांत लौँ सांत (वही)। हौँ—त्यौँ (वही)।

[३४] किये०-किन्हवारी (बेल०)। अंगन०—आँगन अंगन्ह (सर०, बेल०)।

[३५] गन-गज (भारत, वेंक०)। लियो—लिये (भारत, वेंक०); लिय (बेल०)। को—कु (भारत); कें (वेंक०); क (बेल०)।

[३९] न बनाइबे—न षनाइबे (सर०); तब नाइबे (वेंक०)।

सामान्य, यथा–(दोहा)

केसरिया पट कनक तन, कनकाभरन सिँगार।
गत केसरि-केदार मैँ, जानी जात न दार ॥ ४० ॥

यथा–(कबित्त)

आरसी को आँगन सुहायो छबिछायो,
नहरनि मैँ भरायो जल उज्जल सुमन-माल।
चाँदनी बिचित्र लखि चाँदनी बिछौने पर,
दूरिकै चँदोवनि कौँ बिलसै अकेली बाल।
दास आसपास बहु भाँतिन बिराजैँ धरे,
पन्ना पोखराज मोती मानिक पदिक लाल।
चंद-प्रतिबिंब तैँ न न्यारो होत मुख, औ'
तारे-प्रतिबिंबनि तैँ न्यारो होत नगजाल ॥ ४१ ॥

उन्मीलित, विशेष अलंकार लक्षणं–(दोहा)

जहाँ मिलित सामान्य मैँ, कछू भेद ठहराइ।
तहँ उनमिलित बिसेष कहि, बरनत सुकबि सुभाइ ॥ ४२ ॥

उन्मीलित, यथा–(कबित्त)

सिख-नख फूलनि के भूषन बिभूषित कै,
बाँधि लीनी बलया बिगत कीनी बजनी।
ता पर सँवारे सेत अंबर को डंबर,
सिधारी स्याम-संनिधि निहारी काहू न जनी।
छीर के तरंग की प्रभा कौँ गहि लीनी तिय,
कीनी छीरसिंधु छिति कातिक की रजनी।
आँनद-प्रभा सौँ तनछाँहहू छपाए जाति,
भौँरनि की भीर संग ल्याए जाति सजनी ॥ ४३ ॥

---

[४०] न दार–मदार (वेंक०)।

[४१] छबि०–मन भायो (बेल०)। बिछौने–बिछौनो (भारत); बिछौना (वेंक०)। चँदोवनि–सहेलिनि (भारत, वेंक०, बेल०)।

[४२] जहाँ०–जहँ मीलित (बेल०)। सुकबि०–सुभग सुहाइ (भारत, वेंक०)।

[४३] के–तैँ (बेल०)। प्रभा–छटा (भारत, वेंक०)। जाति–जानि (भारत); जात (बेल०)। ल्याए–लये (भारत, बेल०)।

यथा– (दोहा)

जमुना-जल मैं मिलि चली, उन अँसुवन की धार।
नीर दूरि तैं ल्याइयतु, जहाँ न पैयतु खार ॥ ४४ ॥

विशेष, यथा

मनमोहन-मनमथन कौं, द्वै कहतो को जान।
जौ इनहूँ कर कुसुम को होतो बान-कमान ॥ ४५ ॥
भई प्रफुल्लित कमल मैं, मुखछबि मिलित बनाइ।
कमलाकर मैं कामिनी, बिहरति होति लखाइ ॥ ४६ ॥

इति श्रीसकलकलाधरकलाधरवंशावतंसश्रीमन्महाराजकुमार-
श्रीबाबूहिंदूपतिविरचिते काव्यनिर्णये उल्लासालंकारादिगुणदोषादिवर्णनं नाम
चतुर्दशमोल्लासः ॥ १४ ॥

१५

समादि-अलंकार-वर्णनं–(दोहा)

उचित अनुचिती बात मैं, चमत्कार लखि दास।
अरु कछु मुक्तक रीति लखि, कहत एक उल्लास ॥ १ ॥
सम समाधि परिवृत्ति गनि, भाविक हरष बिषाद।
असंभवो संभावना, समुच्चयो अबिबाद ॥ २ ॥
अन्योअन्य बिकल्प पुनि, सह बिनोक्ति प्रतिषेध।
बिधि काव्यार्थापत्तिजुत, सोरह कहत सुमेध ॥ ३ ॥

---

[४४] जहाँ०–जहँ न पाइयतु (भारत, वेंक०, बेल०)।
[४५] मनमथन–मनमथ जु (सर०)।
[१] अनुचिती–अनुचित (सर०); अनुचितौ (बेल०)। कछु–इक (भारत)।

अथ समालंकार–(दोहा)

जाको जैसो चाहिये, ताको तैसो संग।
कारज मैं सब पाइये, कारन ही को अंग ॥ ४ ॥
उद्यम करि जो है मिल्यो वहै उचित धरि चित्त।
है बिषमालंकार को प्रतिद्वंदी सम मित्त ॥ ५ ॥

यथायोग्य को संग–(सवैया)

अँग अंग बिराजतु है उनके इनहीं के कनीनिका-रंग सन्यो।
उन्हैं भौंर की भाँति बसाइबे कारन *दास* इन्हैं कलकंज भन्यो।
लखि री उनको बस कीबेही कौं इनको इनमैं गुनजाल तन्यो।
घनस्याम को स्याम सरूप अली इन आँखिन ही अनुरूप बन्यो ॥ ६ ॥

(दोहा)

हरि-किरीट केकी-पखनि, निज लायक थल पाइ।
मिल्यो चंद्र कनि चंद्रिकनि, अनु अनु ह्वै मनु जाइ ॥ ७ ॥

कारज योग्य कारन, यथा–(सवैया)

चंचलता सुरबाजि तैं *दास*जू सैलनि तैं कठिनाई गही है।
मोहन-रीति महाबिष की दई मादकता मदिरा सौं लही है।
धीबर देखि डरै जड़ सौं बिहरै जलजंतु की रीति यही है।
न्याइ ही नीचहि नीच फिरै यह इंदिरा सागर बीच रही है ॥ ८ ॥

उद्यम करि पायो सोई उत्तम–(दोहा)

जो कानन तैं उपजिकै, कानन देत जराइ।
ता पावक सौं उपजि घन, हनै पावकहि न्याइ ॥ ९ ॥
मधुप तुम्हैं सुधि लेन कौं, हम पै पठए स्याम।
सब सुधि लै बेसुधि करी, अब बैठे केहि काम ॥ १० ॥

---

[४] मैं–मौं (भारत)। को–के (वही) अंग–रंग (भारत, वेंक०)।
[६] लखि–लखु (बेल०)। ही–के (वही)।
[७] चंद्रकनि–चंद्र की (बेल०)।
[८] नीचहि०–नीचन्ह संग (बेल०)।
[१०] लै०–लै बिसुधी (भारत, बेल०); मिलै बिसुधि (वेंक०)।

अथ समाधि-अलंकार-वर्णनं–(दोहा)

क्यौँ हूँ कारज को जतन, निपट सुगम ह्वै जाइ।
तासौँ कहत समाधि लखि, काकताल को न्याइ ॥ ११ ॥

यथा

धीर धरहि कत करहि अब, मिलन-जतन की चाह।
होन चहत कछु द्योस मैँ, तो मोहन को ब्याह ॥१२॥

(सवैया)

काहे कोँ दास महेस महेस्वरी पूजिबे काज प्रसूननि तूरति।
काहे कोँ प्रात अन्हाननि कै बहु दाननि दै ब्रत संजम पूरति।
देखि री देखि अगोटिकै नैननि कोटि-मनोज-मनोहर मूरति।
एई हैँ लाल गुपाल अली जेहि लागि रहै दिन रैन बिसूरति ॥१३॥

परिवृत्ति-अलंकार-वर्णनं–(दोहा)

कछु लीबो दीबो कथन, ताकोँ बिनिमै जानु।
परिबृत्तालंकारहू ताही कहत सुजानु ॥ १४ ॥

यथा–(सवैया)

तिय कंचन सो तनु तेरो उन्हैँ मिलिकै भयो सौतुख को सपनो।
उनको नगनील सो गात है तैसही तौ बस दास कहा लपनो।
इन बातनि तेरो गयो न कछू उनहीँ डहकायो अली अपनो।
निज हीरो अमोल दयो औ' लयो यह द्वै पल को तुअ प्रेमपनो ॥ १५ ॥

अथ भाविक-अलंकार-वर्णनं–(दोहा)

भूत भविष्यहु बात कोँ, जहँ बोलत ब्रतमान।
भाविक भूषन कहत हैँ, ताकोँ सुमति सुजान ॥ १६ ॥

---

[१३] अन्हाननि०–अन्हान कै तूँ (बेल०)। बहु–ब्रत (सर०)। देखि–देखु (बेल०)। अगोटि०–भट्ट भरि (वही)। एई–आये (वही)।

[१४] कथन–अधिक (बेल०)। परिबृत्ता०–अलंकार परवृत्त तहँ बरनत सुकबि (वही)।

[१५] मिलिकै–मिलिबो (बेल०)। हीरो–हीरा (वही)।

भूत-भाविक-वर्णनं—(कवित्त)

अजौं बाँकी भृकुटी गड़ी है मेरे नैन, अजौं
कसकै कटाच्छ उर छेदि पार ह्वै भई।
कज्जल जहर सों कहर करि डार्यो हुतो,
मंद मुसुकानि यों न होती जौ सुधामई।
दास अजहूँ लौं दृग आगे तें न न्यारी होति,
पहिरे सुरंग सारी सुंदरि बधू नई।
मोही मोह दै करि सनेह-बीज बै करि जु,
कंज ओट कै करि चितै करि चली गई॥ १७॥

भविष्य-भाविक-वर्णनं—(सवैया)

आजु बड़े बड़े भागनि चाहि बिराजत मेरोई भाग बखारो।
दासजू आजु दयो बिधि मोहिं सुरालय के सुख तें सुख न्यारो।
आजु मो भाल उदैगिरि मैं उयो पूरब-पुन्य को तारो उज्यारो।
मोद मैं अंग बिनोद मैं जी चहुँ कोद मैं चाँदनी गोद मैं प्यारो॥१८॥

अथ प्रहर्षण अलंकार—(दोहा)

जतन घनी करि थाकिये, बांछित यों ही जासु।
बांछित थोरो लाभ अति, दैवजोग तें आसु॥ १९॥
जतन ढूँढते बस्तु की, बस्तुहि आवै हाथ।
त्रिबिधि प्रहर्षन कहत हैं, लखि-लखि कविता-गाथ॥ २०॥

यों ही वांछित फल, यथा—(सवैया)

ज्वाल के जाल उसासनि तें बढ़ै देख्यो न ऐसी बिहाल-बिथा ती।
सीर समीर उसीर गुलाब के नीर पटीरहु तें सरसाती।

---

[१७] कटाच्छ—चितौनि (बेल०)। डार्यो—डारे (वही)। यों०—जो न होती वा (वही)। ज्यौं—ज्यौं (भारत)। न्यारी०—न्यारे होत (वेंक०)। सुंदरि—चूँदरि (वही)। बधू—बर (बेल०)।

[१८] बखारो—बिचारो (भारत, बेल०); बन्यारो (वेंक०)। तीसरा चरण 'सर०' में छूट गया है।

[१९] थाकिये—थापिये (बेल०)। जासु—साजु (वही)। अति—बहु (वही)। आसु—आजु (वही)।

श्रीबृजनाथ सनाथ कियो मोहिँ ज्याइ लियो इहि लाइकै छाती।
आजु ही याके तनै पतनै जतनै सब मेरी धरी रहि जाती ॥ २१ ॥

वांछित थोरो लाभ अति, यथा—(दोहा)

जा परिछाहीँ लखन कौँ, हारे परि परि पाइ।
भाग-भलाई रावरी, वहै मिली अब आइ ॥ २२ ॥

जतन ढूँढते वस्तु मिलै, यथा—(सवैया)

भोरही आइ जनी सौँ निहोरिकै राधे कह्यो मोहिँ माधौ मिलावै।
ताहि तकाइकै भौन गई वह आपु कछू करिबे कौँ उपावै।
ताही समै तहँ माधौ गए दुख राधे-बियोग को वाहि सुनावै।
पाइकै सूनो निलै मिलैँ दूनो बढ़ै सुख दूनो दुहूँ उर लावै ॥ २३ ॥

चंद्रालोके, यथा

निध्यञ्जनौषधीमूलं खनता साधितो निधिः। २३ अ ॥

अथ विषादनालंकार-वर्णनं-(दोहा)

सो बिषाद चित-चाह सौँ, उलटो कछु ह्वै जाइ।
सुरत-समय पिकि पापिनी, कुहूँ दियो समुझाइ ॥ २४ ॥

यथा-(सवैया)

मोहन आयो इहाँ सपने मुसकात औ' खात बिनोद सौँ बीरो।
बैठी हुती परजंक मैँ हौँहूँ उठी मिलिबे कहँ कै मन धीरो।

---

[२१] देख्यो—देखी (भारत, बेल०)। थिथा०—थिथाती (सर०)। इहि—गहि (बेल०)। ही—हो (सर०)।

[२२] वहै—वही (भारत, वेंक०)।

[२३] मिलैँ—मिलि (भारत, वेंक०, बेल०)।

[२३अ] 'भारत' 'बेल०' मैँ नहीँ है।

[२४] सौँ—ते (भारत, वेंक०, बेल०)। उलटो०—अनचाह्यो (भारत, वेंक०)। पिकि—पिक (सर०, वेंक०)। पापिनी—पातकी (बेल०)। कुहूँ—कुहू (सर०, भारत); कहूँ (वेंक०)। दियो०—कियो री हाय (भारत)।

ऐसे मैं *दास* बिसासिनि दासी जगायो डोलाइ केवार-जँजीरो।
हाइ अकाथ गयो सजनी मिलिबो बृजनाथ को हाथ को हीरो ॥ २५ ॥

अथ असंभव वो संभावना-अलंकार-वर्णनं-(दोहा)

बिनु जाने ऐसो भयो, असंभवै पहिचानि।
जौ यौँ होइ तौ होइ यौँ, संभावना सु जानि ॥ २६ ॥

असंभवालंकार

छबिमै ह्वैहै कूबरी, पबि ह्वैहैं ये अंग।
ऊधौ हम जान्यो न यह, तुम ह्वैहौ हरिसंग ॥ २७ ॥

पुनः

हरि-इच्छा सबतैँ प्रबल, बिक्रम सकल अकाथ।
किन जान्यो लुटि जाहिँगी, अबला अर्जुन-साथ ॥ २८ ॥

अस्य तिलक

यामैँ अर्थांतरन्यास को संकर है। २८ अ ॥

संभावनालंकार-(दोहा)

कस्तूरी थपि नाभि बिधि बादि दई मृग मीच।
मैँ बिधि होउँ तौ उहि धरौँ, खलजीभन के बीच ॥ २९ ॥
हुतो तोहि दीबे हरिहि, जौ पै बिरह-सँताप।
कुच संकर दै बीच बलि, तौ क्यौँ कियो मिलाप ॥ ३० ॥

---

[२५] बैठी०–बैठो हरे (वेंक०)। मैं–पै (भारत, बेल०)। डोलाइ–दुलाइ (वेंक०); डुलाइ (भारत, बेल०)। हाइ०–झूठो भयो मिलिबो ब्रजनाथ को एरी गयो गिरि (भारत)। अकाथ०–अकारथ भो (बेल०)।

[२६] ऐसो–ऐसे (सर०)।

[२७] ह्वैहै–ह्वैकै (सर०)। पबि–परि (सर०)। ह्वैहौ–ह्वैहै (बेल०)।

[२८] किन०–को जानत (बेल०)। अबला–गोपी (वेंक०)।

[२९] नाभि–अंड (वेंक०)। होउँ–होतौ (वही)। बादि–वाहि (भारत)। दई–दियो (भारत, बेल०); दयो (वेंक०)। उहि–यह (सर०); उह (वेंक०); वहि (बेल०)।

[३०] पै–यह (सर०)।

यथा—(कवित्त)

आई मधुजामिनी न आए मधुसूदनजू,
राति न सिराति द्यौस बीतत बलाइ मैं।
करते भली जौ प्रान करते पयान आजु,
ऐसे मैं न आली और देखती उपाइ मैं।
कहा कहौं दास मेरी होती तबै निसा, जब
राहु ह्वैकै निसाकर ग्रसती बनाइ मैं।
हर ह्वैकै जारि डारि मनमथ हरिजू के
मन मथिबे कौं होती मनमथ जाइ मैं ॥ ३१ ॥

समुच्चयालंकार-वर्णनं—(दोहा)

एकै करता सिद्धि को, औरै होहिँ सहाइ।
बहुत होहिँ इक बार कै, द्वै अनमिल इक भाइ ॥ ३२ ॥
ऐसी भाँतिन्ह जानिये, समुच्चयालंकार।
मुख्य एक लच्छन यही, बहुत भए इक बार ॥ ३३ ॥

प्रथम, यथा—(कवित्त)

दारनि सितारनि के तारनि की तानैँ मंजु,
तैसियै मृदंगनि की धुनि धुधुकारती।
चमकैँ कनक-नग-भूषन बनकवारे,
तैसी घुँघरून की झनक मनु झारती।
दास गरबीली पग-ठौनि बंक भ्रुव-नौनि
तैसियै चितौनि सहसनि मोहि मारती।
बाँकी मृगनैनी की अचूक गति लैनि मृदु,
हीरा से हिये कौं टूक टूक करि डारती ॥ ३४ ॥

---

[३१] आए—आयो (सर०)। ह्वैकै०—ह्वै निसाकर निरासती (भारत); ह्वै निसाकर कौं ग्रसती—(बेल)। ग्रसती—ग्रासती (वेंक०)।
[३३] यही—वही (सर०)।
[३४] तानैँ—तोरे (वेंक०)। वारे—बने (वही)। झन०—मान झारती (वही); झन झारती (भारत); झनकारती (बेल०)। ठौनि—मंक (वेंक०)। लैनि—लेती (वेंक०); लीन (बेल०)। से—सौं (वेंक०)।

दूजो, यथा—(दोहा)

धन जोबन बल अज्ञता, मोहमूल एक एक।
दास मिलैं चार्यौ तहाँ, पैये कहाँ बिबेक ॥ ३५ ॥
नातो नीचो गर परो, कुसँगनिवास कुभौन।
बंध्या तिय को कटु बचन, दुखद घाय को लौन ॥ ३६ ॥
पूत सपूत सुलच्छनो, तनु अरोग धन धंध।
स्वामि-कृपा संगति सुमति, सोनो और सुगंध ॥ ३७ ॥

अस्य तिलक

इहाँ दृष्टांतालंकार अपरांग है सोनो सुगंध तेँ। ३७ अ ॥

(दोहा)

संसय सकल चलाइकै, चली मिलन पिय बाम।
अरुन बदन करि आपनो, सौति-बदन करि स्याम ॥ ३८ ॥

अथ अन्योन्यालंकार-वर्णनं

होत परस्पर जुगल सोँ, सो अन्योन्य सुछंद।
लसति चंद सोँ जामिनी, जामिनि ही सोँ चंद ॥ ३९ ॥

यथा

मोल तोल के ठीक बनि, इन किय साँझ सकाम।
वह निसि बढ़वति लेत गथ, कहि कहि लालहि स्याम ॥ ४० ॥
हर की औ' हरदास की, दास परस्पर रीति।
देत वै उन्हैँ वै उन्हैँ, कनक बिभूति सप्रीति ॥ ४१ ॥
ज्योँ ज्योँ तनु धारा किये, जल प्यावति रिझवारि।
पिये जात त्योँ त्योँ पथिक, बिरली बोख सँवारि ॥ ४२ ॥

---

[३५] अज्ञता—बिग्यता (सर०)।
[३६] को—की (सर०); के (भारत, बेल०)।
[३७] सुलच्छनो—सुलच्छनी (बेल०)।
[३६अ] तेँ— × (भारत, वेंक०)।
[४०] बनि—निज (बेल०)। वह—कहँ (वेंक०)।
[४१] वै०—वै इन्हैँ (बेल०)।
[४२] बिरली०—बिरलो बेष (भारत, बेल०); बिरलो बोल (वेंक०)।

यथा–(कवित्त)

बातैं स्यामा स्याम की न वैसी अब आली, स्यामा
स्याम तकि भाजै स्याम स्यामा सौं तकी रहै।
अब तौ लखोई करै स्यामा को बदन स्याम,
स्याम के बदन लागी स्यामा की टकी रहै।
दास अब स्यामा के सुभाय मद छाके स्याम,
स्यामा स्याम सोभनि के आसव छकी रहै।
स्यामा के बिलोचन के हैं री स्याम तारे अरु,
स्यामा स्याम-लोचन की लोहित लकीर है ॥ ४३ ॥

अथ विकल्पालंकार–(दोहा)

है बिकल्प यह कै वहै, यह निहचै जहँ राजु।
सत्रु-सीस कै सस्त्र निज, भूमि गिराऊँ आजु ॥ ४४ ॥

यथा–(सवैया)

जाइ उसासनि के सँग छूटि कि चंचला के चय लूटि लै जाहीँ।
चातक पातक-पद्मिन देहिँ कि लेहिँ घने घन जे घहराहीँ।
दासजू कौन कुतर्क कियो करै जीव है एक ही दूसरो नाहीँ।
पौन लै अंतक-भौन सिधारो कि मारौ मनोभव लै सिर माहीँ ॥ ४५ ॥

अथ सहोक्ति, विनोक्ति, प्रतिषेध लक्षणं–(दोहा)

कछु कछु संग सहोक्ति कछु, बिन सुभ असुभ बिनोक्ति।
यह नहिँ यह परतच्छहीँ, कहिये प्रतिषेधोक्ति ॥ ४६ ॥

सहोक्ति, यथा–(सवैया)

जोग बियोग खरो हम पै उहि क्रूर अक्रूर के साथहि आए।
भूख औ' प्यास स्यौँ भोग बिलास लै दास वै आपने संग सिधाए।

[४३] आली०–आली स्याम स्यामा (भारत, वेंक०, बेल०)। भाजै–भागै (वेंक०)। स्याम०–स्यामा स्याम सौं जकी (भारत, वेंक०, बेल०)। के–की (सर०)।

[४४] निहचै–निस्चय (भारत, वेंक०, बेल०)।

[४५] पातक–यातक (वेंक०)। पद्मिन०–लैंहि मनो कि घनाघन जौन घने (बेल०)। सिधारो–सिधारै (भारत, बेल०)। मारौ–मारै (वही)।

[४६] कहिये–कहियत (सर०)।

चीठी के संग बसीठी लै आइकै ऊधौ वही हमैं आजु बताए।
कान्ह के संग सयान तुम्हौ निजु कूबरी-कूबर बीच बिकाए ॥४७॥
फूलनि के सँग फूलिहै रोम परागनि के सँग लाज उड़ाइहै।
पल्लव-पुंज के संग अली हियरो अनुराग के रंग रँगाइहै।
आयो बसंत न कंत हितू अब बीर बरौंगी जो धीर धराइहै।
साथ तरूनि के पातनि के तरुनीनि के कोप-निपात ह्वै जाइहै ॥४८॥

विनोक्ति, यथा

सूधे सुधासने बोल सुहावने सूधो निहारिबो नैन सुधोहैं।
सुद्ध सरोज बँधे से उरोज हैं सूधे सुधानिधि सो मुख जोहैं।
दासजू सूधे सुभाय सौं लीन सुधाई भरे सिगरे अँग सोहैं।
भावती चित्त भ्रमावती मेरो कहाँ तें भईं ये भई भईं भौंहैं ॥४९॥

यथा-(कबित्त)

देस बिनु भूपति दिनेस बिनु पंकज,
फनेस बिनु मनि औ' निसेस बिनु जामिनी।
दीप बिनु नेह औ' सुगेह बिनु संपति,
अदेह बिनु देह घनमेह बिनु दामिनी।
कबिता सुछंद बिनु मीन जलबृंद बिनु,
मालती मलिंद बिनु होत छबि-छामिनी।
दास भगवंत बिनु संत अति ब्याकुल,
बसंत बिनु लतिका सुकंत बिनु कामिनी ॥५०॥
नेगी बिनु लोभ को पटैत बिनु छोभ को,
तपस्वी बिनु सोभ को सतायो ठहराइये।
गेह बिनु पंक को सनेह बिनु संक को,
सदा बिनु कलंक को सुबंस सुखदाइये।

---

[४७] स्यों-सौं (सर्वत्र)। वही०-हमै वह (भारत, बेल०); हमैं वहै (वेंक०)। तुम्हौ०-सखा तुम (भारत, वेंक०); तुम्हैं निज (बेल०)।
[४८] रंग-हेत (सर०)। कोप-प्रान (भारत)।
[४९] भरे-भरो (सर०)। भईं०-भईं सुधाई की (बेल०)।
[५०] नेह-गेह (भारत)। सुगेह-सनेह (वही)। अदेह-सुदेह (बेल०)। देह-देही (वही)। होत-होती (वेंक०, बेल०)। 'सर०' में दूसरा चरण तीसरा है।

बिद्या बिनु दंभसूत आलसबिहीन दूत,
बिना कुब्यसन पूत मन मध्य ल्याइये।
लोभ बिनु जपजोग दास देह बिनु रोग,
सोग बिनु भोग बड़े भागनि तेँ पाइये ॥५१॥

प्रतिषेध, यथा

गैयन्ह चरैबो नहीँ गिरि को उठैबो नहीँ,
पावक अचैबो है न पाहन को तारिबो।
धनुष चढ़ैबो नहीँ बसन बढ़ैबो नहीँ,
नाग नथि लैबो है न गनिका उधारिबो।
मधु मुर मारिबो बकासुर बिदारिबो न,
बारन उबारिबो न मन मैँ बिचारिबो।
ह्याँ तेँ ह्वै न जैहौ पेस सुनौ राम भुवनेस,
सबतेँ कठिन बेस मेरो क्लेस टारिबो ॥ ५२ ॥

अथ विधि-अलंकार-वर्णनं–(दोहा)

अलंकार बिधि सिद्धि कौँ फेरि कीजिये सिद्धि।
भूपति है भूपति वही, जाके नीति-समृद्धि ॥ ५३ ॥
धरै काँच सिर औ' करै, नग को पगनि बसेर।
काँच काँच ही नग नगै, मोल तोल की बेर ॥ ५४ ॥

यथा–(सवैया)

रे मन कान्ह मैँ लीन जौ होहि तौ तोहूँ कौँ मैँ मन मैँ गनि राखौँ।
जीव जौ हाथ करै बृजनाथ तौ तोहि मैँ जीवन मैँ अभिलाखौँ।
अंग गुपाल के रंग रँगौ तौ हौँ अंग लहे को महा फल चाखौँ।
दासजू धाम ह्वै स्याम को राखै तौ तारिका तोहि मैँ तारिका भाखौँ ॥५५॥

---

[५१] नेगी–जोगी (सर०)। सोभ–छोभ (वही)।
[५२] मुर–सुर (बेल०)। उबारिबो–उधारिबो (भारत, बेल०)। ह्वै०–
तो न जैहै (भारत); ह्वै न जैबो (वेंक०); तो न जैहौ (बेल०)।
[५३] वही–वहो (सर०); यही (भारत)।
[५४] को–के (सर०)। ही–है (बेल०)।
[५५] रँगौ–रँगै (भारत, वेंक०, बेल०)। तौ हौ–तहूँ (बेल०)।

अथ काव्यार्थापत्ति-अलंकार-लक्षणं-(दोहा)

यहै भयो तौ यह कहा, यहि बिधि जहाँ बखान।
कहत काव्य पद सहित तिहि, अर्थापत्ति सुजान ॥ ५६ ॥
बंधुजीव कौं दुखद है, अरुन अधर तुव बाल।
दास देत यह क्यौं डरै, परजीवन दुखजाल ॥ ५७ ॥
मैं वारौं जा बदन पर, कोटि कोटि सत इंदु।
तापर ये वारैं कहा, *दास* रुपैया-बूंदु ॥ ५८ ॥

यथा-(सवैया)

चंदकला सो कहायो कहूँ तें नखच्छत एक लग्यो उर तेरे।
सौतिन को मुख पूरनचंद सो जोतिबिहीन भयो जिहि नेरे।
कातिकहू को कलानिधि पूरो कहा कहि सुंदरि तो मुख हेरे।
दास यहै अनुमानिकै अंग सराहिबो छोड़ि दियो मन मेरे ॥ ५९ ॥

इति श्रीसकलकलाधरकलाधरवंशावतंसश्रीमन्महाराजकुमार-
श्रीबाबूहिंदूपतिविरचिते काव्यनिर्णये समालंकारादिवर्णनं
नाम पंचदशमोल्लासः ॥ १५ ॥

१६

अथ सूक्ष्मालंकार-वर्णनं-(दोहा)

सूछम पिहितो जुक्ति गनि, गूढ़ोत्तर गूढ़ोक्ति।
मिथ्याध्यवसायो ललित, बिब्रतोक्ति ब्याजोक्ति ॥१॥
परिकर परिकर-अंकुरो, इग्यारह अवरेखि।
धुनि के भेदनि मैं इन्हैं, बस्तुब्यंजकै लेखि ॥२॥

---

[५६] जहाँ—कही (भारत)।
[५८] इंदु—इंद (भारत); चंद (बेल०)।
[५९] कहायो—कहावै (सर०)। एक—पंक (बेल०)। छोड़ि—राखि (वेंक०)।
[१] मिथ्या०—मिथ्याध्यवसित ललित अरु (बेल०)।

अथ सूक्ष्मालंकार–(दोहा)

चतुर चतुर बातैं करैं, संज्ञा कछु ठहराइ।
तेहि सूछम भूषन कहैं, जे प्रबीन कबिराइ ॥३॥

यथा–(कबित्त)

आजु चंद्रभागा वहि चंद्रबदनी पै आली,
नृत्तित करत आई मोर के परन कौं।
वह धौं समुझि कहा बेनी गहि रही तब,
वाहू दरसायो री बँधूक के दरन कौं।
दास यहि परस्यो कहा धौं उरजात, वहि
परस्यो कहा धौं दोऊ आपने करन कौं।
नागरी गुनागरी चलत भई ताही छन,
गागरी लै रीती जमुनाजल भरन कौं ॥४॥

अथ पिहितालंकार-लक्षणं–(दोहा)

जहाँ छपी पर-बात कौं, जानि जनावै कोइ।
तहाँ पिहित भूषन कहैं, छपे पहेली सोइ ॥५॥

लाल-भाल-रँग लाल लखि बाल न बोली बोल।
लज्जित कियो ता दृगनि कौं, कै सामुहैं कपोल ॥६॥

परम पियासी पदुमदृगि, प्रबिसी आतुर तीर।
अंजलि भरि क्यौं तजि दियो, पियो न गंगानीर ॥७॥

केलि फैलिहूँ दासजू, मनिमय-मंदिर दार।
बिन 'पराध क्यौं रमन कौं, कीन्हौं चरनप्रहार ॥८॥

---

[३] करैं–जहाँ (सर०)।
[४] नृत्तिन–नृत्यत (भारत, वेंक०); निरति (बेल)। करत–करन (वेंक०)। आई–आए (बेल)। वह–यह (भारत, वेंक०) बँधूक–बँधूप (सर०, वेंक०)। यहि–वह (बेल०)। रीती–तीर (बेल०)।
[५] छपे–छपी (भारत, बेल०)।
[८] फैलि०–कला मैं (भारत)।

अथ युक्ति-अलंकार-लक्षणं

क्रियाचातुरी सौं जहाँ, करै बात को गोप।
ताहि जुक्ति भूषन कहैं, जिन्हैं काव्य की चोप ॥९॥

यथा- (सवैया)

होरी की रैनि बिताइ कहूँ प्रिय प्रीतम भोरहि आवत जोयो।
नेकु न बाल जनाइ भई जऊ कोप को बीज गयो हिय बोयो।
दासजू दै दै गुलाल की मारनि अंकुरिबो उहि बीज को खोयो।
भावते भाल को जावक, ओठ को अंजन, ही को नखच्छत गोयो ॥१०॥

अथ गूढ़ोत्तर-लक्षणं- (दोहा)

अभिप्राय तैं सहित जौ, ऊतर कोऊ देइ।
ताहि गूढ़उत्तर कहत, जानि सुमति जन लेइ ॥११॥

यथा- (सवैया)

नीर के कारन आई अकेलियै भीर परैं सँग कौन कौं लीजै।
ह्याँऊ न कोऊ नयो दिवसोऊ अकेले उठाए घड़ो पट भीजै।
दास इतै लखुआन्ह को ल्याइ भलो जल छाँह को प्याइजै पीजै।
एतो निहोरो हमारो करौ घट ऊपर नेकु घटो धरि दीजै ॥१२॥

अथ गूढोक्ति-लक्षणं- (दोहा)

अभिप्राय-जुत जहँ कहिय, काहू सौं कछु बात।
तहँ गूढ़ोक्ति बखानहीं, कबि पंडित अवदात ॥१३॥

---

[९] करै–करत (सर०)।
[१०] भावते–भावतो (वेंक०)।
[११] तैं–के (बेल०)। ऊतर–उत्तर (वेंक०, बेल०)। कहत–कहै। (सर०)।
[१२] नयो०–गयो० (भारत); न द्यौस कछू है (बेल०)। लखुआन्ह–लिखवानु (भारत); लिखवाहु (वेंक०); लखुवाहु (बेल०)। छाँह०–न्याइबो (वेंक०)। प्याइजै–प्याइय (बेल०)। करौ–लला (भारत)।

यथा-(सवैया)

*दास*जू न्यौते गई कछु द्यौस कौं कालिह तें ह्याँ न परोसिन्यौ आवति ।
हौं ही अकेली कहाँ लौं रहौं इन अंधी-अँधानि को ज्यौं बहरावति ।
प्रीतमु छाइ रह्यो परदेस अँदेस इहै जु सँदेस न पावति ।
पंडित हौ गुनमंडित हौ महिदेव तुम्हैं सगुनौतियौ आवति ॥१४॥

अथ मिथ्याध्यवसिति-लक्षणं-(दोहा)

एक झुठाई-सिद्धि कौं, झूठो बरनै और ।
सो मिथ्याध्यवसाय है, भूषन कबिसिरमौर ॥१५॥

यथा-(सवैया)

सेज अकास के फूलनि की सजि सोवती दीन्हे प्रकास-कवारे ।
चौकी मैं बाँझ के बेटे रहैं बहु पाँय पलोटत भूमि के तारे ।
नीर मैं *दास* बिहार करौं अहि-रोम-दुसालो नयो सिर डारे ।
कौन कहै तुम झूठी कहौ मैं सदा बसती उर लाल तिहारे ॥१६॥

अथ ललितालंकार-लक्षणं-(दोहा)

ललित कह्यो कछु चाहिये, कहिय तासु प्रतिबिंब ।
दीप बारि देख्यो चहै, कूर जु सूरजबिंब ॥१७॥

यथा-(सवैया)

कंट कटीलिका बागनि मैं बयो *दास* गुलाबनि दूरि कै दीजै ।
आजु तें सेज अँगारन की करौ फूलनि कौं दुखदानि गनीजै ।
ऊधो अहीरिनि के गुर हैं इनको सिर आयसु मानिहीं लीजै ।
गुंज के गंज गहौ तजि लालनि डारि सुधा बिष संग्रह कीजै ॥१८॥

---

[१४] कछु०—घर की सब (बेल०) । ज्यौ—जी (वही) ।

[१५] मिथ्या०-मिथ्याध्यवसित कहैं (बेल०) ।

[१६] दीन्हे—दीन्हि (भारत) ; दीन्ही (वेंक०) ; दीन्ह (बेल०) । चौकी—चौक (भारत) । बेटे—पूत (भारत, बेल०) । पलोटत—पलोटनो (सर०) ; पलोटती (वेंक०) । नीर—सीरे (वेंक०) । बिहार—बिहारौ (सर०) । दुसालो०—दुसालन येौं (भारत, बेल०) ।

[१७] कछु—जो (बेल०) ।

[१८] बयो—बओ (भारत) ; बबो (बेल०) ।

बोलनि मैं किल कोकिल के कुल की कलई कब धौं उघरैगी।
कौन घरी इहिँ भौन जरे उजरे कौं बसंत-प्रभानि भरैगी।
हाइ कबै यहि क्रूर कलंकी निसाकर के मुख छार परैगी।
प्रानप्रिया इन नैननि कौं किहि द्यौस कृतारथरूप करैगी ॥१६॥

अथ विवृतोक्ति–(दोहा)

जहाँ अर्थ गूढ़ोक्ति को, कोऊ करै प्रकास।
बिव्रतोक्ति तासौं कहैं, सकल सुकबिजन दास ॥२०॥

यथा–(सवैया)

नैन नचौहैं हँसौहैं कपोल अनंद सौं अंगनि अंग अमात है।
दासजू स्वेदनि सोभ जगी परै प्रेमपगी सी डगी थहरात है।
मोहिँ भुलावै अटारी चढ़ी कहि कारी घटा बगपाँति सोहात है।
कारी घटा बगपाँति लखैं इहि भाँति भए कहि कौन के गात है ॥२१॥

यथा–(दोहा)

कियो सरस तन को रही तनको रही न ओट।
लखि सारी कुच मैं लसी, कुच मैं लसी खरोट ॥२२॥

यथा–(कवित्त)

द्वार खरी नवला अनूपम निरखि,
उतरत भो पथिक तहीँ तन मन हारिकै।
चातुरी सौं कह्यो इत रह्यो हम चाहैं नहीँ,
जायो जात उन्नत पयोधर निहारिकै।
दास तिन ऊतरु दियो है यौं बचन भाखि,
राखिकै सनेह सखी मति कौं निवारिकै।
ह्याँ तौ है पषान सब मसक न दैहैं कल,
रहिये पथिक सुभ आश्रम बिचारिकै ॥२३॥

---

[१६] किल–कल (बेल०)। यहि–उहि (सर०); यह (भारत, वेंक०, बेल०)। निसाकर–निसाचर (वेंक०)।
[२१] डगी०–ठगी ठहरात (भारत, बेल०)।
[२२] कियो–किये (भारत, बेल०)।
[२३] जात–जाइ (सर०)। आश्रम-आसन (भारत, वेंक०)।

अथ व्याजोक्ति अलंकार–(दोहा)

बचनचातुरी सोँ जहाँ, कीजै काज दुराउ।
सो भूषन ब्याजोक्ति है, सुनौ सुमतिसमुदाउ ॥२४॥

यथा–(सवैया)

अबहीँ की है बात हौँ न्हात हुती अचकाँ गहिरे पग जात भयो।
गहि ग्राह अथाह को लैही चल्यो मनमोहन दूरिही तेँ चितयो।
द्रुत दौरिकै पौरिकै *दास* बरोरिकै छोरिकै मोहिँ जियाइ लियो।
इन्हैँ भेटि हौँ भेटती तोहि अली भयो आजु तौ मो अवतार नयो ॥२५॥

यथा–(कवित्त)

तेरी खीझिबे की रुचि रीझि मनमोहन की,
यातेँ वहै स्वाँग सजि सजि नित आवते।
आपुही तेँ कुंकुम की छाप नखछत गात,
अंजन अधर भाल जावक लगावते।
ज्योँ ज्योँ तूँ अयानी अनखानी दरसावै त्योँ त्योँ,
स्याम कृत आपने लहे को सुख पावते।
उनहीँ खिसावै *दास* हँसि जौ सुनावै, तुम
योँहूँ मनभावते हमारे मन भावते ॥२६॥

अथ परिकर-परिकरांकुर-लक्षणं–(दोहा)

परिकर परिकरअंकुरो, भूषन जुगल सुबेष।
साभिप्राय बिसेषनो, साभिप्राय बिसेष ॥ २७ ॥

परिकरालंकार-लक्षणं–(दोहा)

बर्ननीय के साज को, नाम बिसेषन जानि।
सो है साभिप्राय तौ, परिकर भूषन मानि ॥ २८ ॥

---

[२५] अचकाँ–अचकौँ (भारत); भ्रमते (बेल०)। बरोरि-मरोरि (वही)। भेँटि०–भेँटिकै भेँटिहौँ (भारत, बेल०); भेटती–भेटिहौँ (वेंक०)।

[२६] तूँ–तैँ (भारत, बेल०)। उनहीँ०–उन्हैँ खिसिआवै (बेल०)। हँसि-हास (वही)। तुम–तुम्हैँ (वही)। योँहूँ–वाँहू (भारत)। वाहू (बेल०)।

यथा–(सवैया)

भाल मैं जाके कलानिधि है वह साहिब ताप हमारी हरैगो।
अंग मैं जाके बिभूति भरी वहै भौन मैं संपति भूरि भरैगो।
घातक है जु मनोभव को मम पातक वाही के जारे जरैगो।
दासजू सीस पै गंग धरे रहै ताकी कृपा कहौ को न तरैगो ॥ २९ ॥

परिकरांकुर-वर्णनं–(दोहा)

बर्ननीय जु बिसेष है, सोई साभिप्राय।
परिकरअंकुर कहत हैं, तिहि प्रबीन कबिराय ॥ ३० ॥

यथा–(सवैया)

भाल मैं बाम के ह्वैकै बली बिधो बाँकी भ्रुवैं बरुनीन मैं आइकै।
ह्वैकै अचेत कपोलनि छ्वै बिछल्यो अधरा को पियो रस धाइकै।
दासजू हासछटा मन चौंकि छनेक लौं ठोढ़ी के बीच बिकाइकै।
जाइ उरोज सिरै चढ़ि कूद्यो गयो कढ़ि सो त्रिबली मैं नहाइकै ॥३१॥

अस्य तिलक

यामैं लुप्तोपमा को समप्रधान संकर है। ३१ अ ॥

यथा–(दोहा)

बर तरिबर तुअ जनम भो, सफल बीसहूँ बीस।
हमै न या तियबाग को, कियो असोकौ ईस ॥ ३२ ॥

अस्य तिलक

बरबृच्छ कौं इस्त्री भाँवरि देति है असोक कौं लात मारति है तब वह फूलत है तातैं बर्ननीय साभिप्राय है परिकरांकुर सुद्ध भयो। ३२ अ ॥

इति श्रीसकलकलाधरकलाधरवंशावतंसश्रीमन्महाराजकुमार-
श्रीबाबूहिंदूपतिविरचिते काव्यनिर्णये सूक्ष्मालंका-
रादिवर्णनं नाम षोडशमोल्लास: ॥ १६ ॥

---

[२९] हमारी–हमारो (भारत, बेल०)। मम–मन (भारत, वेंक०, बेल०)। जू–जो (बेल०)। कहौ–कहु (भारत, बेल०)।

[३१] बिछल्यो–बिछुरे (बेल०)। को–मैं (सर०)। छनेक–घरीक (बेल०)। कढ़ि–कटि (भारत, वेंक० बेल०)।

[३२] तिय–बिय (सर०)।

१७

अथ स्वभावोक्ति-अलंकारादि-वर्णनं—(दोहा)

सुभावोक्ति हेतुहि सहित, जे बहु भाँति प्रमान।
काव्यलिंग सु निरुक्ति गनि, अरु लोकोक्ति सुजान॥ १॥
पुनि छेकोक्ति बिचारिकै, प्रत्यनीक समतूल।
परिसंख्या प्रस्नोत्तरो, दस बाचक पदमूल॥ २॥

स्वभावोक्ति-लक्षणं

सत्य सत्य बरनन जहाँ, सुभावोक्ति सो जानु।
ता संगी पहिचानिये, बहुबिधि हेतु प्रमानु॥ ३॥
जाको जैसो रूप गुन, बरनत ताही साज।
तासोँ जाति-सुभाव सब कहि बरनत कबिराज॥ ४॥

जाति-वर्णनं, यथा—(सवैया)

लोचन लाल सुधाधर बाल हुतासन-ज्वाल सुभाल भरे हैँ।
मुंड की माल गयंद की खाल हलाहल काल कराल गरे हैँ।
हाथ कपाल त्रिसूल जु हाल भुजानि मैँ ब्याल बिसाल जरे हैँ।
दीनदयाल अधीन को पाल अधंग मैँ बाल रसाल धरे हैँ॥ ५॥

स्वभाव-वर्णनं—(कवित्त)

बिमल अँगोछि पोँछि भूषन सुधारि सिर,
आँगुरिन फोरि त्रिन तोरि तोरि डारिती।
उर नखछद रद-छदनि मैँ रदछद,
पेखि पेखि प्यारे कौँ झुकति झझकारती।

---

[१] हेतुहि-है तहि (सर०)। जे-जो (वही)। सु०-निरुक्त (वही); निरउक्ति (बेल०)।
[४] ताही-तेही (वेंक०)। सब०-कहि बरनत सब (बेल०)।
[५] भाल-भाव (बेल०)। काल-काग (सर०)। अधंग-अर्धांग (वही); अर्धंग (वेंक०)।

भई अनखौहीँ अवलोकति लली कौँ फेरि,
अंगन सँवारती दिठौना दै निहारती।
गात की गोराई पर सहज भोराई पर,
सारी सुंदराई पर राई लोन वारती ॥ ६ ॥

अथ हेतु-अलंकार-लच्छणं-(दोहा)

या कारन को है यही, कारज यह कहि देतु।
कारज कारन एक ही कहेँ जानियत हेतु ॥ ७ ॥

यथा-(कवित्त)

सुधि गई सुधि की न चेत रह्यो चेत ही मैँ,
लाज तजि दीन्ही लाज साज सब गेह को।
गारी भई भूषन भए हैँ उपहास बास,
दास कहै देह मैँ न तेह रह्यो तेह को।
सुख की कहानी हमैँ दुख की निसानी भई,
झार भए अनिल अनल भए मेह को।
कुल के धरम ये हैँ धावरे परम ये हैँ,
साँवरे करम सब रावरे सनेह को ॥ ८ ॥

अस्य तिलक

इहाँ लच्छना सक्ति तेँ सिगरे कबित्त मैँ अतिसयोक्ति ब्यंगि है, 'ये करम रावरे के नेह को' एती बात हेतालंकार है। ८ अ ॥

कारज कारन एक, यथा-(सवैया)

आजु सयान इहै सजनी न कहूँ चलिबो न कहूँ की चलैबो।
दास ह्याँ काहू के नाम को लीबो है आपनी बात को पेच बढ़ैबो।

[६] अँगोछि-अगौछे (सर०)। फोरि-कोरि (भारत)। झुकति-झखति (भारत); हुकति (वेंक०); झकत (बेल०)। लली-लला (भारत, बेल०)।

[८] भई-भए (बेल०)। भए-भयो (भारत, बेल०)। ये हैँ-भए (भारत, वेंक०, बेल०)। ये हैँ-यहै (बेल०)। के०-सनेह (भारत, बेल०)।

[८अ] के नेह-सनेह (भारत)। को-के हैँ (वही)। एती-इतनी (भारत, वेंक०)। है-X (भारत)।

होत इहाँ तौ अरी तुअ बैरी गुपाल को आलिन ओर चितैबो।
अंतर-प्रेम-प्रकासक है यह तेराइ लाल को देखि लजैबो॥ ९॥

अथ प्रमाणालंकार-वर्णनं—(दोहा)

कहुँ प्रतच्छ अनुमान कहुँ, कहुँ उपमान दिखाइ।
कहूँ बड़न की बात लै, आत्मतुष्टि कहुँ पाइ॥ १०॥
अनुपलब्धि संभव कहूँ, कहुँ लहि अर्थापत्य।
कबि प्रमान भूषन कहैं, बात जु बरनै सत्य॥ ११॥

प्रत्यक्ष-प्रमाण

बालरूप जोबनवती, भव्य तरुन को संग।
दीन्हो दई सुतंत्र कै, सती होइ केहि ढंग॥ १२॥

अनुमान-प्रमाण

यह पावस-तम साँझ नहिँ, कहा दुचितमति भूलि।
कोक असोक बिलोकिये, रहे कोकनद फूलि॥ १३॥

उपमान-प्रमाण

सहस घटनि मैँ लखि परै ज्यौँ एकै रजनीस।
त्यौँ घट घट मैँ दास है, प्रतिबिंबित जगदीस॥ १४॥

शब्द-प्रमाण

श्रुति पुरान की उक्ति कौँ, लोकउक्ति दै चित्त।
बाच्य प्रमान जु मानिये, सब्द प्रमान सु मित्त॥ १५॥

श्रुतिपुराणोक्ति-प्रमाण-वर्णनं—(सोरठा)

तुम जु हरी पर-बाल, तातैं हम यहि हाल मैँ।
नाथ बिदित सब काल, जो हन्यात सो हन्यते॥ १६॥

---

[९] की—को (भारत, बेल०)। अरी०—अरीति अबैरी (भारत, बेल०)।
की—के (सर०); को (बेल०)।
[१०] की बात—के वाक्य (भारत); की वाक्य (वेंक०); को वाक्य (बेल०)।
[१२] दीन्हो०—दीन्ही दई सुतंत्रता (भारत)।
[१३] रहे—रहै (भारत, वेंक०, बेल०)।
[१४] सहस—सहज (सर०)।
[१६] हन्यात—हन्ता (सर०)।

लोकोक्ति-प्रमाण-वर्णन—(दोहा)

कान्ह चलौ किन एक दिन, जहँ परपंची पाँच ।
दीज्य कहँ सो दीजिये, कहा साँच को आँच ॥ १७ ॥

आत्मतुष्टि-प्रमाण

अपने अंग सुभाव को, दिढ़ बिस्वास जहाँहिं ।
आतमतुष्टि प्रमान कबि कोबिद कहत तहाँहिं ॥ १८ ॥
मोहिं भरोसो जाउँगी, स्याम किसोरहिं ब्याहि ।
आली मो अँखियाँ नतरु, इन्हैं न रहतीं चाहि ॥ १९ ॥

अनुपलब्धि-प्रमाण, यथा

यौं न कहौ कटि नाहिं तौ कुच हैं किहि आधार ।
परम इंद्रजाली मदन-बिधि को चरित अपार ॥२०॥

संभव-प्रमाण, यथा

होती बिकल बिछोह की तनक भनक सुनि कान ।
मास-आस दै जात हौ, याहि गनौ बिन प्रान ॥२१॥
उपजहिंगे ह्वैहैं अजौं, हिंदूपति से दानि ।
कहिय काल निरअवधि लखि, बड़ी बसुमती जानि ॥२२॥

अर्थापत्ति-प्रमाण

तिय-कटि नाहिंन जे कहैं, तिन्हैं न मति की खोज ।
क्यौं रहते आधार बिनु, गिरि से जुगल उरोज ॥२३॥
इतो पराक्रम करि गयो, जाको दूत निसंक ।
कंत कहौ दुस्तर कहा, ताहि तोरिबो लंक ॥२४॥

---

[१७] परपंची—परपंचो (भारत, बेल०) । दीज्य—दिब्य (सर०); देहु (भारत, बेल०) । सो—तो (वही) । दीजिये—लीजियो (वही) ।
[१८] कहत—कहहिं (भारत, वेंक०) ।
[१९] इन्हैं—इती (भारत, बेल०) ।
[२०] न—जु (भारत, बेल०) ।
[२२] अजौं—अबौं (वेंक०) । निर०—निरवधि अलख (भारत, बेल०) ; निरवधि अलखि (वेंक०) ।

अथ काव्यलिंग-अलंकार-वर्णनं—(दोहा)

जहँ सुभाव के हेतु को, कै प्रमान को कोइ।
करै समर्थन जुक्तिबल, काव्यलिंग है सोइ ॥२५॥
कहुँ वाक्यार्थ समर्थिये, कहुँ सब्दार्थ सुजान।
काव्यलिंग कबिजुक्ति गनि, वहै निरुक्ति न आन ॥२६॥

स्वभावोक्ति-समर्थन, यथा—(सवैया)

ताल तमासे ह्याँ बाल के आवत कौतुकजाल सदा सरसात हैँ।
सोर चकोरन की चहुँ ओर बिलोकत बीच हियो हरषात हैँ।
दासजू आनन-चंद-प्रकास तेँ फूले सरोज कली ह्वै ह्वै जात हैँ।
ठौरहि ठौर बँधे अरबिंद मलिंद के बृंद घने भननात हैँ ॥२७॥

(दोहा)

हिये रावरे साँवरे, यातेँ लगति न बाम।
गुंजमाल लौँ अर्धतन, हौँहूँ होउँ न स्याम ॥२८॥

हेत-समर्थन—(कबित्त)

इनही की छबि है तिहारे छूटे बारन मैँ,
मेरो सिर छ्वै छवै मोरपच्छनि बताई है।
आनन-प्रभा कोँ अरबिंद जल पैठो दास,
बानी बर देती किल कोकिल दोहाई है।
कुच की अचलता कोँ संभु सिर लीन्हैँ गंग,
रोमावलि-हेतु मधुपाली मधु ल्याई है।
ह्वै ह्वै सौँह-बादी ह्याँ फिरादी हैँ चपलनैनी,
जिन जिन की तूँ यह चारुता चोराई है ॥२९॥

---

[२५] को कोइ—जो कोइ (भारत, बेल०)। बल—सौँ (भारत, वेंक०)।

[२७] ह्याँ—कै (बेल०)। बाल०—आवत बाल को (वही)। की—को (भारत, बेल०)। बीच०—दास० (सर०); ही हियरो (बेल०)। फूले—फूलो (भारत, बेल०)। है०—होइ (वही)।

[२८] बाम—धाम (सर०)।

[२९] इनही०—छबि है इन्ही की ये (भारत)। छुटे—खुले (भारत, बेल०)। किल—कल (बेल०)। लीन्हैँ-लीन्हो (भारत, बेल०)। ह्वै०-ह्वै हैँ

प्रत्यक्ष-प्रमाण-समर्थन–(सवैया)

सोभा सुकेसी की केसनि मैं है तिलोतमा की तिल-बीच निसानी ।
उर्बसी ही मैं बसी मुख की उनहारि सो इंदिरा मैं पहिचानी ।
जानु कौं रंभा सुजान सु जानिहै दासजू बानी मैं बानी समानी ।
एती छबीलिनि सौं छबि छीनिकै एक रची बिधि राधिका रानी ॥३०॥

निरुक्ति-लक्षणं–(दोहा)

है निरुक्ति जहँ नाम की अर्थकल्पना आन ।
दोषाकर ससि कौं कहैं, याहीं दोष सु जान ॥३१॥
बिरही नर-नारीन कौं, यह ऋतु चाइ चबाइ ।
दास कहै याकौं सरद, याही अर्थ सुभाइ ॥३२॥

(सवैया)

तौ कुलकानिनि की परबीनता मीन की भाँति ठगी रहती है ।
*दास*जू याहि तैं हंसहु के हिय मैं कछु संक पगी रहती है ।
है रस मैं गुन औ' गुन मैं रस ह्याँ यह रीति जगी रहती है ।
बासरहू निसि मानस मैं बनमाली की बंसी लगी रहती है ॥३३॥

लोकोक्ति, छेकोक्ति-लक्षणं–(दोहा)

सब्द जु कहिये लोकगति, सो लोकोक्ति प्रमान ।
ताही छेकोक्त्यौ कहैं, होइ लिये उपखान ॥३४॥

लोकोक्ति, यथा

बीस बिसैं दस बीस मैं, आवहिंगे बलबीर ।
नैन मूँदि नव दिन सहै, नागरि अब दुख-भीर ॥३५॥

(भारत, बेल०) । ह्याँ–है (भारत, वेंक०); ह्वै (बेल०) । है–ह्याँ (भारत, वेंक०, बेल०) । चपल–कमल (भारत, बेल०) । यह–चारु (भारत) ।

[३०] है–दै (भारत) । उनहारि–अनुहारि (बेल०) ।

[३१] की–को (बेल०) ।

[३२] चाइ–जात (बेल०) ।

[३३] मानस–बानस (सर०) ।

[३४] ताही०–ताहि कहत छेकोक्ति सो (बेल०) ।

छेकोक्ति, यथा–(सवैया)

मो मन बाल हिरानो हो ताको किते दिन तेँ मैँ किती करी दोर है ।
सो ठहर्‌यो तुअ ठोढ़ी की गाड़ मैँ देहि अजौँ तौ बड़ोई निहोर है ।
दास प्रतच्छ भई पनहा अलकै तुअ तारनि दैकै अँकोर है ।
होत दुराए कहा अब तौ लखि गो दिलचोर तिलास न चोर है ॥३६॥

अथ प्रत्यनीकालंकार-लक्षणं–(दोहा)

सत्रु मित्र के पच्छ तेँ, किये बैर औ' हेत ।
प्रत्यनीक भूषन कहैँ, जे हैँ सुमति सचेत ॥ ३७ ॥

शत्रु पच्छ तेँ बैर, यथा

मदन-गरब हरि हरि कियो, सखि परदेस-पयान ।
वही बैर-नाते अली, मदन हरत मो प्रान ॥ ३८ ॥

यथा–(कवित्त)

तेरे हास बेसनि औ' सुंदरि सुकेसनि जू,
छीनि छबि लीन्ही दास चपला घननि की ।
जानिकै कलापी की कुचाली तौ मिलापी मोहिँ,
लागै बैर लेन क्रोध मेटन मननि की ।
कहिबी सँदेसो चंदबदनी सौँ चंद्रावलि,
अजहूँ मिलै तौ बात जानिये बननि की ।
तो बिनु बिलोकि खीन बलहीन साजै सब,
बरषा समाजै ये इलाजै मो हननि की ॥३९॥

मित्रपच्छ तेँ हेतु, यथा–(सवैया)

प्रेम तिहारे तेँ प्रानप्रिया सब चेत की बात अचेत ह्वै मेटति ।
पायो तिहारो लिख्यो कछु सो छिनहीँ छिन बाँचति खोलि लपेटति ।

[३६] हो०–हुतो को (भारत) ; हुतो सो (बेल०) । भई–भए (बेल०) ।
दै–लै (सर०) । तिलास–तलास (भारत) ।
[३७] तेँ–सौँ (सर०) ।
[३८] हरि०–हरहरि (सर०, बेल०) । वही–वहै (बेल०) ।
[३९] औ'–ज्यौँ (बेल०) । जू–जौ (भारत) ; लौँ (बेल०) । तौ–तैँ (भारत, बेल०) । मेटन–मेटत (भारत) । कहिबी–कहियो (बेल०) । बननि–बदन (सर०) । बिलोकि–बिलोकै (भारत, बेल०) ।

छैलजू सैल तिहारी सुनैं तिहि गैल की धूरिनि नैन धुरेटति।
रावरे अंग को रंग बिचारि तमाल की डार भुजा भरि भेंटति ॥४०॥

अथ परिसंख्यालंकार-लक्षणं-(दोहा)

नहीँ बोलि पुनि दीजिये, क्यौँ हूँ कहूँ लखाइ।
करि बिसेष बरजन करै, संग्रह दोष बराइ ॥४१॥
पूछ्यो अनपूछ्यो जहाँ, अर्थ समर्थत आनि।
परिसंख्या भूषन वही, यह तजि और न जानि ॥४२॥

प्रश्नपूर्वक, यथा

आजु कुटिलता कौन मैं ?, राजमनुष्यनि माहिँ।
देखौ बूझि बिचारिकै, ब्यालबंस मैं नाहिँ ॥४३॥

बिना प्रश्न, यथा

मुक्ति बेनिही मैं बसै, अमृत बसै अधरानि।
सुख सुंदरि-संजोगहीं और ठौर जनि जानि ॥४४॥

यथा-(कवित्त)

भोर उठि न्हाइबे कौँ न्हाती अँसुवानहीँ सौँ
ध्याइबे को ध्यावै तुम्हैँ जाती बलिहारियै।
खाइबे कौँ खाती चोट पंचबान-बाननि की,
पीइबे कौँ लाज धोइ पीवत बिचारियै।
आँखि लगिबे कौँ दास लागी वहै तुमहीँ सौँ
बोलिबे कौँ बोलत बिहारियै बिहारियै।
सूझिबे कौँ सूझत तिहारोई सुरूप वाहि,
बूझिबे कौँ बूझै लाल चरचा तिहारियै ॥४५॥

---

[४०] पायो-बाँचो (वेंक०) । बाँचति० खोलति-बाँचि (वही) । सुनैं-सुने (भारत, वेंक०, बेल०) । धूरिनि-धूरि लै (बेल०) ।
[४१] कहुँ-कहीँ (भारत, वेंक०, बेल०) । करि-कहि (भारत, बेल०) ।
[४२] समर्थत-समर्थन (भारत, बेल०) ।
[४४] बिना०-अप्रश्नपूर्वक (भारत, वेंक०); पुनः (बेल०) । अमृत-अमी (भारत, बेल०) ।
[४५] पीइबे-पीवबे (सर०); पीयबे (वेंक०, बेल०) । वहै-रहै (भारत, बेल०) ।

प्रश्नोत्तर-लक्षणं—(दोहा)

छोड़ि वा कह्यो वा कह्यो, प्रस्नोत्तर कहि जाइ।
प्रस्नोत्तर तासौं कहैं, जे प्रबीन कबिराइ ॥४६॥

यथा—(सवैया)

कौन सिँगार है मोरपखा यह ? बाल छुटे कच कांति की जोटी।
गुंज के माल कहा ? यह तो अनुराग गरे पखौ लै निज खोटी।
दास बड़ी बड़ी बातैं कहा करौ आपने अंग की देखौ करोटी ?
जानौ नहीँ यह कंचन से तिय के तन के कसिबे की कसोटी ॥४७॥

(दोहा)

को इत आवत ? कान्ह हौँ, काम कहा ? हित मानि।
किन बोल्यो ? तेरे दृगनि, साखी ? मृदु मुसुकानि ॥४८॥

यथा वा

उत्तर दीबे मैँ जहाँ, प्रस्नौ परत लखाइ।
प्रस्नोत्तर ताहू कहैं, सकल सुकबि-समुदाइ ॥४९॥

उदाहरण

लाई फूली साँझ को रंग दृगनि मैँ बाल।
लखि ज्यौँ फूली दुपहरी नैन तिहारे लाल ॥५०॥

इति श्रीसकलकलाधरकलाधरवंशावतंसश्रीमन्महाराजकुमार-श्रीबाबूहिंदूपतिविरचिते काव्यनिर्णये स्वभावोक्त्याद्यलंकारवर्णनं नाम सप्तदशमोल्लासः ॥ १७ ॥

---

[४६] प्रस्नोत्तर—कहि प्रस्न उतर कहि (भारत)। जे—जो (सर०, वेंक०)।
[४७] बाल—लाल (बेल०)। की—को (सर०, वेंक०)। के—को (सर०)। देखो—जानि (वेंक०)।
[४८] 'सर०' मैँ नहीँ है।

१८

अथ क्रम-दीपकालंकार-वर्णनं–(दोहा)

क्रम दीपक द्वै भाँति के, अलंकार मतिचारु।
अति सुभदायक वाक्य के, जदपि अर्थ सौं प्यारु ॥१॥
जथासंख्य एकावली, कारनमाला ठाय।
उतर-उतर रसनोपमा, रत्नावलि पर्जाय ॥२॥
ये सातौ क्रम-भेद हैं, दीपक एकौ पाँचु।
आदि आबृतो देहली, कारनमाला बाँचु ॥३॥

अथ यथासंख्यालंकार

पहिले कहे जु सब्दगन, पुनि क्रम तेँ ता रीति।
कहिकै ओर निबाहिये, जथासंख्य करि प्रीति ॥४॥

यथा–(कवित्त)

दास मन मति सौं सरीर सौं सुरति सौं,
गिरा सौं गेहपति सौं न बाँधिबे की बारी जू।
मोहै मारि डारै साजि सुबस उजारै करै
थंभित बनाइ ठाइ देतो बैर भारी जू।
मोहन मारन बसीकरन उचाटन के,
थंभन उदेखन के एई दिढ़कारी जू।
बाँसुरी बजैबो गैबो चलिबो चितैबो,
मुसुकैबो अठिलैबो रावरे को गिरिधारी जू ॥५॥

---

[१] भाँति–रीति (भारत, वेंक०, बेल०)। के–जे (वेंक०)। सुभ–छबि (वेंक०); सुख (बेल०)।

[२] उतर०–उत्तर उत्तर (सर०); उतरोतर (भारत); उत्तरोत्तर (वेंक०); उतरोत्तर (बेल०)।

[३] सातौ–सातै (सर०)। एकौ–एकै (भारत, बेल०)। आबृतो–अबृतौ (सर०); अबृत्यो (भारत, वेंक०)।

[४] गन–गनि (भारत, वेंक०)। ओर–और (भारत, वेंक०)।

[५] सरीर–सरीरी (भारत, वेंक०, बेल०)। गेहपति–गिरापति (सर०)। बाँधिबे–बाँचिबे (वेंक०)। की–को (सर०)। ठाइ–धाइ (बेल०)।

अथ एकावली-लक्षणं—(दोहा)

किये जँजीरा-जोर पद, एकावली प्रमान।
श्रुतिबस मति मतिबस भगति, भगतिबस्य भगवान ॥६॥

यथा—(कवित्त)

एरी तोहि देखि मोहिँ आवत अचंभा यही,
रंभा-जानु-ढिगही गयंद-गति केरे है।
गति है गयंद सिंह-कटि के समीप सिंह-
कटिहू सु रोमराजी-व्यालिनि सभेरे है।
रोमराजी-व्यालिनि सु संभु-कुच आगे दास,
संभु-कुचहू के भुज-मैनधुज नेरे है।
मैनहि जगावतो सो आनन-द्विजेस अरु
आनन-द्विजेस राहु-कच-कांति घेरे है ॥७॥

अथ करणमाला-लक्षणं—(दोहा)

कारन तेँ कारन-जनम, कारनमाला चारु।
जोति आदि तेँ जोति तेँ बिधि बिधि तेँ संसारु ॥८॥

यथा—(सोरठा)

होत लोभ तेँ मोह, मोहहि तेँ उपजै गरब।
गरब बढ़ावै कोह, कोह कलह कलहै बिथा ॥९॥

(दोहा)

बिद्या देती बिनय कोँ, बिनय पात्रता मित्त।
पात्रत्वै धन धन धरम, धरम देत सुख नित्त ॥१०॥

मारन–मरन (भारत, बेल०)। उरेखन–उदीपन (वही)। एई–एऊ (सर०)।

[६] जोर–जोरि (भारत)।

[७] देखे–देख (भारत); देखि (बेल०)। अचंभा–अचंभो (भारत, वेंक०, बेल०)। सु–सो (भारत, बेल०); स (वेंक०)। जगावतो–जगावति (भारत, बेल०)।

[९] कलहै–कलह (भारत, बेल०); कलहहि (वेंक०)।

अथ उत्तरोत्तर-लक्षणं-(दोहा)

एक एक तैं सरस लखि, अलंकार कहि सारु।
याही कौं उतरोतरो, कहैं जिन्हैं मति चारु ॥११॥

यथा-(सवैया)

होत मृगादिक तैं बड़े बारन बारनबृंद पहारन हेरे।
सिंधु मैं केते पहार परे धरती मैं बिलोकिये सिंधु घनेरे।
लोकनि मैं धरतीयौ किती हरिओदरौ मैं बहु लोक बसेरे।
ते हरि दास बसे इनमैं सब चाहि बड़े दृग राधिका तेरे ॥१२॥

ए करतार बिनै सुनौ दास की लोकनि को अवतार करौ जनि।
लोकनि को अवतार करौ तौ मनुष्यनि हू को सँवार करौ जनि।
मानुषहू को सँवार करौ तौ तिन्हैं बिच प्रेम-प्रकार करौ जनि।
प्रेम-प्रकार करौ तौ दयानिधि केहूँ बियोग-बिचार करौ जनि ॥१३॥

अथ रसनोपमा-लक्षणं-(दोहा)

उपमा अरु एकावली को संकर जहँ होइ।
ताही कौं रसनोपमा, कहैं सुमति सब कोइ ॥१४॥

यथा-(सवैया)

न्यारो न होत बफारो ज्यौं धूम मैं धूम ज्यौं जात घने घन मैं हिलि।
दास उसास रलै जिमि पौन मैं पौन ज्यौं पैठत आँधिन मैं पिलि।
कौन जुदो करै लौन ज्यौं नीर मैं नीर ज्यौं छीर मैं जात खरो खिलि।
त्यौं मति मेरी मिली मन मेरे मैं मो मन गो मनमोहन सौं मिलि ॥१५॥

(दोहा)

अति प्रसन्न है कमल सो, कमल मुकुर सो बाम।
मुकुर चंद सो, चंद है तो मुख सो अभिराम ॥ १६ ॥

---

[११] सरस–सरल (भारत, बेल०)। उतरोतरो–उतरोतरै (वही)। जिन्हैं–जु हैं (वेंक०)।

[१२] धरतीयौ–धरती यौं (भारत, वेंक०, बेल०)। ओदरौ–वोदर (वही)। बसे–बसै (भारत, बेल०)।

[१३] सुनौ–सुनि (भारत, वेंक०, बेल०)। जनि–जिनि (भारत, वेंक०)। हू–ही (सर०)। हू–ही (भारत, बेल०)। प्रकार–प्रचार (वही)। केहूँ–क्यौंहूँ (भारत, वेंक०, बेल०)।

[१६] है–है (वेंक०)। तो–तुअ (सर०)।

अथ रत्नावली-लक्षणं-(दोहा)

क्रमी बस्तु गनि बिदित जो, रचि राख्यो करतार ।
सो क्रम आने काव्य मैं, रत्नावली-प्रकार ॥ १७ ॥

यथा-(सोरठा)

स्याम प्रभा इक थाप, जुग उरजनि तिय के कियो ।
चारु पंचसर छाप, सातकुंभ के कुंभ पर ॥ १८ ॥

यथा-(सवैया)

रबी सिर फूल मुखै ससितूल महीसुत बंदन-बिंदु सु भाँति ।
पना बुध केसरि-आड़ गुरौ नकमोतियै सुक्र करै दुखसाँति ।
सनी है सिँगार बिधुंतुद बार सजै झखकेतु सबै तनकाँति ।
निहारिये लाल भरै सुखजाल बनी नव बाल नवग्रह-पाँति ॥ १९ ॥

अथ पर्यायालंकार-लक्षणं-(दोहा)

तजि तजि आस्रय करन तैं, है पर्जाय-बिलास ।
घटती बढ़ती देखिकै, कहि संकोच बिकास ॥ २० ॥

यथा (सवैया)

पायनि कौं तजि *दास* लगी तियनैन बिलास करै चपलाई ।
पीन नितंब उरोज भए हठिकै कहिँ जात भई तनुताई ।
बोलनि बीच बसी सिसुता-तन जोबन की गई फैलि दुहाई ।
अंग बढ़ी सो बढ़ी अब तौ नवला छबि की बढ़ती पर आई ॥ २१ ॥

(दोहा)

रह्यो कुतूहल देखिबो, देखति मूरति मैन ।
पलकनि को लगिबो गयो, लगी टकटकी नैन ॥ २२ ॥

---

[१७] गनि—गन (वेंक०) । आने—आनै (सर०) ।
[१८] इक—पिक (वेंक०) । कियो—किधौ (सर०) ।
[१९] नकमोतियै—नकमोतिवै (सर०) ; नकमोतिय (बेल०) ।
[२०] भरै—भरो (बेल०) । बाल—बाश (सर०) ।
[२१] बढ़ी—बढ़यो (भारत, बेल०) । की—तौ (भारत, बेल०) ।

संकोच-पर्याय-वर्णन—(कवित्त)

रावरो पयान सुनि सूखि गई पहिले ही,
पुनि भई बिरह-बिथा तेँ तन आधी सी।
दास के दयाल मास बीतिबे मैँ छिन छिन,
छीन परिबे की रीति राधे अवराधी सी।
साँसरी सी छरी सी ह्वै सर सी सरी सी भई,
सींक सी ह्वै लीक सी ह्वै बाँध सी ह्वै बाँधी सी।
बार सी मुरार-तार सी लौँ सु तजी मैँ अब
जीवत ही ह्वैहै वह प्रानायाम-साधी सी॥ २३॥

अस्य तिलक

यामैँ उपमा को संकर है। २३ अ॥

यथा—(दोहा)

सब जग ही हेमंत है, सिसिर सु छाँहनि मीत।
रितु बसंत सब छोड़िकै, रही जलासय सीत॥ २४॥

विकास-पर्याय

लाली हुती प्रियाधरहि, बढ़ी हिये लौँ हाल।
अब सुबास तनु सुरँग करि, ल्याई तुम पै लाल॥ २५॥
अँसुवनि तेँ उहि नद कियो, नद तेँ कियो समुद्र।
अब सिगरो जग जलमई, करन चहत है रुद्र॥ २६॥

---

[२३] के—को (भारत, बेल०); की (वेंक०)। बाँध०—बाँधहू सी (भारत, बेल०); बाधी ह्वैके (वेंक०)। तार०—तामरसी सु तजी मैँ अब (सर०); तार सी लौँ तजि आवति हौँ (भारत, बेल०); सी लौँ जीवन तजी मैँ अजौँ (वेंक०)।

[२४] ही—मैँ (बेल०)। जलासय—जलाश्रय (सर०)।

[२५] ल्याई—आई (वेंक०)।

[२६] उहि—वहि (वेंक०, बेल०)। कियो—किये (भारत, वेंक०, बेल०)। कियो—किये (भारत, बेल०)।

यथा–(कवित्त)

हम तुम एक हुते तन मन, फेरि तुम्हैं
प्रीतम कहायो मोहिं प्यारी कहवाइ है।
सोऊ गयो पति पतिनी को रह्यो नातो, पुनि
पापिनि हौं याही तुम्हैं उतर दिढ़ाइ है।
द्वै दिना लौं *दास* रही पतिया-सँदेस-आस,
हाइ हाइ ताहू हटे रह्यो ललचाइ है।
प्राननाथ कठिन पषानहू तें प्रान अबै,
कौन जानै कौन कौन दसा दरसाइहै ॥ २७ ॥

अथ दीपक-लक्षणं–(दोहा)

एक सब्द बहु मैं लगै, दीपक जानै सोइ।
उहै सब्द फिरि फिरि परै, आवृत्तिदीपक होइ ॥ २८ ॥
आनन आतप देखहूँ, चलै डग कहूँ पाइ।
कर सुमनंजुलि लेतहूँ, अरुन रंग ह्वै जाइ ॥ २९ ॥
रहै थकित अरु चकित ह्वै, समरसुंदरी औनि।
तुअ चितौनि ठिकु ठौनि भ्रुव नौनि, निरखि मन रौनि ॥३०॥

शब्दावृत्ति-दीपक-वर्णनं–(दोहा)

रहै चकित ह्वै थकित ह्वै, सुंदरि रति ह्वै औनि।
तुव चितौनि लखि ठौनि लखि, भृकुटि नौनि लखि रौनि ॥३१॥

यथा (सवैया)

वाही घरी तैं न सान रहै न गुमान रहै न रहै सुघराई।
दास न लाज को साज रहै न रहै तनकौ घरकाज की घाई।

---

[२७] याही–ह्याँई (वेंक०)। उतर०–उत दीठि ठाइ है (भारत); उनहीं दिढ़ाइहै (वेंक०); बातन दिढ़ाइहै (बेल०)। द्वै–दू (सर०)। हटे–हठि (बेल०)।

[२९] 'भारत' मैं नहीं है। थकित–चकित (बेल०)। अरु–ह्वै (वही)। ठिकु०–लखि ठौनि लखि भृकुटि नौनि लखि (वही)।

[३०] देखहूँ–देखिहूँ (भारत, वेंक०, बेल०)। डग०–डंक कहुँ (वही)। कर०–सुमन अंजली लेत कर (बेल०)।

[३१] 'बेल०' मैं नहीं है। सुंदरि०–सगरसुंदरी (भारत)।

ह्याँ दिख-साध निवारे रहौ तब ही लौं भटू सब भाँति भलाई।
देखत कान्है न चेत रहै री न चित्त रहै न रहै चतुराई॥ ३२॥

अर्थावृत्ति-दीपक-(दोहा)

रहै चकित ह्वै थकित ह्वै समरसुंदरी औनि।
तुअ चितौनि लखि ठौनि तकि निरखि रौनि भ्रुव नौनि॥३३॥

(सवैया)

छन होति हरीरी मही कौं लखै निरखै छन जो छनजोति छटा।
अवलोकति इंदुबधू की पत्यारी बिलोकति है खिन कारी घटा।
तकि डार कदंबनि की तरसै दरसै तउ नाचत मोर अटा।
अध ऊरध आवत जात भयो चित नागरि को नट कैसो बटा॥३४॥

उभयावृत्ति-दीपक-(दोहा)

पेच छुटे चंदन छुटे, छुटे पसीना गात।
छुटी लाज अब लाल किन, छुटे बंद उत जात॥३५॥
तोर्‌यो नृपगन को गरब, तोर्‌यो हर-कोदंड।
राम जानकी-जीय को, तोर्‌यो दुख्ख अखंड॥३६॥

देहली-दीपक-वर्णनं-(दोहा)

परै एक पद बीच मैं, दुहुँ दिसि लागै सोइ।
सो है दीपक देहली, जानत है सब कोइ॥३७॥

यथा-(सवैया)

ह्वै नरसिंह महा मनुजाद हन्यो प्रहलाद को संकट भारी।
दास बिभीषनै लंक दियो जिन रंक सुदामा कौं संपति सारी।

---

[३२] तनकौ-तन को (भारत)। कौ०-को भाई (वही)। ह्याँ०-हार्दिक साधन वारे रहै (बेल०)। री न-नहिं (भारत, वेंक०); थिर (बेल०)।

[३३] चकित-छकित (भारत, वेंक०, बेल०)। रौनि०-भृकुटि नौनि लखि रौनि (भारत); निरखि तनौनि भ्रु रौनि (बेल०)।

[३४] इंदुबधू०-इंद्रबधून की पाँति (बेल०)। दरसै०-लखि दासजू (बेल०)। तउ-उत (भारत, वेंक०)।

[३५] उत-उर (भारत); कित (बेल०)।

द्रोपदी-चीर बढ़ायो जहान मैं पांडव के जस की उजियारी।
गर्बिन को खनि गर्ब बहावत दीननि को दुख श्रीगिरधारी ॥३८॥

कारक-दीपक-वर्णन–(दोहा)

एक भाँति के बचन को काज बहुत जहँ होइ।
कारकदीपक जानिये, कहैँ सुमति सब कोइ ॥३९॥

यथा

ध्याइ तुम्हैँ छबि सोँ छकति, जकति तकति मुसुकाति।
भुज पसारि चौँकति चकति, पुलकि पसीजति जाति ॥४०॥

यथा–(सवैया)

उठि आपुहीँ आसन दै रसख्याल सोँ लाल सोँ आँगी कढ़ावति है।
पुनि ऊँचे उरोजन दै उर-बीच भुजानि मढ़ै औ' मढ़ावति है।
रस-रंग मचाइ नचाइकै नैन अनंग-तरंग बढ़ावति है।
बिपरीति की रीति मैँ प्रौढ़ तिया चित चौगुनो चोप चढ़ावति है ॥४१॥

अथ मालादीपक-वर्णन–(दोहा)

दीपक एकावलि मिले, मालादीपक जानि।
सतसंगति संगति-सुमति, मति गति गति सुखदानि ॥४२॥

(सोरठा)

जग की रुचि बृजबास, बृज की रुचि बृजचंद हरि।
हरि-रुचि बंसी *दास*, बंसी-रुचि मन बाँधिबो ॥४३॥

इति श्रीसकलकलाधरकलाधरवंशावतंसश्रीमन्महाराजकुमार-
श्रीबाबूहिंदूपतिबिरचिते काव्यनिर्णये दीपकालंकारवर्णनं नाम
अष्टादशमोल्लासः ॥१८॥

---

[३९] सुमति–सुकबि (भारत, वेंक०)।
[४०] चकति–तकति (सर०)।
[४१] ख्याल–प्यार (भारत, वेंक०, बेल०)। मढ़ै०–कै मध्य (बेल०)।
नैन०–नैनन अंग (भारत, वेंक०, बेल०)।

१६

अथ गुण-निर्णय-वर्णनं—(दोहा)

दस बिधि गुन के कहत हैं, पहिले सुकबि सुजान।
पुनि तीनै गुन गहि रच्यो, सब तिनके दरम्यान ॥१॥
ज्यौं सतजन-हिय तैं नहीं, सूरतादि गुन जाइ।
त्यौं बिदग्ध-हिय मैं रहैं, दस गुन सहज सुभाइ ॥२॥
अच्छर गुन माधुर्य अरु ओज प्रसाद बिचारि।
समता कांति उदारता, दूषनहरन निहारि ॥३॥
अर्थव्यक्ति समाधि ये, अर्थहि करैं प्रकास।
वाक्यनि के गुन स्लेष अरु, पुनरुक्तप्रतिकास ॥४॥

माधुर्यगुण-लक्षणं—(दोहा)

अनुस्वारजुत बर्नजुत, सबै बर्ग अ-टवर्ग।
अच्छर जामैं मृदु परै, सो माधुर्ज निसर्ग ॥५॥

यथा

धरे चंद्रिका-पंख सिर, बंसी पंकज-पानि।
नँदनंदन खेलत सखी, बृंदाबन सुखदानि ॥६॥

ओज-गुण

उद्धत अच्छर जहँ परै, स क टवर्ग मिलि जाइ।
ताहि ओज गुन कहत हैं, जे प्रबीन कबिराइ ॥ ७ ॥

---

[१] तीनै—तीन्यौ (सर०); तीनौं (वेंक०)। गहि—गनि (सर०)। रच्यो—रचैं (भारत, वेंक०); रचौ (बेल०)।
[४] अर्थव्यक्ति—अरत्थव्यक्ति (सर०); अर्थाव्यक्ति (भारत, बेल०)। पुनरुक्त०—पुनरुक्त्यो प्रतिकास (भारत, वेंक०); पुनरुक्तीपरकास (बेल०)।
[७] 'वेंक०' मैं यह रूप है—
आवै उद्धत सब्द बहु बर्नसँजोगी जुक्त।
स क टवर्ग की अधिकई इहै ओज गुन उक्त ॥

यथा

पिक्खि ठट्ट गजघटनि को, जुत्थप उठे बरक्कि।
पट्टत महि घन कट्टि सिर, क्रुद्धित खग्ग सरक्कि ॥ ८ ॥

प्रसाद-गुण—(दोहा)

मनरोचक अच्छर परै, सोहै सिथिल सरीर।
गुन प्रसाद जलसुक्ति ज्यौं, प्रगटै अर्थ गँभीर ॥ ९ ॥

यथा

डीठि डुलै न कहूँ भई मोहित मोहन माहिँ।
परम सुभगता निरखि सखि, धरम तजै को नाहिँ ॥ १० ॥

समता-गुण-लक्षणं—(दोहा)

प्राचीननि की रीति सौँ, भिन्न रीति ठहराइ।
समता गुन ताकौँ कहै, पै दूषननि बराइ ॥ ११ ॥

यथा

मेरे दृग कुबलयनि कौँ, देत निसा सानंद।
सदा रहै बृजदेस पर, उदित साँवरो चंद ॥ १२ ॥

यथा—(कवित्त)

उपमा छबीली की छवा लौँ छूटे बारन की,
ढरकि कलिंद तेँ कलिंदी-धार ठहरैँ।
लाल सेत गुन गुही बेनी बँधे बुधजन,
बरनत वाही कौँ त्रिबेनी कैसी लहरैँ।

---

[८] पिक्खि—पिष्टि (भारत) ; पिष्पि (वेंक०) ; प्रिष्टप (बेल०)। गज०—गब्बरन्नि (वेंक०) ; को—के (भारत, बेल०)। घन—धन (वेंक०)। खग्ग—खङ्ग (वेंक०)।

[९] सुक्ति—जुक्ति (सर०)।

[१०] डुलै—डोलै (सर०)।

[११] दूषननि०—दूषन निरबाइ (सर०)।

[१२] देत—होति (भारत, बेल०)।

कीन्हो काम अद्भुत मदन मरदाने यह,
कहाँ तें कहाँ को ल्यायो कैसी कैसी डहरैं।
वेई स्याम अलकैं छहरि रहीं दास मेरे
दिल की दिली मैं है जहाँई तहाँ नहरैं ॥ १३ ॥

कांति-गुण-वर्णनं–(दोहा)

रुचिर रुचिर बातैं परैं, अर्थन प्रगटन गूढ़।
ग्राम्यरहित सो कांति गुन, समुझै सुमति न मूढ़ ॥ १४ ॥

यथा–(सवैया)

पग पानिन कंचन-चूरे जराउ-जरे मनि लालनि सोभ धरैं।
चिकुरारी मनोहर भीन भगा पहिरे मनि-आँगन मैं बिहरैं।
यह मूरति ध्यानन आनन कौं सुर सिद्ध समूहनि साध मरैं।
बड़भागिनि गोपी मयंकमुखी अपनी अपनी दिसि अंक भरैं ॥ १५ ॥

उदारता-गुण-वर्णनं–(दोहा)

जो अन्वयबल पठितबल, समुझि परै चतुरैन।
औरनि कौं लागै कठिन, गुन उदारता ऐन ॥१६॥

यथा

कदन अनेकन बिघन को, एकरदन गनराउ।
बंदनजुत बंदन करौं, पुष्कर पुष्करपाउ ॥१७॥

अर्थव्यक्ति-गुण-वर्णनं–(दोहा)

जासु अर्थ अतिहीं प्रगट, नहिं समास अधिकाउ।
अर्थव्यक्ति गुन बात ज्यौं बोलै सहज सुभाउ ॥१८॥

---

[१३] कैसी–की सी (भारत, बेल०)। कैसी०–कैसे कैसी (वेंक०)।
[१४] परैं–करैं (भारत, वेंक०, बेल०)। प्रगटन–प्रगटत (भारत)।
[१५] ध्यानन–ध्यान मैं (भारत, वेंक०, बेल०)। साध–साधि (बेल०)।
[१६] पठित०–पठित है (भारत, बेल०)।
[१७] को–के (भारत, बेल०)।
[१८] बोलै–बोलो (सर०)।

यथा

इकटक हरि राधे लखैं, राधे हरि की ओर ।
दोऊ आनन इंदुवै, चारयो नैन चकोर ॥१९॥

समाधि-गुण-लक्षणं--(दोहा)

जु है रोह अवरोह मति, रुचिर भाँति क्रम पाय ।
तिहि समाधि गुन कहत हैं, ज्यों भूषन पर्जाय ॥२०॥

यथा

बर तरुनी के बैन सुनि, चीनी चकित सुभाइ ।
दुखी दाख मिसिरी मुरी, सुधा रही सकुचाइ ॥२१॥

अस्य तिलक

क्रम तें अधिक अधिक मीठो कह्यो यातें समाधि गुन है । २१ अ ॥

यथा--(सवैया)

भावतो आवत ही सुनिकै उड़ि ऐसी गई तन-छामता जो गुनी ।
कंचुकीहू मैं नहीं मढ़ती बढ़ती कुच की अब तौ भई दोगुनी ।
दास भई चिकुरारिन की चटकीलता चामर चारु तें चौगुनी ।
नौगुनी नीरज तें मृदुता सुषमा मुख मैं ससि तें भई सौगुनी ॥२२॥

श्लेष-गुण-लक्षणं--(दोहा)

बहु सब्दनि को एक कै, कीजै जहाँ समास ।
ता अधिकाई स्लेष गुन, गुरु मध्यम लघु दास ॥२३॥

दीर्घ समास, यथा

रघुकुलसरसीरुहविपुलसुखद भानुपद चारु ।
हृदै आनि हनि काममदकोहमोहपरिवारु ॥२४॥

मध्य समास, यथा--(दोहा)

जदुकुलरंजन दीनदुखभंजन जनसुखदानि ।
कृपावारिधर प्रभु करौ कृपा आपनो जानि ॥२५॥

---

[१९] इंदुवै-इंदुओ (भारत, वेंक०, बेल०) ।
[२०] मति-गति (भारत, वेंक०, बेल०) ।
[२१] दुखी-दुखित (भारत, वेंक०, बेल०) ।
[२२] तन-इद (वेंक०) ।

लघु समास, यथा

लखि लखि सखि सारसनयन इंदुबदन घनस्याम।
बीजुहास दाखौदसन, बिंबाधर अभिराम ॥२६॥

पुनरुक्तिप्रतीकाश गुण—(दोहा)

एक सब्द बहु बार जहँ, परै रुचिरता-अर्थ।
पुनरुक्तिप्रतिकास गुन, बरनैं बुद्धिसमर्थ ॥२७॥

यथा

बनि बनि बनि बनिता चली, गनि गनि गनि डग देत।
धनि धनि धनि अँखिया जु छबि, सनि सनि सनि सुख लेत ॥२८॥

(सवैया)

मधुमास मैं दासजू बीस बिसे मनमोहन आइहैं आइहैं आइहैं।
उजरे इन भौननि कौं सजनी सुखपुंजनि छाइहैं छाइहैं छाइहैं।
अब तेरी सौं एरी न संक एकंक बिथा सब जाइहैं जाइहैं जाइहैं।
घनस्यामप्रभा लखिकै सजनी अँखियाँ सुख पाइहैं पाइहैं पाइहैं ॥२९॥

(दोहा)

माधुर्जोज प्रसाद के, सब गुन हैं आधीन।
तातैं इनहीं कौं गन्यो, मंमट सुकबि प्रबीन ॥३०॥

माधुर्य-गुण-लक्षणं

स्लेषौ मध्य समास को, समता कांति बिचार।
लीन्हे गुन माधुर्ज जुत करुना हास सिंगार ॥३१॥

ओज-गुण-लक्षणं

स्लेष समाधि उदारता, सिथिल ओज-गुन-रीति।
रुद्र भयानक बीर अरु रस बिभत्स सौं प्रीति ॥३२॥

---

[२६] बीजु-बिज्जु (भारत, बेल०)।
[२७] पुनरुक्ति०-पुनरुक्ता प्रतिकास सो (सर०) ; पुनरुक्त्य० (भारत) ; पुनरुक्ती परकास (बेल०)।
[३१] जुत-रस (सर०)।

प्रसाद-गुण-लक्षणं

अल्प समास समास बिन, अर्थव्यक्ति गुन मूल ।
सो प्रसाद गुन बर्नं सब, सब गुन सब रस तूल ॥३३॥
रस के भूषित करन तैं, गुन बरने सुखदानि ।
गुन-भूषन अनुमानिकै, अनुप्रास उर आनि ॥३४॥

अथ अनुप्रास-लक्षणं

बचन आदि कै अंत जहँ अक्षर की आबृत्ति ।
अनुप्रास सो जानि द्वै भेद छेक औ' बृत्ति ॥३५॥

छेकानुप्रास-लक्षणं

बर्न अनेक कि एक की, आबृति एकहि बार ।
सो छेकानुप्रास है आदि अंत इक ढार ॥३६॥

आदि वर्ण की आवृत्ति, छेकानुप्रास

बर तरुनी के बैन सुनि, चीनी चकित सुभाइ ।
दाख दुखी मिसिरी मुरी, सुधा रही सकुचाइ ॥३७॥

अंत वर्ण की आवृत्ति, छेकानुप्रास

जनरंजन भंजनदनुज, मनुजरूप सुरभूप ।
बिस्व बदर इव धृत उदर, जोवत सोवत सूप ॥३८॥

वृत्त्यनुप्रास-लक्षणं

कहुँ सरि बर्न अनेक की, परै अनेकनि बार ।
एकहि की आबृत्ति कहुँ, बृत्त्यौ दोइ प्रकार ॥३९॥

आदि वर्ण की अनेक बार आवृत्ति

पैंड पैंड पर चकित चख, चितवत मो-चित-हारि ।
गई गागरी गेह लै, नई नागरी नारि ॥४०॥

---

[३३] बर्न०—बर्नि पुनि (सर०); बर्नि सब (वेंक०) ।

[३४] बरने—बरनै (सर०) ।

[३६] अनेक—बहुत (भारत, बेल०) ।

[३७] बर०—तरुनी के बर (बेल०) । दाख०—दुखी दाख (भारत, बेल०); दुखी दास (वेंक०) ।

[३८] जोवत०—जोअत सोअत रूप (भारत, बेल०) ।

[४०] चितवत—चितवनि (सर०) ।

आदि वर्ण एक को अनेक बार आवृत्ति–(कवित्त)

बलि बलि गई बारिजात से बदन पर,
बंसी-तान बँधि गई बिँधि गई बानी मैँ।
बड़रे बिलोचन बिसारे के बिलोकत,
बिसारि सुधि बुधि बावरी लौँ बिललानी मैँ।
बरुनी-बिभा की बारुनी मैँ ह्वै बिमोहित,
बिसेष बिंबाधर मैँ बिगोई बुद्धि रानी मैँ।
बरजि बरजि बिलखानी बृंद-आली,
बनमाली की बिकास-बिहसनि मैँ बिकानी मैँ ॥४१॥

अंत वर्ण अनेक की अनेक बार आवृत्ति–(दोहा)

कई कस न गरमी-बस न, काहू बसन सुहात।
सीत-सताए रीति अति, कत कंपित तुअ गात ॥४२॥

अंत वर्ण एक की अनेक बार आवृत्ति, यथा–(सवैया)

बैठी मलीन अली-अवली किधौँ कंज-कलीन सौँ ह्वै बिफली है।
संभुगली बिछुरी ही चली किधौँ नागलली अनुराग-रली है।
तेरी अली यह रोमावली कि सिँगारलता फल-बेल फली है।
नाभिथली तँ जुरे फल लैँ कि भली रसराज-नली उछली है ॥४३॥

वृत्ति-भेद–(दोहा)

मिले बरन माधुर्ज के, उपनागरिका निति।
परुषा ओज प्रसाद के, मिले कोमला बृत्ति ॥४४॥

उपनागरिका वृत्ति, यथा–(सवैया)

मंजुल बंजुल-कुंजनि गुंजत कुंजत भृंग बिहंग अयानी।
चंदन चंपक-बृंदन संग सुरंग लवंगलता अरुझानी।
कंस-बिधंसन कै नँदनंद सुछंद तहीँ करिहैँ रजधानी।
झंखति क्योँ मथुरा ससुरारि सुने न गुनै मुद मंगल बानी ॥४५॥

---

[४१] बड़रे०–बड़डे० (सर०); बड़े बड़े लोचन (बेल०)। बिसारे०–बिसारिकै (भारत); बिसार के (बेल०)।
[४१] है–ह्वै (भारत, बेल०)। तैँ–सौँ (भारत, वेंक०); पै (बेल०)।
[४४] निति–नित्त (भारत); बृत्ति (वेंक०)।
[४५] अरुझानी–लपटानी (बेल०)।

परुषा वृत्ति—(छप्पय)

मर्कट जुद्ध बिरुद्ध क्रुद्ध अरि-ठट्ट दपट्टहिं।
अब्द सब्द करि गर्जि तर्जि झुकि झर्पि झपट्टहिं।
लच्छ लच्छ रच्छस बिपच्छ धरि धरनि पटक्कहिं।
तिक्ख सत्र बज्रादि अस्त्र एक्कहु न अटक्कहिं।
कृत व्यक्त रक्त-स्रोतस्विनी जत्र तत्र अनहद्द भुअ।
तसु बिक्रम कथ्थ अकथ्थ जस मथ्थ समथ दसरथ्थ-सुअ ॥४६॥

कोमला वृत्ति, यथा—(सवैया)

प्यो बिरमे बरमै करि बुंदन बृंदनि कौं बिधि बेधै बधै री।
दास घनी गरजैं गुरजैं सी लगैं, झर मोर हियो झरसै री।
बीस बिसे बिष झिल्ली झलैं तड़ितौ तनु ताड़ित कै तरपै री।
मारै तऊ सुर के सर सौं बिरही कौं बसै बरही बड़ो बैरी ॥४७॥

लाटानुप्रास-लक्षणं—(दोहा)

एक सब्द बहु बारगी, सो लाटानुप्रास।
तातपर्ज तैं होतु है, औरै अर्थ प्रकास ॥४८॥

यथा

मन मृगया कर मृगदृगी, मृगमद-बेंदी भाल।
मृगपति-लंक मृगांकमुखि, अंक लिये मृगबाल ॥४९॥

---

[४६] गर्जि—मर्जि (सर०)। झर्पि—झंपि (बेल०)। धरि—धर (सर०)। तिक्ख—देखि (वेंक०)। स्रोत०—स्रोनितस्वनी (सर०); स्रोनित सने (बेल०)। जत्र०—जत्थ तत्थ (भारत, वेंक०)। मथ्थ—रसा (भारत, बेल०)।

[४७] प्यो-क्यौं (वेंक०)। बरमै—बिरि मैं (बेल०)। बुंदनि०—बुंदनि बंदनि (भारत); बुंदनि बुंदनि (वेंक०); बंदन बुंदनि (बेल०)। गरजैं०-गुरजैं गरजैं (वेंक०)। मोर०—झर सो हियरो झुरसै (भारत, बेल०); झर सोर हियो झुरसै (वेंक०)। तड़ितौ—तड़िता (भारत, वेंक०, बेल०)। ताड़ित—तापित (वेंक०)। बड़ो—बड़ (भारत, वेंक०)।

[४८] बारगी—बार जो (भारत); बारगो (वेंक०); बार जहँ (बेल०)।

[४९] अंक—अंग (सर०)। बाल—चाल (वही)।

यथा–(दोधक)

श्रीमनमोहन प्रान हैँ मेरे। श्रीमनमोहन मान हैँ मेरे।
श्रीमनमोहन ज्ञान हैँ मेरे। श्रीमनमोहन ध्यान हैँ मेरे ॥५०॥
श्रीमनमोहन सोँ रति मेरी। श्रीमनमोहन सोँ नति मेरी।
श्रीमनमोहन सोँ मति मेरी। श्रीमनमोहन सोँ गति मेरी ॥५१॥

वीप्सालंकार-वर्णनं–(दोहा)

एक सब्द बहु बार जहँ, अति आदर सोँ होइ।
ताहि बीपसा कहत हैँ, कबि कोबिद सब कोइ ॥५२॥

यथा–(कबित्त)

जानि जानि आयो प्यारो प्रीतम बिहारभूमि,
छानि छानि फूले फूल सेजहि सँवारती।
दास दृगकंजनि बँदनवार ठानि ठानि,
मानि मानि मंगल सिँगारनि सिँगारती।
ध्यान ही मैँ आनि आनि पी कोँ गहि पानि पानि,
लेटि पट तानि तानि मैन-मद गारती।
प्रेम-गुन गानि गानि पीऊषनि सानि सानि,
बानि बानि खानि खानि बैनन बिचारती ॥५३॥

अथ यमकालंकार-लक्षणं–(दोहा)

वहै सब्द फिरि फिरि परै, अर्थ औरई और।
सो जमकानुप्रास है, भेद अनेकनि ठौर ॥५४॥

---

[५२] अति०–हरषादिक तैँ (बेल०)। ताहि०–ताकहँ बिप्सा (वही)।

[५३] छानि...सँवारती–मानि...सिँगारती (भारत, बेल०)। सेजहि–सेजन (वेंक०); फूलन (भारत)। ठानि०–तानि तानि (वही)। मानि... सिँगारती–छानि...सँवारती (वही)। लेटि–ऐँचि (वही)। पीऊ-षनि–अमृतनि (बेल०)।

[५४] ढौर–ठौर (सर्वत्र)।

यथा–(कवित्त)

लीन्हो सुख मानि सुषमा निरखि लोचननि,
नील जलजात नयो जा तन यो हारि गो।
वाही जी लगाइ करि लीन्हो जी लगाइ करि,
मति मोहनी सी मोहनी सी उर डारि गो।
लागै पलकौ न पल कौ न बिसरै री,
बिसवासी वा समै तेँ बास मैँ बिष बगारि गो।
मानि आनि मेरी आनि मेरी ढिग वाको तूँ न,
काहू बरजो री बरजोरी मोहि मारि गो ॥५५॥

चलन कहूँ मैँ लाल रावरे चलन की,
चलन आँच वाके आँचलन सोँ सुधारैगी।
वारि जात नैन-बारि जा तन सहैगी, निज
बारिजात-नैननि सोँ केहूँ न निवारैगी।
दासजू बसंत-सुधि अंगना सँभारैगी तौ,
अंग ना सँभारैगी ह्वै अंगनास भारैगी।
करहति डारै सुधि देखि देखि किंसुक की
करहति डारै हियो कर हति डारैगी ॥५६॥

छपती छपाइ री छपाइ-गन सोरतु
छपाइ कै अकेली ह्यो छपाइ ज्योँ दगति है।
सुखद निकेत की या केतकी लखे तेँ पीर,
केतकी हिये मैँ मीनकेत की ज़गति है।
लखिकै ससंक होति निपटै ससंक दास
संकर मैँ सावकास संकर-भगति है।
सरसी सुमन-सेज सरसी सुहाई
सरसीरुह-बयारि सीरी सर सी लगति है ॥ ५७ ॥

---

[५५] निरखि–निलखि (वेंक०) । नील०–नीरज लजात जलजातन बिहारि गो (भारत बेल०); नील जलजात जलजातन बिहारिगो (वेंक०) । लागै–लावै (सर०) । बास मैँ–त्रास मै तेँ बिष गारिगो (भारत, बेल०) । मेरी ढिग–मेर ढिग (सर०) ।

[५६] केहूँ–क्योँहू (सर०) । निवारैगी–निहारैगी (भारत) । सुधि अंगना–सुधि अंगन (वेंक०) । अंगनास–अंगनसँ (वही) ।

[५७] छपाइ–छपाई (भारत, वेंक०, बेल०) । छपाइ–छपाई (भारत,

(दोहा)

अरी सीअरी होन को ठरी कोठरी नाहिँ।
जरी गूजरी जाति है, घरी दूघरी माहिँ ॥ ५८ ॥
चैत-सरबरी मैँ चलो, न कै सरबरी स्याम।
सरब रीति ह्वै सरब री, लखि परिहै परिनाम ॥ ५९ ॥
मुकुत बिराजत नाक मैँ, मिलि बेसरि-सुखमाहिँ।
मुकुत बिराजत नाक मैँ, मिलिबे सरि सुख माहिँ ॥ ६० ॥

मुक्तपदग्रास-यमकालंकार-लक्षणं

चरन अंत अरु आदि के जमक कुंडलित होइ।
सिंह-बिलोकन है उहै, मुक्तक-पद-ग्रस सोइ ॥ ६१ ॥

यथा--(सवैया)

सर सो बरसो करै नीर अली जनु लीन्हे अनंग पुरंदर सो।
दरसो चहुँओरन तैँ चपला करि जाति कृपानि को औझर सो।
झर सोर सुनाइ हनै हियरा जु किये घन अंबर-डंबर सो।
बरसो तैँ बड़ी निसि बैरिनि बीत तौ बासर भो बिधि-बासर सो ॥६२॥

(दोहा)

ज्योँ जीवात्मा मैँ रहै, धर्म सूरता आदि।
त्योँ रस ही मैँ होत गुन, बर्नहिँ गनै सु बादि ॥ ६३ ॥
रस ही के उतकर्ष कौँ, अचलस्थिति गुन होइ।
अंगी-धर्म सु सूरता, अंग-धर्म नहिँ कोइ ॥ ६४ ॥

बेल०)। सोरतु–सोर तू (वही)। छपाइ–छपाई (वही)। कै०–क्यौँ सहेली (वही)। ह्यो–ह्यौँ (भारत, वेंक०, बेल०)। ज्यो–ज्यौँ (वही)। पीर-परि (सर०)। होति–होती (भारत, वेंक०, बेल०)।

[५८] सीअरी–सीयरी (सर०)। को–की (वही)। ठरी–ढरी (सर०, वेंक०)।

[५९] न कै–सरब (भारत, बेल०)। 'वेंक०' मैँ दूसरा दल यौँ है—कंठ सु-मुक्ता माल है, दीपति दीप्ति सदाहि।

[६२] बरसो–बरसा (सर०)। को–के (भारत, बेल०)। हनै–हरै (वही) बीती०–बीतति (बेल०)।

[६३] सु बादि–सवादि (भारत, बेल०)।

[६४] सु०–सुरूपता (भारत, वेंक०, बेल०)। कोइ–होइ (वेंक०)।

कहुँ लहु लखि कादर कहै, सूर बड़ो लखि अंग।
रसहि लाज त्यौं गुन बिना अरसौ सुभगुन संग ॥ ६५ ॥
अनुप्रास उपमादि जे, सब्दार्थालंकार।
ऊपर तैं भूषित करैं, जैसे तन कौं हार ॥ ६६ ॥
अलंकार बिनु रसहु है, रसौ अलंकृत छंडि।
सुकबि बचन-रचनानि सौं, देत दुहुँन कौं मंडि ॥ ६७ ॥

रस बिना अलंकार, यथा

चित्त चिहुँट्टत देखिकै, जुट्टत दारहि दार।
छन छन छुट्टत पट रुचिर, टुट्टत मोतियहार ॥ ६८ ॥

अस्य तिलक

इहाँ परुषावृत्ति अनुप्रास है, रस नहीं। ६८ अ ॥

(दोहा)

चौंच रही गहि सारसी, सारस-हीन मृनाल।
प्रान जात जनु द्वार मैं दियो अरगला हाल ॥ ६९ ॥

अस्य तिलक

इहाँ उत्प्रेक्षालंकार है, रस नहीं। ६९ अ ॥

(दोहा)

झारि डारु घनसार इत, कहा कमल को काम।
अरी दूरि करि हारु यौं बकति रहति नित बाम ॥ ७० ॥

अस्य तिलक

इहाँ रस है, अलंकार नहीं। ७० अ ॥

इति श्रीसकलकलाधरकलाधरवंशावतंसश्रीमन्महाराजकुमार-
श्रीबाबूहिंदूपतिविरचिते काव्यनिर्णये गुणनिर्णयादि-
अलंकारवर्णनं नाम एकोनविंशतितमो-
ल्लासः ॥ १९॥

---

[६५] लहु लखि—लखि लघु (भारत, वेंक०, बेल०)। अरसौ०—अरि सो सुभग न (भारत, बेल०); अरसौ सुभग न संग (वेंक०)।
[६८अ] नहीं—नहीं है (भारत, वेंक०)।
[६९अ] नहीं—नहीं है (बेल०)।
[७०] डारु—भूरी (सर०)।

२०

अथ श्लेषादि-अलंकार-लक्षणं--(दोहा)

स्लेष बिरुध्धाभास है, सब्दअलंकृत दास।
मुद्रा अरु बक्रोक्ति पुनि, पुनरुक्तवदाभास ॥१॥
इन पाँचहु कौं अर्थ को भूषन कहै न कोइ।
जदपि अर्थ-भूषन सकल, सब्दसक्ति मैं होइ ॥२॥

श्लेषालंकार

सब्द उभयहूँ सक्ति तैं, स्लेषालंकृत मानि।
अनेकार्थबल इक दुतिय, तातपर्जबल जानि ॥३॥
दोइ तीनि कै भाँति बहु, जहाँ प्रकासत अर्थ।
सो स्लेषालंकार है, बरनत बुद्धिसमर्थ ॥४॥

द्वि अर्थ-श्लेष-वर्णनं--(कबित्त)

गजराज राजै बरबाहन की छबि छाजै,
समरथ बसै सहसनि मनमानी है।
आयसु को जोहै आगे लीन्हे गुरुजन गन,
बस मैं करति जो सुदेस रजधानी है।
महा महाजन धनु लै लै मिलैं स्रम बिनु,
पदुमन लेखै दास बास यौं बसानी है।
दरपन देखै सुबरन रूप भरी बार-
बनिता बखानी है कि सेना सुलतानी है ॥५॥

---

[१] बिरुध्धाभास–बिरोधाभास (भारत, बेल०)। है–ह्वै (वेंक०)। सब्द०–सब्दालंकृत (भारत, वेंक०, बेल०)।

[२] को–सौं (भारत, वेंक०, बेल०)। मैं–मय (वेंक)।

[४] प्रकासत–प्रकासित (भारत, बेल०)।

[५] बाहन-बाहिनी (भारत)। समरथ०– सरथ सुबस (बेल०)। महा-जन–महा (सर०)। बास–बास बास (वही)। पदुमन–पदुमिन (बेल०)। बार–बारि (सर०)। सेना–सैना (वही); सैन (भारत, बेल०)।

त्रि अर्थ-वर्णनं

पानिप के आगर सराहैं सब नागर,
कहत *दास* कोस तैं लख्यो प्रकासमान मैं।
रज के सँजोग तैं अमल होत जब तब,
हरि हितकारी बास जाहिर जहान मैं।
श्री को धाम सहजै करत मनकाम, थकै
बरनत बानी जा दलन के बिधान मैं।
एतो गुन देख्यो राम साहिब सुजान मैं कि
बारिज बिहान मैं कि कीमति कृपान मैं ॥६॥

चतुरर्थ-वर्णनं

छाया सौं रलित परभृत घोस दरसन,
बालरूप दुति सु परब-गन बंदु है।
जिन को उदित छनदान मैं बिलोकियत,
हरि महातम देत आनँदनिकंदु है।
भव आभरन अरजुन सौं मिलाप कर,
जानौ कुबलय को हरन दुखदंदु है।
एतो गुनवारो *दास* रबि है कि चंदु है कि
देवी को मृगेंदु है कि जसुमति-नंदु है ॥७॥

(दोहा)

संदेहालंकार इत, भूलि न आनौ चित्त।
कह्यो स्लेष दिढ़ करन कौं, नहिँ समता-थल मित्त ॥८॥

अथ विरुद्धाभास-वर्णनं

परैं बिरुद्धी सब्दगन, अर्थ सकल अबिरुद्ध।
कहैं बिरुद्धाभास तिहि, *दास* जिन्हैं मति सुद्ध ॥९॥

---

[६] हरि—हर (सर०)। कीमति—कीरति (बेल०)।

[७] आनँद०—आनँद को कंद (बेल०)। जिन—दिन (भारत, बेल०)। देत—दूत (सर०)। मृगेंदु—मृगेंद्र (वेंक०)।

[९] बिरुद्धी—बिरुध्धा (सर०); बिरोधी (बेल०)। बिरुद्धाभास—बिरोधाभास (बेल०)।

यथा—(कबित्त)

लेखी मैं अलेखी मैं नहीँ है छबि ऐसी औ'
असमसरी समसरी दीबे कौं परै लियै।
खरी निखरी है अंग बनक कनकहूँ तैं,
दास मृदु हास बीच मेलियै चमेलियै।
कीजै न बिचारु चारु अरस मैं रस ऐसो,
बेगि चलौ संग मैं न हेलियै सहेलियै।
जग के भरन अभरन आपु रूप,
अनुरूप गनि तुम्हैं आई केलियै अकेलियै ॥१०॥

अथ मुद्रालंकार-वर्णनं—(दोहा)

औरौ अर्थ कबित्त को, सब्दौछल ब्यौहारु।
झलकै नाम कि नामगन, औरस मुद्रा चारु ॥११॥

यथा—(कबित्त)

जबहीँ ते दास मेरी नजरि परी है वह,
तबहीँ ते देखिबे की भूख सरसति है।
होन लाग्यो बाहिर कलेस को कलाप उर,
अंतर की ताप छिन छिनहीँ नसति है।
चलदल-पान से उदर पर राजी रोम-
राजी की बनक मेरे मन मैं बसति है।
रसराज-स्याही सौँ लिखी है नीकी भाँति काहू,
मानो जंत्रपाँति घन-अच्छरी लसति है ॥१२॥

---

[१०] लेखी—लखी (सर०)। असमसरी—समसरि (वही); प्रसमसरी (वेंक०)। समसरी—समसदि (सर०)। दीबे०—देबे को न फैलिये (वेंक०)। अरस०—रस मैं अरस (भारत, बेल०)। बेगि—बेगै (सर०)।

[११] औरौ—औरै (सर०)। औरस०—मुद्रा कहत सु चारु (बेल०)।

[१२] सरसति—सरसाति (सर०); सरसत (बेल०)। से—सी (भारत, बेल०)। नसति—नसाति (सर०); नसत (बेल०)। बसति, लसति—बसत, लसत (वही)।

अस्य तिलक

घनाक्षरी छंद को नाम है। १२ अ ॥

नामगण, यथा–(कबित्त)

दास अब को कहै बनक लोन नैनन की,
सारस ममोला बिन अंजन हराए री।
इनको तौ हाँसो वाके अंग मैं अगिनि बासो,
लीलहीं जु सारो सुख-सिंधु बिसराए री।
परे वे अचेत हरे वै सकल चिरु चेत,
अलक-भुजंगी-डसे लोटन-लोटाए री।
भारथ अकर करतूतिन निहारि लही,
यातैं घनस्याम लाल तो ते बाज आए री ॥१३॥

वक्रोक्ति-लक्षणं–(दोहा)

द्वर्थ काकु तैं अर्थ को, फेरि लगावै तर्क।
बक्रउक्ति तासौं कहैं, जे बुधि-अंबुज-अर्क ॥१४॥

यथा–(कबित्त)

आजु तौ तरुनि कोपजुत अवलोकियत,
रितु रीति ह्वैहै दास किसलै निदान जू।
सुमन नहीं तो यह ह्वैहै देखे घनस्याम,
कैसी कहौ बात मंद सीतल सुजान जू।
सौहैं करौ नैन हमैं आन नहीं आवै करि,
आनन की बूझि आन बीर ही की आन जू।
क्यों है दलगीर रहि गए कहूँ पीरे पीरे,
एते मान मान यह जानै बागवान जू ॥१५॥

[१२अ] 'भारत, वेंक०' मैं नहीं है।

[१३] ममोला–खंजन (भारत, वेंक०)। हाँसो–हासु (बेल०)। बासो–बास (वही)। सुख–सुआ (सर०); सुक (भारत)। हरे–हरै (भारत); रहैं (वेंक०); हरैं (बेल०)। सकल०–चित चेत सकल (भारत, बेल०)। भारथ–भारत (भारत, वेंक०, बेल०)। लही–लई (भारत, बेल०)। यातैं–बने (सर०)।

[१४] बुधि–बुध (बेल०)।

[१५] रितु०–री तौ० (सर०); होय ह्वै कै (वेंक०)। देखे–देखो (भारत,

कैसो कहो कान्ह सो तो हौँ ही खरो एक अब,
सहस मैँ जैसे एक राधा रस भीजिये।
गहिये न कर होत लाखन को ज्यान लाल,
चाहिये तौ आपनो पदुम हमै दीजिये।
नील के बसन क्यौँ बिगारत हौ वेही काज,
बिगरै तौ हम पै बदल संख लीजिये।
देखती करोरि बारी संगिनी हमारी है,
अरब्बीवारे हम संग संका कत कीजिये ॥१६॥

काकुवक्रोक्ति-वर्णनं–(सवैया)

लाल ये लोचन काहे, प्रिया हैँ दियो ह्वैहै मोहन रंग मजीठी।
मोतेँ उठी है जु बैठे अरीति की सीठी क्यौँ बोलौ मिलाइ ल्यौ मीठी।
चूक कहौ किमि चूकत सो जिन्हैँ लागी रहै उपदेस-बसीठी।
झूठी सबै तुम साँचे लला यह झूठी तिहारहू पाग की चीठी ॥ १७ ॥

अथ पुनरुक्तवदाभास-वर्णनं–(दोहा)

कहत लगै पुनरुक्त सो, पै पुनरुक्त न होइ।
पुनरुक्तवदाभास तिहि, कहैँ सकल कबि-लोइ ॥ १८ ॥

बेल०)। करौ–करै (सर०)। आवै०–करि आवै (वही)। आनन०–आन तौ बूझो (भारत, बेल० ; आन की बुझिय (वेंक०)। बीर०–बिरही (भारत, बेल०)। पीरे०–पीर ए री (बेल०) एते–एतो (भारत, बेल०)।

[१६] कहो–कहै (वेंक०) कान्ह–कान (सर०)। ज्यान–जान (भारत, बेल०)। चाहिये–वाहि ये (वेंक०)। आपनो०–अपनो० (सर०); आपनो पदुम उभै (भारत); आपनोई पद मोहि (बेल०)। वेही–वही (भारत, बेल०); यौँ ही (वेंक०)। अरब्बी–अरथी (भारत); अरघी (बेल०)। कत-कंत (भारत, वेंक०)।

[१७] दियो–दिये (भारत, बेल०)। मोतेँ–मोतो (सर०, वेंक०)। बोलौ–बोलै (भारत, वेंक०, बेल०)। ल्यौ–यौँ (वेंक०)। चूकत–चूकति (भारत, वेंक०, बेल०)। तुम–जग (वेंक०)। तिहारहू–तिहारे सु (भारत); तिहारिहू (वेंक०); तिहारेउ (बेल०)। पाग–पाप (वेंक०)।

अली भँवर गुंजन लगे, होन लग्यो दल पात।
जहँ तहँ फूले बृच्छ तरु, प्रिय प्रीतम कित जात ॥ १९ ॥

इति श्रीसकलकलाधरकलाधरवंशावतंसश्रीमन्महाराजकुमार-
श्रीबाबूहिंदूपतिविरचिते काव्यनिर्णये श्लेषालंकारादि-
वर्णनं नाम विंशतितमोल्लासः ॥ २० ॥

२१

अथ चित्रालंकार-वर्णनं—(दोहा)

दास सुकबि-बानी थकै, चित्र-कबित्तनि माहिँ।
चमत्कारहीनार्थ को, इहाँ दोष कछु नाहिँ ॥ १ ॥
ब व ज य बर्ननि जानिये, चित्रकाव्य मैँ एक।
अर्धचंद्र को जनि करौ, छूटे लगे बिबेक ॥ २ ॥
प्रस्नोत्तर पाठांतरो, पुनि बानी को चित्र।
चारि लेखिनी-चित्र को चित्रकाव्य है मित्र ॥ ३ ॥

अथ प्रश्नोत्तर-चित्र-लक्षणं—(दोहा)

प्रश्नोत्तर चित्रित करै, सज्जन सुमति उमंग।
द्वै बिधि अंतरलापिका, बहिरलापिका संग ॥ ४ ॥
गुप्तोत्तर उर आनिकै, ब्यस्त समस्तहि जान।
एकानेकोत्तर बहुरि, नागपास पहिचानि ॥ ५ ॥
है क्रमब्यस्त समस्त पुनि, कमलबंधवत मित्र।
सुद्ध गतागत सृंखला, नवम जानिये चित्र ॥ ६ ॥
अगनित अंतरलापिका, यौँ बरनत कबिराइ।
बहिरलापि जानो उतर, छंद बाहिरे पाइ ॥ ७ ॥

---

[१९] लग्यो—लगे (सर०)।
[३] को—लै (सर०) है—मै (वही)।
[७] जानो—कानो (सर०)।

गुप्तोत्तर-लच्छणं–(दोहा)

बाच्यांतर सब्दच्छलन, उत्तर देइ दुराइ।
गुप्तोत्तर तासौं कहैं, सकल सुमति-समुदाइ ॥८॥

यथा

सब तनु पिय बरन्यो अमित, कहि कहि उपमा-बैन।
सुंदरि भई सरोष क्यौं, कहत कमल-से नैन ॥९॥

अस्य तिलक

कमल से कहे कम सोभित भए। ९ अ ॥

सुत सपूत संपति भरी, अंग अरोग सुढार।
रहै दुखित क्यौं कामिनी, पीउ करै बहु प्यार ॥१०॥

अस्य तिलक

बहु प्यार कहे बहुतन्ह कौं प्यार करतु है। १० अ ॥

व्यस्तसमस्तोत्तर-वर्णनं–(दोहा)

द्वै त्रय बरननि काढ़ि पद, उतर जानिये व्यस्त।
व्यस्तसमस्तोत्तर वही, पिछिलो उतर समस्त ॥११॥

यथा

कौन दुखद, को हंस सो, को पंकज-आगार।
तरुन-जनन को मनहरन को, करि चित्त बिचार ॥१२॥
कौन धरे है धरनि को, को गयंद-असवार।
कौन मृडानी को जनक है, *परबतसरदार* ॥१३॥

अस्य तिलक

पर,बत,सर,दार,परबत,सरदार, परबतसरदार यौं उत्तर जानिये ।१३अ

---

[८] बाच्यांतर–बाच्यअंत (सर०, भारत, वेंक०)।

[९अ] कम–कमल (सर०, वेंक०) । भए–भए क अर्थात् जल का मल (भारत)।

[१०] पीउ–पीय (बेल०)।

[१०अ] कौं–कह (सर०) ।

[११] उतर०–उत्तर जानिय (सर०) ।

[१३] ०हरन–०हरनि (भारत, वेंक०)। मृडानी–भवानी (भारत, बेल०); मृगन (वेंक०)।

[१३अ] × (वेंक०)। यौं उत्तर जानिये–× (सर०)।

एकानेकोत्तर-लक्षण–(दोहा)

बहुत भाँति के प्रस्न को उत्तर एक बखानि।
एकानेकोत्तर वही, अनेकार्थ-बल मानि ॥१४॥

यथा

बरो जरो, घोरो अरो, पान सरो क्यौं दार।
हितू फिरो क्यौं द्वार तैं, *हुतो न फेरनिहार* ॥१५॥
कारो कियो बिसेषि कै, जावक कहा सभाग।
काहे रँगि गो भौंर-पद, पंडित कहै *पराग* ॥१६॥
कैसी नृपसेना भली, कैसी भली न नारि।
कैसी मग बिनु वारि की, *अति रजवती* बिचारि ॥१७॥

नागपाशोत्तर-वर्णनं

इक इक अंतर तजि बरन, द्वै द्वै बरन मिलाइ।
नागपासउत्तर यही, कुंडल-सरिस बनाइ ॥१८॥

यथा–(सोरठा)

कहा चंद मैं स्याम, छत्रिन को गुन कौन कहि।
कहा संबतहि नाम, पारसीक-बासी कहैं ॥१९॥
कहा रहै संसार, बाहन कहा कुबेर को।
चाहै कहा भुआर *दास* उतर दिय *सरसजन* ॥२०॥

क्रमव्यस्तसमस्त-लक्षण–(दोहा)

इक इक बरन बढ़ावते, क्रम तैं लेहु समस्त।
यह प्रस्नोत्तर जानिये, है समस्तक्रमव्यस्त ॥२१॥

---

[१५] फिरो–फिरयो (भारत, वेंक०)। हुतो–हुत्यो (भारत, वेंक०, बेल०)।
[१६] कियो–किए (सर०)। कै–को (भारत, बेल०)। जावक पावक (भारत, वेंक०)।
[१७] कैसी मग–कैसो मग (बेल०)। की–को (वही)।
[१८] मिलाइ–मिलाउ (सर०)। बनाइ–बनाउ (वही)।
[१९] कहि–कहु (भारत)।
[२१] है०–इह० (भारत, वेंक०); सक्रमसमस्तव्यस्त (बेल०)।

यथा-(सोरठा)

कौन बिकल्पी बर्न, कहा बिचारत गनकगन।
हरि ह्वैकै दुखहर्न, काहि बचायो ग्रसत छन ॥२२॥
कै बाँ प्रभु अवतार, क्यौं बारै राई-लवन।
कौन सिध्धिदातार दास कह्यो *बारनबदन* ॥२३॥

अस्य तिलक

वा, बार, बारन, बार नब, बारन बद, बारनबदन । २३ अ ॥

कमलबंधोत्तर, यथा-(दोहा)

अच्छर पढ़ौ समस्त को, अंत बरन सौं जोरि।
कमलबंधउत्तर वही, ब्यस्तसमस्त बहोरि ॥२४॥

(छप्पय)

कह कपीस सुभ अंग, कहा उछरत बर बागन।
कहा निसाचर-भोग, माह मैं दान कौन भन।
कहा सिंधु मैं मथ्यो, सेतु किन कियो, को दुतिय।
सरसिज किते सकंट कहा लखि घिना होति हिय।
किहि दास हलायुध हाथ धरि मार्यो महा प्रलंब खल।
क्यौं रहत सुचित साकत सदा, *गनपतिजननीनामबल* ॥२५॥

शृंखलोत्तर-लक्षण-(दोहा)

दुद्वै गतागत लेत चलि, इक इक बरन तजंत।
नाम सृंखलोत्तर वही, होत समस्त जु अंत ॥२६॥

---

[२२] कौन-कवन (भारत, बेल०)।
[२३] बाँ—वो (भारत); वा (बेल०)।
[२३अ] ०बदन-०बदन, क्रम से प्रश्नों के उत्तर हैं (भारत)।
[२४] वही-वहै (बेल०)।
[२५] माह-माघ (बेल०)। साकत-सोवत (भारत)। तिलक 'भारत' की पादटिप्पणी मैं दिया है अर्थ समझाते हुए। 'बेल०' मैं भी आधुनिक टिप्पणी दी है। अन्यत्र कुछ नहीं।
[२६] दुद्वै-द्वै द्वै (बेल०)।

यथा-(सवैया)

छबिभूषन को, जन को हर को, सुर को घर को, सुभ को नरु-ती ।
किहि पाए गुमान बढ़ै, किहि आए घटै, जग मैं थिर कौन दुती ।
सुभ जन्म को *दास* कहा कहिये, वृषभान की राधिका कौन हुती ।
घटिका निसि आजु सु केती अली, किहि पूजहिगी, *नगराजसुती* ॥२७॥

अस्य तिलक

नग, [गन], गरा, [राग], राज, [जरा], जसु, [सुज], सुती, [तीसु], नगराजसुती । २७ अ ॥

गतागत दूजी शृंखला-लक्षणं-(दोहा)

पहिले गत चलि जाइये, अगत चलिय पुनि व्यस्त ।
इहौ स्रृंखलोत्तर गुनौ, पुनि गतअगत समस्त ॥ २८ ॥

यथा-(कबित्त)

को सुघर, कहा कीन्ही लाज गनिकानि, को
पढ़ैया खग, मोहै काहे मृग, कहाँ तपी बस ।
कहा नृप करै, कहा भू मैं बिसतरै, कहा
जुवा छबि धरै; को है *दास*-नाम, कै हैँ रस ।
जीतै कौन, कौन अखरा की रेफ, कैकै कहा
कहैँ, क्रूर-मीत राखै कहा कहि घोस दस ।
साधु कहा गावै, कहा कुलटा सती सिखावै,
सबको उतर *दास* *जानकीरवनयस* ॥२९॥

अस्य तिलक

जान, न की, कीर, रव, बन, नय, यस, [सय = सज, यन = जन, नव, वर, र की, कीन, न जा, जानकीरवनयस, सयन वर की न जा] । २९ अ ॥

---

[२७] जन—जप (भारत); जय (वेंक०, वेल०) । को नरु०—कौन रुती (सर्वत्र) ।

[२७अ] नग···सुती—X (भारत) । नगराजसुती—X (वेंक०) ।

[२८] गुनौ—गनौ (भारत, वेंक० वेल०) ।

[२९] काहे—कहा (भारत, बेल०) । कहि—कहैँ (भारत) ।

[२९अ] 'भारत' की पादटिप्पणी मैँ पूरा तिलक है, अर्थ समझाते हुए । 'बेल०' मैँ भी आधुनिक टिप्पणी पूर्ववत् है । यस—यस जानकीरवन यस (वेंक०) ।

चित्रोत्तर-वर्णनं-(दोहा)

जोई अच्छर प्रस्न को, उत्तर ताही माह।
चित्रोत्तर ताही कहैं, सकल कबिन के नाह ॥ ३० ॥

यथा-(सवैया)

कौन परावन देव सतावन, को लहै भार धरे धरती को।
को दस ही मैं सुन्यो जित ठौरनि, को बिद सो दिगपालन टीको।
जानत आपु को बूंद समुद्र मैं, का मैं सरूप सराहिये नीको।
का दरबार न सोहत सूरन, को पजरावत पुन्य तपी को ॥ ३१ ॥

इति अंतर्लापिका

बहिर्लापिकाउत्तर-वर्णनं-(कवित्त)

को गन सुखद, काहे अंगुली सुलच्छनी है,
देत कहा घन, कैसो बिरही को चंदु है।
जालै क्यौं तुकारै, कहा लघु नाम धारै, कहा
नृत्य मैं बिचारै, कहा फाँदो ब्याध फंदु है।
कहा दै पचावै फूटे भाजन मैं भात, क्यौं
बालावै कुस भ्रातु, कहा बृष बोलु मंदु है।
भू पै कौन भावै, खग-खेलै को नठावै, प्रिया
फेरै कहि कहा, कहा रोगिन को बंदु है ॥ ३२ ॥

अस्य तिलक

यगन, जव, वल, जवाल, लव, जलवा, वाल, लय, लवा, लवा, लवा यवा, वाज, वाल, लवाय, वायल [य, यवा=जवा, यल=जल, यवाल=जवाल, जलवा, ल, लय, लवा, लयवा (लेवा), लवाय, (लव + आय), वा (वाँ), वाल (बाल), वाय=बाज, बालय (बाले), वायल (वातल)]। ३२ अ ॥

---

[३०] ताही०—ताकौं कहत (बेल०)।

[३१] जित—जन (सर०); जिन (वेंक०)। को बिद सो-कीन्ह्यं दसो (सर०, भारत, वेंक०)। बूंद—बंद (बेल०)।

[३२] काहे—कहि (सर०)। अंगुली—अँगरी (बेल०)। घन—घन (सर०, वेंक०) जालै०—जारै को तुषारै (बेल०)। को नठावै—कौन सनै [को नसावै ?] (सर०, भारत, वेंक०)।

(दोहा)

खचि त्रिकोन *य ल वा* हि लिखि, पढ़ौ अर्थ मिलि ज्यौँ हि।
उतरु सर्बतोभद्र यह, बहिरलापिका यौँ हि ॥३३॥
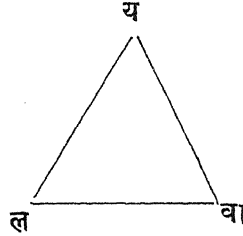
पाठांतर-चित्र-(दोहा)

बरन लुपे बदले बढ़े चमत्कार ठहराइ।
सो पाठांतर चित्र है, सुनौ सुमति-समुदाइ ॥३४॥

वर्णलुप्त-वर्णनं-(चौपाई)

*त*मोल मँगाइ धरौ इहि बारी। *मि*लिबे की जिय मैँ रुचि भारी।
*क*न्हाइ फिरै कब धौँ सखि प्यारी। *बि*हार कि आजु करौ अधिकारी ॥

अस्य तिलक

सिरे को एक एक बर्न छोड़ि पढ़े दूसरो अर्थ। ३५ अ ॥

मोल मँगाइ धरौ इहि बारी। लीबे की जिय मैँ रुचि भारी।
न्हाइ फिरै कब धौँ सखि प्यारी। हार की आजु करौ अधिकारी ॥३६॥

---

[३३] य ल वा०—व ल याहि (सर०); ब ल वाहि (वेंक०)।

[३४] लुपे—लुये (वेंक०)। पाठांतर—पाठोत्तर (वेंक०)।

[३५] मिलिबे—मिलैबे (वेंक०)। की—की है (सर०, भारत); कि है (वेंक०)। कन्हाइ—कन्हाई (भारत, वेंक०)। धौँ—लौँ (बेल०)।

[३५अ] सिरे—सिर (वेंक०)। पढ़े—पढ़ै तौ (भारत, वेंक०)। अर्थ—अर्थ निकलै (भारत)।

[३६] लीबे०—लिबे की है (सर०); लीबे कि है (भारत); लेबे कि है (वेंक०)। जिय—मन (सर०, वेंक०)। धौँ—लौँ (बेल०)।

यथा-(दोहा)

मत्तगमै मिलिबो भलो नहिँ बातुल सोँ लाल।
नहिँ समुझ्यो, दुहुँ सब्द को मध्य लोपिये हाल ॥३७॥

अस्य तिलक

मग मैँ मिलिबो भलो नहिँ बाल सोँ। ३७ अ ॥

वर्ण बदले, यथा-(कवित्त)

साज सब जाको बिन माँगे करतार देत,
परम अधीस बस भूमि थल देखिये।
दासी दास केते करि लेत सधरम तैँ,
सलज्जन सहिंमति सहर्ष अवरेखिये।
सीलतन सिरताज सखन बढ़ाए ज्यौ,
सकल आसै साँचु मैँ जगत जस पेखिये।
हिंदूपति-गुन मैँ जे गाए मैँ सकारै ताकौँ,
बैरिन मैँ क्रम तैँ नकारै करि लेखिये ॥३८॥

अस्य तिलक

सकारन्ह की ठौर नकार करि पढ़े दूसरो अर्थ, बर्न बढ़े को पहिले लुप्त ही तैँ जानबी। ३८ अ ॥

वाणीचित्र-वर्णनं-(दोहा)

बरनि निरोष्ठ अमत्त पुनि, होत निरोष्ठामत्तु।
पुनि अजिह्व नियमित बरन, बानीचित्रहि तत्तु॥ ३९ ॥

---

[३७] मत्तगमै–मत मगमै (सर०); मग मैँ (भारत); मारग मैँ (बेल०)। मिलिबो–मिलिबी (वेंक०)। समुझ्यो–समुझ्यौ (सर०, वेंक०); सोहैं (बेल०)।

[३७अ] भलो०–भल नहीँ (सर०); लो नहीँ (वेंक०)। सौँ–सौँ, बातुल का मध्य अक्षर तु लोप कर दो (भारत)।

[३८] बस–सब (भारत, वेंक०, बेल०)।

[३८अ] 'भारत' मैँ आधुनिक खड़ी बोली मैँ है। 'अर्थ...जानबी' के बदले 'बिलकुल उलटा अर्थ हो जाता है' दिया है। 'सकारन्ह...पढ़े'–X (वेंक०)।

निरोष्ठ-लक्षणं

छाड़ि पबर्ग उ ओ बरन, और बरन सब लेहु।
याको नाम निरोष्ठ है, हिये धरौ निसँदेहु ॥४०॥

यथा—(कवित्त)

कन हैँ सिँगार रस के करन जस ये
सघन घन आनँद की झर जे सँचारते।
दास सरि देत जिन्हैँ सारस के रस रसे
अलिन के गन खन खन तन झारते।
राधादिक नारिन के हिय की हकीकति,
लखे तैँ अचरज रीति इनकी निहारते।
कारे कान्ह कारे कारे तारे ये तिहारे जित
जाते तित राते राते रंग करि डारते ॥४१॥

अमत्त-लक्षणं—(दोहा)

एक अ बरनै बरनिये, इ उ ऐ औ कछु नाहिँ।
ताहि अमत्त बखानिये, समुझौ निज मन माहिँ ॥४२॥

यथा—(छप्पय)

कमलनयन पदकमल कमलकर अमलकमल-धर।
सहस सरद-ससधरन-हरनमद लसत बदन-बर।
रहत सजन-मन-सदन हरष छन छन तत बरसत।
हर कमलज सम लहत जनमफल दरसन दरसत।
तन सघन सजल-जलधर-बरन, जगत धवल जस बसकरन।
दसबदन-दरन अमरन बरन, दसरथतनय-चरन-सरन ॥४३॥

---

[४०] हिये०—हियो० (भारत); हिय धर निःसंदेहु (वेंक०)।

[४१] कन—कौन (भारत, वेल०)। के करन०—जस ये सघन घन घन घन कैसे (बेल०)। जे—ते (भारत, बेल०)।

[४२] अबरनै—औरनै (भारत, वेंक०)। इ उ०—इ ऊ ये (सर०); इ उ ये औ० (भारत); र उ ये औ० (वेंक०); इ ऊ ए ऐ औ नाहिँ (बेल०)।

[४३] हरन०—मदन हरन (सर०)। बर—पर (वही)। रहत—हरत (वही)। सजन—रतन (भारत, वेंक०)। हर—हरष (सर०)। सम—स (वही)

निरोष्ठामत्त-वर्णनं-(दोहा)

पढ़त न लागै अधर अरु, होइ अमत्ता बर्न।
ताहि निरोष्ठामत्त कहि, कहैं सुकबि मनहर्न ॥४४॥

यथा-(छप्पय)

कहत रहत जस खलक सरद-ससधरन-झलक तन।
रजत-अचल घर सजत कनक-धन नगन सकल गन।
जल अरचत घन सतन हरष अनगन घर सरसत।
हतन अतन-गन जतन करत छन दरसन दरसत।
जल-अनघ जरद अलकन लसत, नयन अनलधर गरलगर।
जन-दरद-दरन असरन-सरन, जय जय जय अघहरन हर ॥४५॥

अजिह्व-वर्णनं-(दोहा)

जित ह बर्न अ-कबर्ग तित और न आवै कोइ।
ताहि अजिह्व बखानहीं, जिह्वा चलित न होइ ॥४६॥

यथा-(सवैया)

खाइहै घीअ अघाइहै हीअ गहागहै गीअ अहे कहा खंगा।
है है कहाँ की कहाँ की है खै खै ए गेह के गाहक खेह है अंगा।
काहे कौं घाइ गहै अघओघ कौं काक की कीक कहा किए कंगा।
गाइए गंगा कहाइए गंगा क ही गहे गंगा अहे कहै गंगा ॥४७॥

समन (वेंक०)। जनम-जन (सर०)। दस-सब (वेंक०)। अमरन०-अवढरढरन (सर०)।

[४४] कहैं०-बरनत कवि (बेल०)।

[४५] सतन-सनत (बेल०)। अतन-अनग (वेंक०)। गन-घन (सर०)। दरन-हरन (वही)।

[४७] घीअ-घीया (सर०); घीय (भारत, वेंक०, बेल०)। हीअ-हीया (सर०); हीय (भारत, वेंक०, बेल०)। गहागहे-गहगाहे (सर०)। गीअ-गीय (भारत, वेंक०, बेल०)। कहाँ की कहाँ को है-कही को है (वही)। ए-ये (वही)। खेह है-खेह के खेह है (वही)। घाइ-धाइ (बेल०)। गहै-है औ (भारत, वेंक०); गहौ (बेल०)। काक-काग (भारत, वेंक०, बेल०)। गाइए-गाइये (वेंक०)। कहाइए-कहाइये (वही)। क ही०-कहा गहै (भारत); कही कहै (बेल०)।

नियमित-वर्णन-(दोहा)

इक इक तेँ छब्बीस लगि होत बरन अधिकार ।
तदपि कह्यो हौँ सात लौँ, जानि ग्रंथबिस्तार ॥४८॥

एकवर्ण नियमित, यथा

ती तू ताते तीति, ते ताते तोते तीत ।
तीते ताते तत्तुतौ, तीतै तीतातीत ॥४९॥

द्विवर्ण नियमित, यथा

रोर मार रौरो रुरै, मुरि मुरि मेरी रारि ।
रोम रोम मेरो ररै, रामा राम मुरारि ॥५०॥

त्रिवर्ण नियमित, यथा

मनमोहन महिमा महा, मुनि मोहै मन माहिँ ।
महा मोह मैँ मैँ नहीँ, नेह मोहिँ मैँ नाहिँ ॥५१॥

चतुर्वर्ण नियमित, यथा

महरि निमोही नाह है, हरे हरे मन मानि ।
मान मरोरे मानिनी, नेह-राह मैँ हानि ॥५२॥

पंचवर्ण नियमित, यथा

कम लागै कमला-कला, मिलै मैनका कौनि ।
नीकी मैगल-गौनि कै, नीकी मैगल-गौनि ॥५३॥

षट्वर्ण नियमित, यथा

सदानंद संसार हित, नासन संसै त्रास ।
निस्तारन संतन सदा दरसन दरसत दास ॥५४॥

सप्तवर्ण नियमित, यथा-(कवित्त)

मधुमास मैँ री परा धरा पगु धारे माधो,
सीरे धीरे गौन सौँ सुगंध पौन परि गो ।

---

[४९] ताते-तीति (भारत) । तौ-ते (भारत, बेङ्क०) ।
[५०] 'सर०' मैँ छूट गया है । रौरो-रौरे (बेल०) ।
[५१] मरोरे-करोरे (स०) ।
[५४] संसै-संशय (भारत, वेंक०); संसय (बेल०) । संतन-संजय (वेंक०); संतन्ह (बेल०) ।

नीरे गै गै पुनि पुनि ररै न मधुर धुनि,
मानो मेरी रमनी मधुप सारे मरि गो।
पागे मनु प्रेम सौँ न नेम सम साधे मौन,
सिगरे परोसी पापी धाम सौँ निसरि गो।
रोस धरि गिरिधारी मन मैँ धँसै न री,
सुमनधनुधारी सर पैने पैने सरि गो ॥५५॥

लेखनीचित्र-वर्णनं-(दोहा)

खड्ग कमल कंकन डमरु, चंद्र चक्र धनु हार।
मुरज छत्रजुत बंध बहु, पर्बत बृच्छ कँवार ॥५६॥
बिबिध गतागत मंत्रिगति, त्रिपदि अस्वगति जानि।
बिमुख सर्बतोमुख बहुरि, कामधेनु उर आनि ॥५७॥
अच्छरगुप्त समेत हैँ, लेखनि-चित्र अपार।
बरनन-पंथ बताइ मैँ दीन्हो मति अनुसार ॥५८॥

खड्ग-बंध

हरि मुरि मुरि जाती उमगि, लगि लगि नैन कृपान।
ताते कहिये रावरो, हियो पखान समान ॥५९॥

कमल-बंध

छनु दनुजनु तनु प्रानुहनु, भानुमानु हनु मानु।
ज्ञानुमातु जनु ठानु अनु, ध्यानु आनु हनुमानु ॥६०॥

कंकण-बंध (तोमर)

साहि दामवंत पानि। नाहि कामवंत मानि।
जाहि नाम संत खानि। ताहि नाम संत जानि ॥६१॥

---

[५५] परा–पर (सर०)। न नेम०–न मने समै (वही); न माने समै (वेंक०); मुनीसन्ह से (बेल०)। मैँ०–माह धँसै नारी (वही)। धनु०–धनुषधारी पै न सर सरि गो (वही)।

[५७] मंत्रि–मंत्र (भारत, वेंक०); मित्र (बेल०)।

[५९] नैन-नयन (भारत, बेल०)। कहिये–कहियत (वेंक०)।

[६०] भानु–मानु (सर०)। ठानु–प्रानु (वही)। मानु हनु–मानु अनु (भारत, बेल०)।

[६१] पानि–ठानि (बेल०)। नाहि–वाहि (वही)।

डमरु-बंध—(सवैया)

सैल समान उरोज बने मुखपंकज सुंदर मान नसै।
सैनन मार दई जुग नैनन तारे कसौटिन तारे कसै।
सैकरे तान टिके सुनिबे कहँ माधुरी बैन सदा सरसै।
सैरस *दास* नवेली के केस मनो घन सावन मास लसै ॥६२॥

चंद्र-बंध—(दोहा)

रहै सदा रनाहि मैं, रमानाथ रनधीर।
आनहु *दास्यो* ध्यान मैं, धरे हाथ धनुतीर ॥६३॥

चंद्र-बंध दूसरो

दनुज सदल मरदन बिसद, जसहद करन दयाल।
लहै सैन सुख हरत बस, सुमिरतही सब काल ॥६४॥

चक्र-बंध—(हरिगीत)

परमेस्वरी परसिद्ध है पसुनाथ की पतिनी प्रियो।
परचंड चाप चढ़ाइकै [परसैन छै पल मैं कियो।
खल छै करी सब क्वै कहै सरि जाहि की न कहूँ बियो।
पदपद्म चारु सु ध्याइकै करि *दास* छेमभर्‍यो हियो ॥६५॥

चक्र-बंध दूसरो-(छप्पय)

कर नराच धनु धरन नरकदारनो निरंजन।
जदुकुल-सरसिज-भानु नयरित्यन गारो-गंजन।
लख्ख दुश्रन-दल-दरन मध्य तूनीर जुगल तन।
चकित करन बर नरन बनक बर सरस दरस छन।
कहि *दास* कामजेता प्रबल, तेता देवन भै हरन।
यह जानि जान भाषै सदा कमलनयन-चरनन सरन ॥६६॥

---

[६२] सावन—साउन (बेल०)।

[६३] दास्यो—दासो (वेंक०)।

[६५] छै-छ्वै (सर०); छय (भारत)। सु ध्याइ—सुधारि (वेंक०)। छेम०—छेमद सो (भारत, बेल०)।

[६६] नयरित्यन—नैरित्यन (भारत); नइरितन (वेंक०); नयरितन (बेल०)। बर नरन—चरनरन (भारत, बेल०)। दरस०—दरलच्छन (वही)। तेता—नेता (वेंक०)।

धनुष-बंध-(दोहा)

तियतनु दुर्ग अनूप मैं, मनमथ निबस्यो बीर।
ह्वै लग लगत भ्रुअ धनुष, साधे निरखनि-तीर ॥६७॥

हार-बंध

सुनि सुनि पनु हनुमान किय, सिय-हिय धनि धनि मानि।
धरि करि हरि गति प्रीति अति, सुख रुख दुख दिय भानि ॥६८॥

मुरज-बंध [?]

जैति जो जनतारनी। कांति जो बिसतारनी।
सो भजो प्रनतारतै। छोभ जोजन तारतै ॥६९॥

छत्र-बंध-(छप्पय)

दनुजनिकर-दल दरन दानि देवतनि अभै बर।
सरद-सर्बरीनाथ बदन सत - मदन - गर्बहर।
तरुन-कमलदल नयन सिर ललित पाँखै सोभित।
लहि भो री मो बीर सुसम दुति तन मन लोभित।
तन सरस नीरप्रद नयहु तैं, मरकत-छबिहर कांतिबर।
ते *दास* परम सुखसदन जे, मगन रहत यहि रूप पर ॥७०॥

---

[६७] तिय–तिअ (बेल०)। भ्रुअ–भुअ (भारत, बेल०); भुव (वेंक०)। धनुष–धनुक (सर०)।

[६८] हिय–जिय (वेंक०)।

[६९] कांति–कीर्ति (भारत, बेल०)। प्रन०–प्रनतारनी (वही)। तारतै–तारनी (भारत); हारनी (बेल०)।

[७०] दरन–दलनि (भारत); दलन (बेल०)। गर्ब–गरब (वेंक०, बेल०)। पाँखै–पाँत्यैं (भारत); पंख (वेंक०); पंखै (बेल०)। मो–भो (भारत)। लहि–लखि (वेंक०, बेल०)। तन–तनु (वेंक०)। नीर–भीर (भारत)। नयहु–न नवहु (भारत); नवहु (वेंक०); नवहु (बेल०)। कांति–कोति (भारत)। 'भारत, बेल०' में यह 'पर्वत-बंध' के अनंतर है।

पर्वत-बंध-(सवैया)

कै चित चैहै कै तोपर दैहै लली तुव ब्याधिन सौं पचिकै।
नीरस काहे करै रस बात मैं देहि औ लेहि सुखै सचिकै।
नच्चत मोर करै पिक सोर बिराजतो भौंर घनो मचिकै।
कै चित है रवनी तन तोहि हितो नत नीवर है तचिकै ॥७१॥

वृक्ष-बंध--(छप्पय)

आए बृज-अवतंसु सुतिय रहि तकि निरखत छन।
सुरपति को ढँगु लाइ सुरतरुहि लिय निज धरि पन।
सु सति भावती पवरि सुछबि सरसत सुंदर अति।
सुमन धरे बहु बान सु लखि जीजति पच्छी जति।
केतकि गुलाब चंपक दवन, मरुअ नेवारी छाजहीँ।
कोकिल चकोर खजन धवर, कुरर परेवा राजहीँ ॥७२॥

कपाट-बंध-(दोहा)

भवपति भुवपति भक्तपति, सीतापति रघुनाथ।
जसपति रसपति रासपति, राधापति जदुनाथ ॥७३।

भवप	ति	पसज
भुवप	ति	पसर
भक्तप	ति	पसरा
सीताप	ति	पधारा
रघुना	थ	नादुज

गातागत-लक्षणं-(दोहा)

आधे ही तैँ एक जहँ, उलटे सीधे एक।
उलटे सीधे द्वै कबित, त्रिबिधि गतागत टेक ॥७४॥

---

[७१] चैहै-वैहै (वेंक०)। तुव-जिय (वही)।
[७२] आए-आयो (भारत)। सति-सत्य (सर०)।
[७४] जहँ०-जहँ उलटो सीधो (भारत, वेंक०, बेल०)।

आधे तैं एक, यथा-(दोहा)

रही अरी कब तै हिये, गसी सि निरखनि-तीर।
(रती निखर निसि सी गये हितै ब करी आहीर) ।।७५।।

[तिलक]

उलटि पढ़ै दोहा पूर भयौ। ७५ अ ।।

आधे तैं एक दूसरो छंद

दास मैन नमै सदा। दाग कोप पको गदा।
सैल सोनन सो लसै। सैन दैत तदै नसै ।।७६।।

दा	स	मै	न
दा	ग	को	प
सै	ल	सो	न
सै	न	दै	त

उलटे सीधे एक, यथा-(दोहा)

सखा दरद को री हरी, हरी को दरद खास।
सदा अकिलवानै गनै, गनै बाल किअ दास ।।७७।।

उलटे सीधे एक, यथा-(सवैया)

रे भनु गंग सुजान गुनी सु सुनी गुन जासु गगंनु भरे।
रेत कने अँग लौं लहि नेकु कुनेहिल लोग अनेक तरे।
रेफ समौरध जाहिर वास सवारहि जा धरमौ सफरे।
रेखत पानिहि जो हित दास सदा तहि जोहि निपात खरे ।।७८।।

---

[७५] 'भारत, वेंक०, बेल०' मैं यह ७६वाँ है। दोहा पूरा मूल मैं दिया गया है। 'सर०' मैं केवल पहला दल है।

[७५अ] 'तिलक' 'सर०' के अतिरिक्त कहीं नहीं है।

[७६] 'भारत, वेंक०, बेल०' मैं यह ७५वाँ है।

[७८] भनु—भजु (भारत, वेंक०, बेल०)। गगंनु—गगं जु (वही)। समौरध-समोरध (वही)। धरमौ—धर मो (वही)। पानिहि—पानहि (वही)। जो हिते—

उलटे सीधे द्वै, यथा–(दोहा)

न जानतहु यहि *दास* सौं, हँसौं कौन तन गैल ।
न आहिन यति दुरे बसौं, रमो न तब रस-सैल ॥७९॥

उलटे दूसरो, यथा

लसै सरब तन मोर सौं, बरे दुतिय नहिं आन ।
लगै न तनकौ सौंह सौं, सदा हियहु तन जान ॥८०॥

उलटे सीधे द्वै, यथा–(सवैया)

सी बनमालिहि हीन जलै महि मोहि दगो अति है तरलो ।
सीकर जी जरि हानि ठयो सु लयो कबि *दास* न चैत पलो ।
सील न जानति भाँतउ-सार दयाहि निरीखन है न भलो ।
सीस जलायो मलैजहु तैं यहि भीखमु जोन्ह न जान चलो ॥८१॥

उलटो दूसरो, यथा

लोचन जानन्ह जो मुख भी हिय तैं हु जलै मयो लाज ससी ।
लोभ न है न खरी निहिया दरसाउत भाँतिन जान लसी ।
लोपत चैन सदा बिकयो लसु ओठ निहारि जजीर कसी ।
लोरत है तिअ गोदहि मोहि मलैज नही हिलिमा नबसी ॥८२॥

त्रिपदी-लक्षणं–(दोहा)

मध्य बरन इक दुहुँ दलन, त्रिपदी जानहु सोइ ।
वहै मंत्रिगति अस्वगति, सुद्ध सु याहू दोइ ॥८३॥

प्रथम त्रिपदी, यथा

दास चारु चित चाय मय, महै स्याम छबि लेखि ।
हास हारु हित पाय भय, रहै काम दबि देखि ॥८४॥

जो हित (सर०. भारत, वेंक०) । तेहि–तिहि (वही) । निपात–नपात (भारत, वेंक०, बेल) ।

[८३] बरन–चरन (भारत, वेंक०, बेल०) । मंत्रि–मंत्र (वही) ।

[८४] चाय–चाइ (भारत, वेंक०, बेल०) ।

खड्ग-बंध
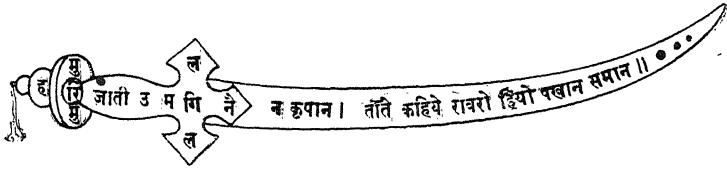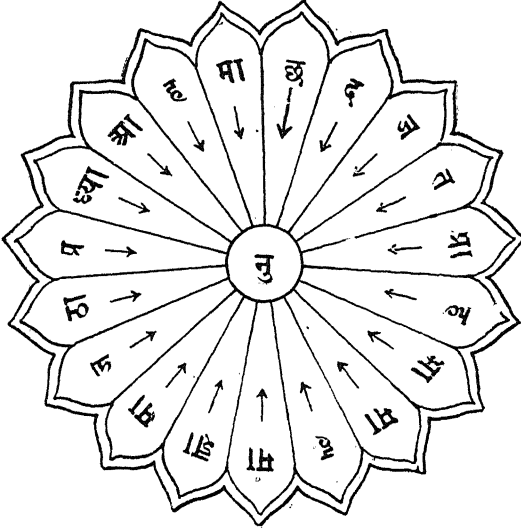
जाती उ म गि नै
न कृपान। ताँते कहिये रावरो हियो पखान समान॥
कमल-बंध
[काव्यनिर्णय, पृष्ठ २०३]
कंकण-बंध
साहिदामवंतपानि
ताहिनामसंतजानि
नाहिकामवंतमानि
[काव्यनिर्णय, पृष्ठ २०३]

डमरु-बंध
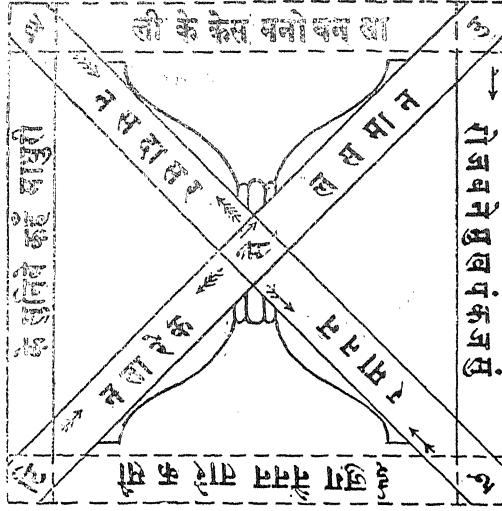
[काव्यनिर्णय, पृष्ठ २०४]

चंद्र-बंध—१

[काव्यनिर्णय, पृष्ठ २०४]

चंद्र-बंध—२

[काव्यनिर्णय, पृष्ठ २०४]

चक्र-बंध—१

[काव्यनिर्णय, पृष्ठ २०४]

चक्र-बंध—२

[काव्यनिर्णय, पृष्ठ २०४]

धनुष-बंध

[काव्यनिर्णय, पृष्ठ २०५]

हार-बंध
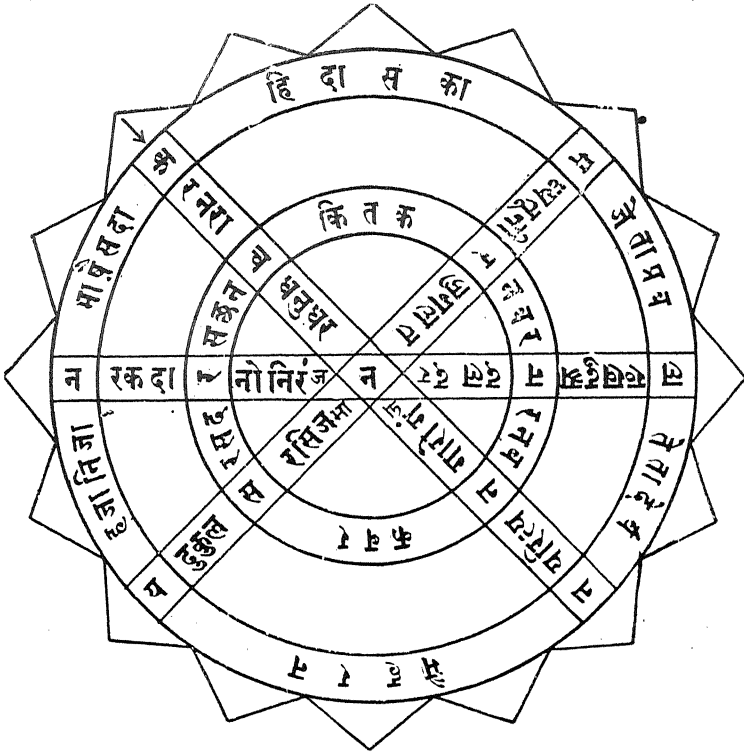
मुरज-बंध [काव्यनिर्णय, पृष्ठ २०५]
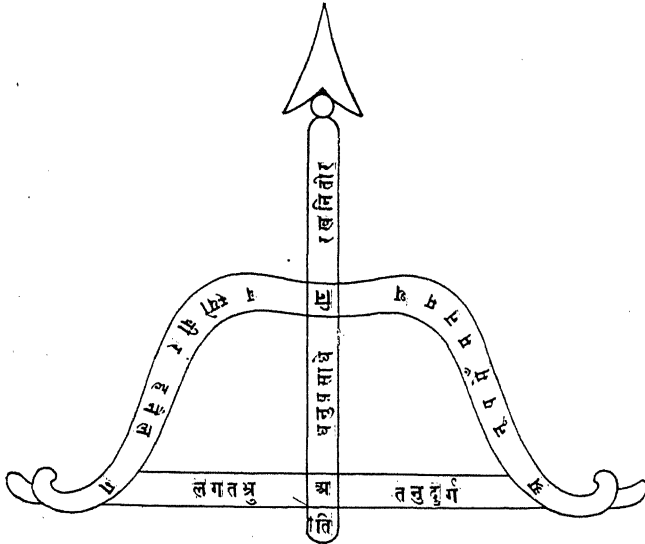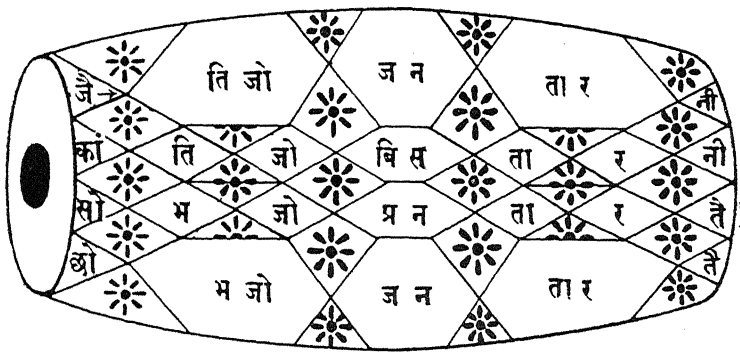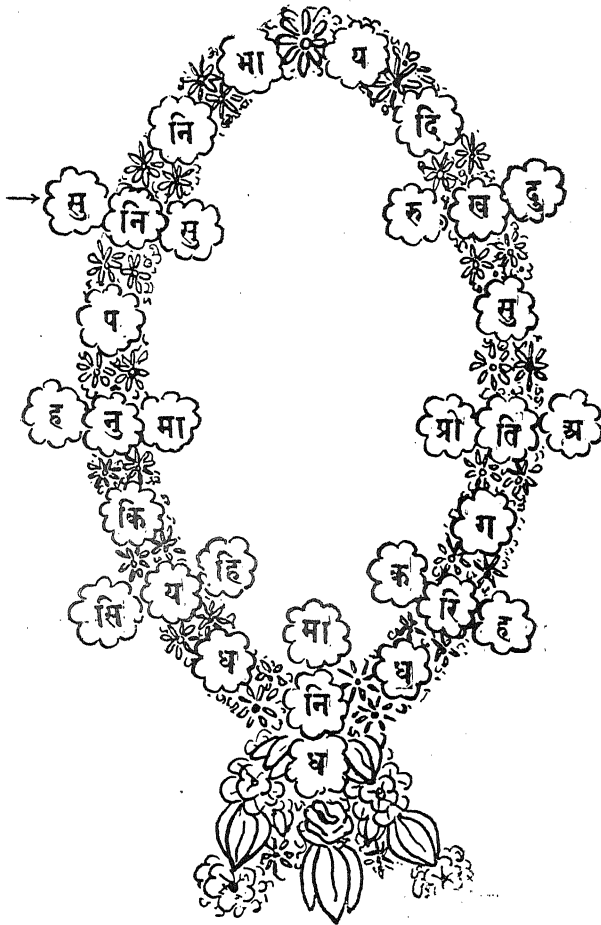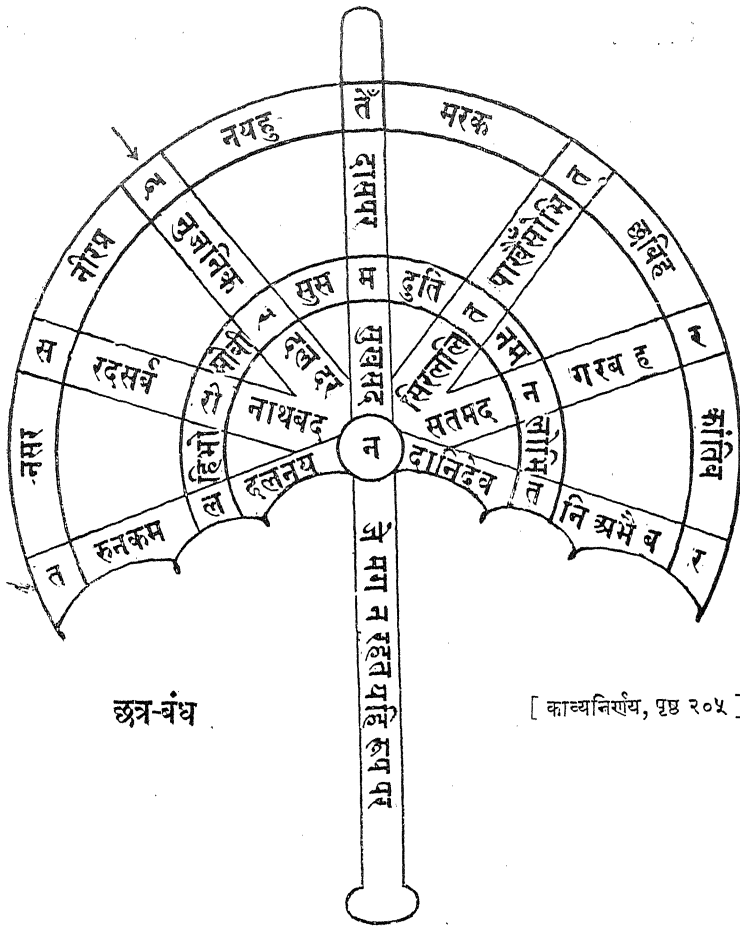
छत्र-बंध [काव्यनिर्णय, पृष्ठ २०५]
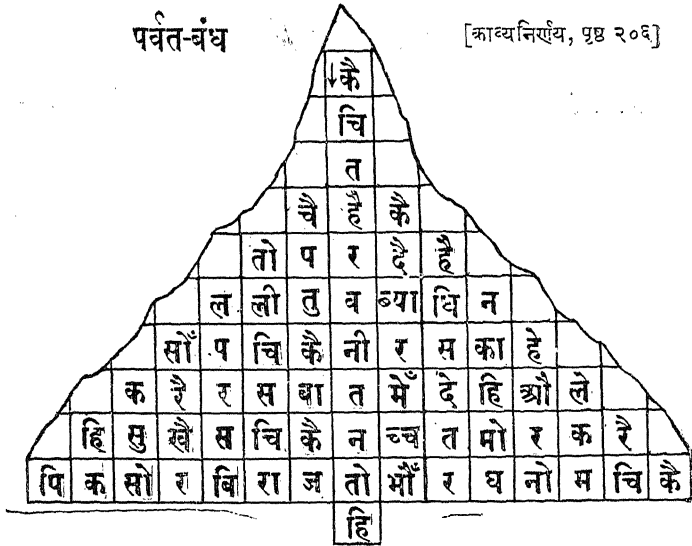
पर्वत-बंध [काव्यनिर्णय, पृष्ठ २०६]

वृत्त-बंध [काव्यनिर्णय, पृष्ठ २०६]

कपाट-बंध [काव्यनिर्णय, पृष्ठ २०६]

मंत्रिगति-बंध

ज	हाँ	ज	हाँ	प्या	रे	फि	रैं	ध	रे	हा	थ	ध	नु	बा	न
त	हाँ	त	हाँ	ता	रे	घि	रैं	क	रैं	सा	थ	म	नु	प्रा	न

[काव्यनिर्णय, पृष्ठ २०९]

अश्वगति-बंध

ज १	हाँ ९	ज २	हाँ १०	प्या ३	रे ११	फि ४	रैं १२
ध ५	रे १३	हा ६	थ १४	ध ७	नु १५	बा ८	न १६
त ९	हाँ १	त १०	हाँ २	ता ११	रे ३	घि १२	रैं ४
क १३	रे ५	सा १४	थ ६	म १५	नु ७	प्रा १६	न ८

[काव्यनिर्णय, पृष्ठ २०९]

कामधेनु-बंध
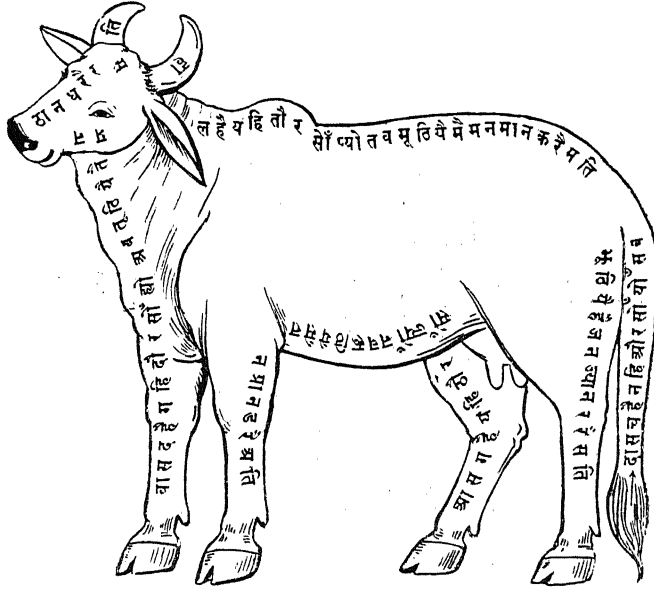
[काव्यनिर्णय, पृष्ठ २११]

द्वितीय त्रिपदी, यथा

दा	चा	चि	चा	म	म	स्या	छ	ले
स	रु	त	य	य	है	म	बि	खि
हा	हा	हि	पा	भ	र	का	द्	दे

जहाँ जहाँ प्यारे फिरैं, धरैं हाथ धनु बान।
तहाँ तहाँ तारे घिरैं, करैं साथ मनु प्रान ॥८५॥

ज	ज	प्या	फि	ध	हा	ध	बा
हाँ	हाँ	रे	रैं	रैं	थ	नु	न
त	त	ता	घि	क	सा	म	प्रा

मंत्रिगति-बंध, यथा

१ ज	९ हाँ	२ ज	१० हाँ	३ प्या	११ रे	४ फि	१२ रैं	५ ध	१३ रैं	६ हा	१४ थ	७ ध	१५ नु	८ बा	१६ न
९ त	१ हाँ	१० त	२ हाँ	११ ता	३ रे	१२ घि	४ रैं	१३ क	५ रैं	१४ सा	६ थ	१५ म	७ नु	१६ प्रा	८ न

अश्वगति, यथा

१ ज	९ हाँ	२ ज	१० हाँ	३ प्या	११ रे	४ फि	१२ रैं
५ ध	१३ रैं	६ हा	१४ थ	७ ध	१५ नु	८ बा	१६ न
९ त	१ हाँ	१० त	२ हाँ	११ ता	३ रे	१२ घि	४ रैं
१३ क	५ रैं	१४ सा	६ थ	१५ म	७ नु	१६ प्रा	न

सुमुख-बंध, यथा--(भुजंगप्रयात)

सुबानी निदानी मृडानी भवानी।
दयाली कृपाली सुचाली बिसाली।

बिराजै सुराजै खलाजै सुसाजै ।
सुचंडी प्रचंडी अखंडी अदंडी ॥ ८६ ॥

सुदानी	निदानी	मृडानी	भवानी
दयाली	कृपाली	सुचाली	बिसाली
बिराजै	सुराजै	खलाजै	सुसाजै
सुचंडी	प्रचंडी	अखंडी	अदंडी

सर्वतोमुख, यथा--(श्लोक)

मारारामुमुरारामारासजानिनिजासरा ।
राजारवीवीरजारामुनिवीसुसुवीनिमु ॥ ८७ ॥

मा	रा	रा	मु	मु	रा	रा	मा
रा	स	जा	नि	नि	जा	स	रा
रा	जा	र	वी	वी	र	जा	रा
मु	नि	वी	सु	सु	वी	नि	मु
मु	नि	वी	सु	सु	वी	नि	मु
रा	जा	र	वी	वी	र	जा	रा
रा	स	जा	नि	नि	जा	स	रा
मा	रा	रा	मु	मु	रा	रा	मा

कामधेनु-लक्षणं--(दोहा)

गहि तजि प्रति कोठनि बढ़ैं, उपजैं छंद अपार ।
व्यस्तसमस्त गतागतहु, कामधेनु-बिस्तार ॥ ८८ ॥

---

[८६] सुमुख-दुमुख (सर०) । कृपाली-कृपानी (वही) । खलाजै-पलाजै (वही) । सुसाजै-पराजै (वही) ।

[८८] गहि-गति (सर०) । बढ़ै-पढ़ै (वही) ।

कामधेनु-बंध, यथा—(सवैया)

दास	चहै	नहि	और	सौँ	यौँ	सब	झूठि	एहै	जन	जान	ररै	सति
आस	गहै	यहि	ठौर	सौँ	ज्यौँ	नव	रूठि	एसै	तन	प्रान	डरै	अति
वास	दहै	गहि	दौर	सौँ	ह्यो	अब	तूठि	एतै	प्रन	ठान	धरै	रति
हास	लहै	यहि	तौर	सौँ	प्यो	तव	मूठि	एमै	मन	मान	करै	मति

॥८६॥

चरणगुप्त, यथा—(ककुभ छंद)

री सखि कहा कहौँ छबि गुन गनि अलिन्ह बसायो काननि मैँ।
काननि तजि पुनि दृगनि बस्यो ज्यौँ प्रानी बिरमे थाननि मैँ।
क्रम क्रम दास रह्यो मिलि मन सौँ कढ़ै न बिबिधि बिधाननि मैँ।
लूटै ज्ञान समूहनि को अब भ्रमै बिहारी प्राननि मैँ ॥९०॥

५ ४ ३

	री	सखिक	हा	कहौँछ	बि	
	गु यो जि	नगनि काननि पुनिदृ	अ मैँ ग	लिन्हब कानन निबस्यो	सा त ज्यौँ	
६	प्रा	नीबिर	मे ६	थाननि	मैँ	२
	क्र लि धि	मक्रम मनसौँ बिधान	दा क नि	सरह्यो ढ़ैनबि मैँलूटै	मि बि ज्ञा	
७	न	समूह	नि	कोअब	भ्र	१

८

[९०] क्रमक्रम—कामक्रम (सर०)।

दूसरो अक्षरगुप्त, यथा–(कवित्त)

अभिलाषा करी सदा ऐसनि का होय नृत्थ,
सब ठौर दिन सब याही सेवा चरचानि ।
लोभा लई नीचे ज्ञान चलाचलही को अंसु,
अंत है क्रिया पाताल निंदा रसही को खानि ।
सेनापति देवी कर प्रभा गनती को भूप,
पन्ना मोती हीरा हेम सौदा हास ही को जानि ।
हीअ पर देव कर बदै जस रटै नाउँ,
खगासन नगधर सीतानाथ कौलपानि ॥ ६१ ॥

(दोहा)

भूषन छ्यासी अर्थ के, आठ वाक्य के जोर ।
त्रिगुन चारि पुनि कीजिये, अनुप्रास इक ठौर ॥ ६२ ॥
सब्दालंकृत पाँच गनि, चित्रकाव्य इक पाठ ।
एकइ रस ता दिक सहित, ठीक सै उपर आठ ॥ ६३ ॥

इति श्रीसकलकलाधरकलाधरवंशावतंसश्रीमन्महाराजकुमार-श्रीबाबूहिंदूपतिविरचिते काव्यनिर्णये चित्रकाव्यवर्णनं नाम एकविंशमोल्लासः ॥ २१ ॥

---

[६१] चलाचल–हलाहल (बेल०)। प्रभा–सोभा (वही) । (मिलाइए, छंदार्णव १।५) । 'सर०' मैं यह दोहा अधिक है—या कबित्त अंतर बरन लै तुकंत द्वै छंडि । दास नाम कुल ग्राम कहि रामभक्तिरस मंडि । (मिलाइए, छंदार्णव १।६)।

[६२] एक०–इकइस वातादिक (भारत, वेंक०, बेल०)। सै०–सतोपरि (वही) ।

२२

अथ तुक-निर्णय-वर्णनं-(दोहा)

भाषा-बरनन मैं प्रथम, तुक चाहिये बिसेषि।
उत्तम मध्यम अधम सो, तीनि भाँति को लेखि ॥१॥

उत्तमतुक-भेद

समसरि कहुँ कहुँ बिषमसरि, कहूँ कष्टसरि राज।
उत्तम तुक के होत हैं, तीनि भाँति के साज ॥२॥

समसरि, यथा-(कबित्त)

फेरि फेरि हेरि हेरि करि करि अभिलाष,
लाख लाख उपमा बिचारत हैं कहने।
बिधि ही मनावै जौ घनेरे दृग पावै तौ,
चहत याहि संतत निहारतहीँ रहने।
निमिष निमिष *दास* रीभत निहाल होत,
लूटे लेत मानो लाख कोटिन के लहने।
एरी बाल तेरे भाल-चंदन के लेप आगे,
लोपि जाते और के जराइन के गहने ॥३॥

अस्य तिलक

कहने रहने लहने गहने समसरि भए। ३ अ ॥

विषमसरि-(सवैया)

कंज सकोचे गड़े रहैं कीच मैं मीननि बोरि दियो दह-नीरनि।
दास कहै मृगहू कौं उदास कै बास दियो है अरन्य गँभीरनि।
आपुस मैं उपमा उपमेय ह्वै नैन ये निंदत हैं कबि धीरनि।
खंजनहूँ कौं उड़ाइ दियो, हलुके करि दीन्हे अनंग के तीरनि ॥४॥

---

[३] निहारतहीँ-निहारतहि (सर०)। के लेप-की लेप (वही)। जाते-जात (वही)।

[३अ] लहने-लहने और (भारत)। समसरि भए-X(भारत, वेंक०)।

[४] सकोचे-सकोचि (भारत, वेंक०, बेल०)। कौं-के (सर०)। हलुके-हलुको (सर०, वेंक०)। दीन्हे-दीन्हो (भारत, बेल०) ; दीन्ह्यो (वेंक०)।

अस्य तिलक

नीरनि गँभीरनि धीरनि तीरनि एक मैं चारि बर्न है तातैं बिषमसरि भए । ४ अ ॥

कष्टसरि

सात घरीहूँ नहीँ बिलगात लजात औ' बात गुने मुसकात हैँ ।
तेरी सौँ खात हौँ लोचन रात ह्वै सारसपातहू सोँ सरसात हैँ ।
राधिका माधौ उठे परभात हैँ नैन अघात हैँ पेखि प्रभा तहैँ ।
आरस गात भरे अरसात हैँ लागि सो लागि गरे गिरि जात हैँ ॥५॥

अस्य तिलक

प्रभा तहैँ, द्वै पद तैँ आयो तातैँ कष्टसरि है । ५ अ ॥

मध्यमतुक-वर्णनं–(दोहा)

असंयोगमिलि स्वरमिलित, दुर्मिल तीनि प्रकार ।
मध्यम तुक ठहरावते, जिनके बुद्धि अपार ॥६॥

असंयोगमिलित, यथा–(दोहा)

मोहिँ भरोसो जाउँगी, स्याम किसोरहि ब्याहि ।
आली मो अँखिया नतरु, इन्हैँ न रहतीँ चाहि ॥७॥

ब्याहि चाहि असंजोग है ब्याहि च्याहि चाहिये । ७ अ ॥

स्वरमिलित, यथा–(सवैया)

कछु हेरन के मिस हेरि उतै बलि आए कहा हौ महा बिष बै ।
दृग वाके झरोखनि लागि रहे सब देह दही बिरहागि मैँ तै ।
कहि *दास* बरैती न एती भली समुझौ बृषभानुलली वह है ।
खरी झाँवरी होत चली तब तैँ जब तैँ तुम आए हौ भाँवरी दै ॥८॥

अस्य तिलक

बिष बै, आगि मैँ तै, वह है, भाँवरी दै, यातैँ स्वरमिलित भए । ८ अ ॥

---

[५] औ'–सो (भारत, वेंक०, बेल०) । सौँ–तैँ (वही) । अरसात–अँगिरात (सर०) ।
[५अ] सरि– × (भारत, वेंक०) ।
[७अ] ब्याहि...है– × (भारत, वेंक०) । ब्याहि...चाहिये (सर०, वेंक०) ।
[८अ] × (भारत, वेंक०) ।

दुर्मिल, यथा—(सवैया)

चंद सो आनन राजतो तीय को चाँदनी सो उतरीय महुज्जल।
फूल से दास झरैं बतियान मैं हाँसी सुधा सी लसै अति निर्मल।
बाफते कंचुकी बीच बने कुच साफ ते तारमुलम्मे से श्रीफल।
ऐसी प्रभा अभिराम लखे हियरा मैं किये मनो धाम हिमंचल ॥९॥

अस्य तिलक

दूरि से तुक मिले तातैं दुर्मिल कहिये। ९ अ ॥

अधमतुक-वर्णनं—(दोहा)

अमिल-सुमिल मत्ता-अमिल, आदि अंत को होइ।
ताहि अधम तुक कहत हैं, सकल सयाने लोइ ॥१०॥

अमिल-सुमिल, यथा—(तोटक)

अति सोहति नींद भरी पलकैं।
श्रमबुंद कपोलन मैं झलकैं।
अरु भीजि फुलेलन की अलकैं।
अँखियाँ लखि लाल कि क्यों न छकैं ॥११॥

अस्य तिलक

पलकैं, झलकैं, अलकैं, छकैं, एक पद द्वै बर्न तें अमिल-सुमिल भयो। ११ अ ॥

आदिमत्त-अमिल, यथा—(तोटक)

मृदु बोलनि बीच सुधा स्रवती।
तुलसीबन बेलिन मैं भँवती।

---

[९] राजतो–राजत (भारत, बेल०)। मुलम्मे–मुलमे (सर०); मुलैमै (भारत, वेंक०); मुलम्म (बेल०)। से–औ (भारत, वेंक०, बेल०)। हियरा–हियरे (सर०)।

[९अ] × (भारत, वेंक०)।

[११] 'भारत, वेंक०, बेल०' मैं दूसरा चरण तीसरा है। सोहति–सोहती (सर०)। भरी–भरे (वही)। भीजि–भीजी (वही)। की–तैं (बेल०)। कि–की (सर०)।

नहिँ जानिय कौन कि है जुवती।
उहि तेँ अब औधि है रूपवती ॥१२॥

अस्य तिलक

स्रवती, भँवती, जुवती, रूपवती चारयौ तुक के आदिमत्ता अमिल हैँ। १२ अ ॥

अंतमत्त-अमिल, यथा-(दोहा)

कंजनयनि निज कंजकर, नैननि अंजन देति।
बिष मानो बानन भरति, मोहि मारिबे हेतु ॥१३॥

अस्य तिलक

देति, हेतु अंत के मत्ता अमिल हैँ। १३ अ ॥

अन्य तुक-वर्णनं-(दोहा)

होत बीपसा जामकी, तुक अपने ही भाउ।
उत्तमादि तुक आगे ही, है लाटिया बनाउ ॥१४॥

वीप्सा, यथा—(कवित्त)

आजु सुरराइ पर कोप्यो तमराइ, कछू
भेदनि बढ़ाइ अपनाइ लै लै घनु घनु।
कीनी सब लोक मैँ तिमिर अधिकारी तिमि-
रारि कौँ बेगारी लै भरावै नीर छनु छनु।
लोप दुतिवंतन को देखियत ब्याकुल
तरैयाँ भाजि आईँ फिरैँ जीगना ह्वै तनु तनु।

---

[१२] मैँ–मो (सर०)। जानिय–जानिए (वही)। कि–कै (वही)।
उहि–वहि (भारत, वेँक० बेल०)।

[१२अ] X (भारत, वेँक०)।

[१३] देति–देतु (भारत, वेँक०); देत (बेल०)। हेतु–हेत (बेल०)।

[१३अ] X (भारत, वेँक०)।

[१४] आगे–आदि (सर०)।

इंदु की बधूटी सब साजनि की लूटी खरी,
लोहू घूँट घूँटी वै बगरि रहीँ बनु बनु ॥१५॥

अथ तिलक

घनु [घनु], छनु छनु, तनु तनु, बनु बनु, एक पद द्वै बार आए ताते बीपसा भयो । १५ अ ॥

यामकी, यथा– (दोहा)

पाइ पावसै जो करै, प्रिय प्रीतम परि मान ।
दास ज्ञान को लेस नहिँ, तिन मैँ तिन-परिमान ॥१६॥

तिलक

परिमान द्वै तुक मैँ आयो दोनोँ के द्वै अर्थ हैँ। १६ अ ॥

लाटिया, यथा– (कबित्त)

तो बिनु बिहारी मैँ निहारी गति औरई मैँ,
बौरई के बृंदन समेटत फिरत हैँ।
दाड़िम के फूलनि मैँ दास दाख्यौ-दाना भरि,
चूमि मधुरसनि लपेटत फिरत हैँ।
खंजन चकोरनि परेवा पिक मोरनि,
मराल सुक भौँरनि समेटत फिरत हैँ।
कासमीर-हारनि कौँ सोनजुही-भारनि कौँ,
चंपक की डारन कौँ भेँटत फिरत हैँ ॥१७॥

तिलक

फिरत हैँ चाख्यौ पद मैँ है याते लाटिया है ।१७ अ ॥

इति श्रीसकलकलाधरकलाधरवंशावतंसश्रीमन्महाराजकुमार-
श्रीबाबूहिंदूपतिविरचिते काव्यनिर्णये तुकनिर्णय-
वर्णनं नाम द्वाविंशमोल्लासः ॥ २२ ॥

---

[१५] लै घनु–सघनु (सर०); लै घनु (भारत, बेल०) । देखियत–देखि-अति (भारत, वेंक०, बेल०) । इंदु–इंद्र (बेल०) । साजनि–साजन (वही) । घूँट०–घूँटि घूँटि (भारत, वेंक०, बेल०) ।

[१५अ] × (भारत, वेंक०) ।

[१६अ] × (भारत, वेंक०) ।

[१७] दाना–दानो (सर०) ।

[१७अ] × (भारत, वेंक०) ।

२३

अथ दोष-लक्षणं-(दोहा)

दोष सब्दहूँ वाक्यहूँ, अर्थ रसहु मैँ होइ।
तिहि तजि कबिताई करै, सज्जन सुमति जु कोइ ॥१॥

अथ शब्ददोष-वर्णनं-(छप्पय)

श्रुतिकटु भाषाहीन अप्रयुक्तो असमर्थहि।
तजि निहतारथ अनुचितार्थ पुनि तजो निरर्थहि।
अबाचको अस्लील ग्राम्य संदिग्ध न कीजै।
अप्रतीत नेयार्थ क्लिष्ट को नाम न लीजै।
अबिमृष्टबिधेय बिरुद्धमति, छँदसदुष्ट एक सब्द कहि।
कहुँ सब्द समासहि के मिले, कहूँ एक द्वै अक्षरहि ॥२॥

श्रुतिकटु, यथा-(दोहा)

कानन को जो कटु लगै, *दास* सु श्रुतिकटु-सृष्टि।
त्रिया अलक चक्षुश्रवा, डसै परतहीँ दृष्टि ॥३॥

अस्य तिलक

चक्षुश्रवा औ' *दृष्टि* सब्द ही दुष्ट हैँ, *दास सु श्रुतिकटु* यह वाक्य दुष्ट है तीनि सकारन की एकत्रता तेँ, *त्रिया* सब्द को रकार या दुष्ट है यामैँ तीन्यौ भाँति को श्रुतिकटु कह्यो। ३ अ ॥

---

[१] सुमति०–सुमति जो होइ (भारत, वेंक०) ; सुमती जोइ (बेल०)।

[२] नेयार्थ–नोअर्थ (सर०) ; नेअर्थ (भारत, वेंक०, बेल०)। एक–ये (वही)।

[३] सु–सो (बेल०)।

[३अ] दृष्टि सब्द–दृष्टि ये सब्द (भारत, वेंक०)। दास....त्रिया–श्रुति सब्द सकार के समास ते दुष्ट भयो त्रिया (भारत) ; श्रुति सब्द सकारन के समास ते दुष्ट भयो त्रिया (वेंक०)। को-मैं को (भारत, वेंक०)। या–ही (वही)। यामैँ–इहाँ (वही)।

भाषाहीन-लक्षण–(दोहा)

बदलि गए घटि बढ़ि गए, मत्त बरन बिन रीति।
भाषाहीननि मैं गनैं, जिन्हैं काव्य-परतीति ॥ ४ ॥

यथा

वा दिन बैसंदर चहूँ, बन मैं लगी अचान।
जीवत क्यौं बृज बाचतो जौ ना पीवत कान ॥ ५ ॥

अस्य तिलक

वैश्वानर बदलिकै *बैसंदर* कह्यो, चहूँ *दिसि* को *चहूँ* कह्यो *अचानक* को *अचान* कह्यो, लघु नकार की ठौर गुर नकार बोल्यो *कान्ह* कौं *कान* कह्यो ये सब भाँति को भाषाहीन है। ५ अ ॥

अप्रयुक्त, यथा–(दोहा)

सब्द सत्य, न लियो कबिन्ह, अप्रयुक्त सो ठाउ।
करै न बैयर हरिहि भी, कँदरप के सर घाउ ॥ ६ ॥

अस्य तिलक

बैयर सखी, *भी* भय, *कँदरप* काम भाषा औ' संस्कृत करिकै सुद्ध है पै काहू कबि कह्यो नाहीँ तातैं अप्रयुक्त है। ६ अ ॥

असमर्थ-लक्षण–(दोहा)

सब्द धर्यो जा अर्थ को, तापर तासु न सक्ति।
चित दौरै पर अर्थ कौं, सो असमर्थ अभक्ति ॥ ७ ॥

---

[४] बढ़ि गए–बढ़ि भए (भारत, वेंक०, बेल०)। परतीति–पर प्रीति (वही)।

[५] अचान–अयान (सर०)।

[५अ] बैसंदर कह्यो–०भयो (भारत, वेंक०)। अचानक...कान कह्यो–× (वही)।

[६] न लियो०–नहि कबि कह्यो (भारत, वेंक०)।

[६अ] भय–हरेहूँ (सर०); यह (भारत, वेंक०)। काम–काम को ब्रज (वही)। करिकै–करिकै सब (वही)। कह्यो–लयो (वेंक०)।

[७] तासु–जासु (वेंक०)।

यथा

कान्ह-कृपा-फल-भोग कौं, करि जान्यो सतिभाम ।
असुरसाखि सुरपुर कियो, ससुरसाखि निज धाम ॥ ८ ॥

अस्य तिलक

सुरसाखि कल्पतरु को कह्यो अकार औ' सकार तैं यह अर्थ धर्‍यो है जो बिन कल्पतरु वो समेत कल्पतरु । ८ अ ॥

निहतार्थ-लक्षणं—(दोहा)

द्व्यर्थ सब्द मैं राखिये, अप्रसिद्ध ही चाहि ।
जानो जाइ प्रसिद्ध ही, निहितारथ सो आहि ॥ ९ ॥

यथा

रे रे सठ नीरद भयो, चपला बिधु चित लाइ ।
भव-मकरध्वज तरन कौं, नाहिंन और उपाइ ॥ १० ॥

अस्य तिलक

नीरद बिना दाँत, *बिधु* बिष्नु, *चपला* लछमी, *मकरध्वज* समुद्र को राख्यो बादर, चंद्रमा, बीजुरी, काम जान्यो जातु है । १० अ ॥

अनुचितार्थ-लक्षणं—(दोहा)

अनुचितार्थ कहिये जहाँ, उचित न सब्द अकाल ।
नाँगो ह्वै दह कूदिकै, गहि ल्यायो हरि ब्याल ॥ ११ ॥

---

[८] भाम—बाम (भारत, वेंक०, बेल०) ।

[८अ] को—× (भारत, वेंक०) । औ'—ते (भारत) ; ते औ (वेंक०) । सकार ते—× (भारत) । जो—कि (वही) ; × (वेंक०) । वो—को सुरलोक कियो (भारत, वेंक०) । कल्पतरु—कल्पतरु अपनो घर कियो सत्यभामा ने सो कृष्ण की कृपा को फल है (वही) ।

[९] जाइ—और (सर०) ।

[१०] लाइ—लाउ (बेल०) । उपाइ—उपाउ (वही) ।

[१०अ] समुद्र—नाम समुद्र (भारत) । राख्यो—राख्यो पर (वही) । काम—कामदेव (भारत, वेंक०) ।

यथा

जिहिँ जावक अँखिया रँग्यो, दई नखच्छत गात।
रे पिय सठ क्यौं हठ करै, वाही पै किन जात ॥ १२ ॥

अस्य तिलक

नाँगो सब्द ही दुष्ट है, *पिय* के समास तैं *सठ* सब्द दुष्ट भयो, *रँगी* चाहिये *रँग्यो* कह्यो, *दयो* चाहिये दई कह्यो या मात्रादुष्ट है। १२ अ ॥

निरर्थक, यथा-(दोहा)

छंदहि पूरन कौं परै, सब्द निरर्थक धीर।
अरी हनत द्दग-तीर सौं, तो हिय ईर न पीर ॥ १३ ॥

अस्य तिलक

ईर सब्द निरर्थक है। १३ अ ॥

अवाचक-लक्षणं-(दोहा)

उहै अबाचक, रीति तजि लेइ नाम ठहराइ।
कह्यो न काहू जानि यह, नहिँ मानैं कबिराइ ॥ १४ ॥

यथा

प्रगट भयो लखि बिषमहय, बिष्नुधाम सानंदि।
सहसपान निद्रा तज्यो, खुलो पीतमुख बंदि ॥ १५ ॥

अस्य तिलक

सूरज कौं सप्तहय कहत हैँ, कमल कौं सहस्त्रपत्र कहत हैँ, *विषमहय* औ' *सहसपान* कह्यो आधे आधे सब्द दुष्ट हैँ। *पीतमुख* भौंर कौं, *बिष्नु-धाम* आकास को जद्यपि संभवतु है पै काहू नाहीं कह्यो। *नींद तजिबो* फूलिबे कौं, *सानंदिबो* आनंदित ह्वैबे कौं ये सब अवाचक हैँ। १५ अ ॥

---

[१२] रँग्यो-रँगे (भारत, वेंक०, बेल०)। पिय०-सठ तू (सर०)।
[१२अ] रँग्यो-रँगे (भारत, वेंक०)। या०-इहाँ (वही)।
[१३] तो०-तोहिँ पई रन ईर (भारत, बेल०) ; तोहिँ पई रन पीर (वेंक०)।
[१४] उहै-सु है (सर०) ; वहै (भारत, वेंक०, बेल०)।
[१५] पान-पानि (सर०)। पीत-पीक (वेंक०)।
[१५अ] आधे आवे-आधे (भारत)। ह्वैबे०-ह्वैबो (भारत, वेंक०)। सब-सब्द (वही)।

अश्लील, यथा–(दोहा)

पदऽस्लील पैये जहाँ, घृना असुभ लज्जान।
जीमूतनि दिन पित्रिगृह, तिय पग यह गुदरान ॥ १६ ॥

अस्य तिलक

जीमूत बादर कौँ कह्यो *मूत* सब्द सौँ घृना है, *पित्रिगृह* पितरलोकहूँ कौँ कहिये तातेँ अश्लील असुभ है, *गुद* औ' *रान* मार्ग जंघाहू कौँ कहिये तातेँ लज्जा है—तीन्यौ अस्लील आए। १६ अ ॥

ग्राम्य-लक्षणं–(दोहा)

केवल लोक-प्रसिद्ध कौँ, ग्राम्य कहैँ कबिराइ।
क्या झल्लै टुक गल्ल सुनि, भल्लर भल्लर भाइ ॥ १७ ॥

अस्य तिलक

क्या सब्द *झल्ल* सब्द *भल्ल* सब्द *गल्ल* सब्द टुक शब्द *भाइ* सब्द ये सब्द लहुलोक ही मैँ हैँ, काव्य मैँ नहीँ प्रसिद्ध हैँ। १७ अ ॥

संदग्धि-वर्णनं–(दोहा)

नाम धर्‌यो संदिग्ध पद, सब्द सँदेहिल जासु।
बंद्या तेरी लक्षमी, करै बंदना तासु ॥ १८ ॥

अस्य तिलक

बंद्या बंदी बानीहूँ सौँ कहिये ताकौँ बंदना कहा उचित है, बंदनीय कौँ कह्यो होइ तौ बंदना उचित है। १८ अ ॥

अप्रतीत-वर्णनं—(दोहा)

एकहि ठौर जो कहुँ सुन्यो, अप्रतीत सो गाउ।
रे सठ कारे चोर के चरनन सौँ चित लाउ ॥ १९ ॥

---

[१६] पैये–कहिये (भारत, वेंक०, बेल०)। जहाँ–तहाँ (भारत, वेंक०)। लज्जान–लज्यान (सर०)। पग–धृग (वही)।

[१६अ] पितर–पित्र (सर०); पितृ (भारत, वेंक)। कहिये–कह्यो (वही)। अस्लील–× (वही)। तीन्यौ०–तीनो स्लील (वही)।

[१७अ] लहु–यहु (भारत)। नहीँ प्रसिद्ध हैँ–प्रसिद्ध नहीँ (वही)।

[१८] सँदेहिल–सँदेहल (सर०)।

[१८अ] बानी–बान (सर०)। सौँ–को (भारत, वेंक०)।

[१९] जो कहुँ–जु कहि (भारत, वेंक०, बेल०)।

अस्य तिलक

कारे चोर श्रीकृष्न कौं कालिदास ही की काव्य मो सुन्यो है, अनत नाहीं सोइ स्रिगारही मैं। १९ अ ॥

नेयार्थ-वर्णनं–(दोहा)

नेयारथ लक्ष्यार्थ जहँ, ज्यौं त्यौं लीजै लेखि।
चंद्र चारि कौड़ी लहै, तव आनन-छबि देखि ॥ २० ॥

अस्य तिलक

अर्थात् तेरे मुख को बराबरी नहीं करि सकतो। २० अ ॥

समास तें, यथा–(दोहा)

है दुपंचस्यंदन-सपथ, सौ-हजार-मन तोहि।
बल आपन देखराउ जौ, मुनि करि जानसि मोहि ॥ २१ ॥

अस्य तिलक

दुपंचस्यंदन दसरथ कौं कह्यो सिगरो सब्द फेर्‌यो, *सौ-हजार-मन* लक्ष्मन कौं कह्यो आधो फेर्‌यो। २१ अ ॥

पुनः, यथा–(दोहा)

तब लगि रहौ जगंभरा, राहु निबिड़ तम छाइ।
जौ लौं पटवैदूर्य नहिं, हाथ बगारत आइ ॥ २२ ॥

अस्य तिलक

जगंभरा कहैं विश्वंभरा पृथ्वी, *राहु* को नाम कह्यो *तम* अँध्यारहू कौं कहिये, *पटवैदूर्य* अंबरमनि के अर्थ सूर्य, *हाथ* कर एकै है कर किरिनि कौं कहिये। २२ अ ॥

[१९अ] मो–मैं (भारत, वेंक०)। ही–हू (सर०)।
[२०] कौड़ी–कौड़ा (सर०)।
[२०अ] करि–कै (भारत, वेंक०)।
[२१] पंच–पंज (सर०)। सौ–सै (भारत, वेंक० बेल०)। आपन०–आपनो देखाउ (वही)। जानसि–जानै (वही)।
[२१अ] पंच–पंज (सर०)। सिगरो सब्द फेर्‌यो–× (सर०)।
[२२] लगि–लौं (भारत, वेंक०, बेल०)। जौ–जब (वही)।
[२२अ] सूर्य–× (भारत, वेंक०)। एकै–एक (वही)।

क्लिष्ट-लक्षण–(दोहा)

सीढ़ी सीढ़ी अर्थगति, क्लिष्ट कहावै ऐन।
खगपतिपतितियपितुबधू-जल समान तुव बैन ॥ २३ ॥

अस्य तिलक

गंगाजल समान बैन कह्यो। २३ अ ॥

यथा वा–(दोहा)

व रु ना हाथ क ती च लै, स पा ल लीन्हे साथ।
आदि स अंत य मध्य हा, होहिं तिहारी नाथ ॥ २४ ॥

अस्य तिलक

ब्रह्मा रुद्र नारायण कमल त्रिसूल चक्र लिये सरस्वती पार्वती लक्ष्मी साथ तिहारी सहाय होहिं। २४ अ ॥

अविमृष्टविधेय, यथा–(दोहा)

है अबिमृष्टबिधेय पद छाड़ै प्रगट बिधान।
क्यौँ मुख-हरि लखि चख-मृगी, रहिहै मन मैँ मान ॥ २५ ॥

अस्य तिलक

हरिमुख मृगचखी बिधेय है। २५ अ ॥

पुनः, यथा (दोहा)

नाथ प्रान कौँ देखतै, जौ असकी बस ठानि।
धृग धृग सखि बेकाज की, बृथा बड़ी अँखियानि ॥ २६ ॥

प्रसिद्धविधेय

प्राननाथ कौँ देखतै, जौ न सकी बस ठानि।
तौ सखि धिग बिन काज की, बड़ी बड़ी अँखियानि ॥ २७ ॥

---

[२४] स पा ल–स प ला (सर०) ;
[२४अ] सहाय०–सहाइ होइ (सर०)।
[२५] छाड़ै–छोड़ै (भारत, वेंक०, बेल०)।
[२५अ] मृग-मृगी (भारत, वेंक०, बेल०)। चखी – × (वही)।
[२६] असकी–रसकी (सर०)। बड़ी–बढ़ी (भारत, वेंक०)।
[२७] 'सर०' मैँ नहीँ है।

विरुद्धमतिकृत, यथा

सो बिरुद्धमतिकृत सुने लगै बिरुद्ध बिसेषि।
भाल अंबिकारमन के बाल-सुधाकर देखि ॥ २८ ॥

पुनः, यथा

काम गरीबनि को करैं, जे अकाज के मित्र।
जो माँगिय सो पाइये, ते धनि पुरुष बिचित्र ॥ २९ ॥

अस्य तिलक

अंबिका माता कौं कहिये, धाकर नीच ब्राह्मन कौं कहिये तातैं बिरुद्धमतिकृत भयो। दूसरे दोहा मो जो जो बात स्तुति की कह्यो है सबमैं निंदा प्रगट ही है। २९ अ ॥

इति शब्ददोष

अथ वाक्य-दोष–(छप्पय)

प्रतिकूलाच्छर जानि मानि हतबृत्त बिसंध्यनि।
न्यूनाधिक-पद कथितसब्द पुनि पतितप्रकर्षनि।
तजि समाप्तपुनराप्त चरनअंतरगतपद गहि।
पुनि अभवन्मतजोग जानि अकथितकथनीयहि।
पदअस्थानस्थ सँकीरनो, गर्भित अमतपरारथहि।
पुनि प्रक्रमभंग प्रसिद्धहत, छ दस वाक्य-दूषन तजहि ॥३०॥

प्रतिकूलाच्छर, यथा–(दोहा)

अच्छर नहिं रसजोग्य सो प्रतिकूलाच्छर ठट्टि।
पिय तिय लुट्टत हैं सुरस ठट्ट लपट्टि लपट्टि ॥३१॥

अस्य तिलक

ऐसे अच्छर रुद्ररस मैं चाहिये सो सिंगार मैं धर्यो। ३१ अ ॥

---

[२८] बिसेषि–बिसेषु (भारत, वेंक०, बेल०)। देखि–देख (वही)।
[२९] को–के (भारत, वेंक०, बेल०)। जै–जे (वही)।
[२९अ] कहिये०–कहि सु धाकर (भारत, वेंक०)। नीच–नीचे (वही)।
[३०] छ दस०–छंद सवाक्य (भारत, वेंक०, बेल०)।
[३१] रस०–पद जोग सौं (भारत, वेंक० बेल)। ठट्ट–ठट्टि (वही)।
[३१अ] सो– × (भारत, वेंक०)।

हतवृत्त, यथा–(दोहा)

ताहि कहत हतवृत्त जहँ, छंदोभंग सु बर्न।
लाल कमल जीत्यो सु वृष *भानुलली* के चर्न ॥३२॥
यहौ कहत हतवृत्त जहँ, नहीँ सुमिल पदरीति।
दृगनि खंज जंघनि कदलि, रदनि मुक्त लिय जीति ॥३३॥

अस्य तिलक

दृग दंत कहि लेतो तब जंघ कहतो। ३३ अ ॥

बिसंधि, यथा–(दोहा)

सो बिसंधि निज रुचि धरै, संधि बिगारि सँवारि।
मुरअरि जस उज्जल जनै, तेरी स्याम तर्वारि ॥३४॥

अस्य तिलक

मुरारि तरवारि चाहिये। ३४ अ ॥

पुनः, यथा–(दोहा)

यहौ बिसंधि दु सब्द के बीच कुपद परि जाइ।
प्रीतमजू *तिय* लीजिये, भली भाँति उर लाइ ॥३५॥

अस्य तिलक

जूतिय सब्द अस्लील परि जातु है। ३५ अ ॥

न्यूनपद, यथा–(दोहा)

सब्द रहै कछु कहन कौँ, वहै न्यूनपद मूल।
राज तिहारी खङ्ग तैँ, प्रगट भयो जस-फूल ॥३६॥

---

[३२] सु–वहै (सर०)।
[३३] दृगनि०–दृग खंजनि (भारत); दृगन खजनि (वेंक०); दृग खंजन (बेल०)।
[३३अ] दृग–दृग औ (भारत, वेंक०)।
[३४] धरै–धरत (सर०)।
[३४अ] मुरारि–मुरारि औ (भारत, वेंक०)। तरवारि–तववारि (सर०)।
[३५] यहौ०–पुनि बिसंधि है (बेल०)।
[३५अ] अस्लील–स्लील (भारत, वेंक०)। परि जातु–होतु (वही)।
[३६] तिहारी–तिहारे (भारत, बेल०)।

अस्य तिलक

खङ्ग-लता तेँ जस-फूल चाहिये । ३६ अ ॥

अधिकपद, यथा-(दोहा)

सु है अधिकपद जहँ परै, अधिक सब्द बिनु काज ।
डसै तिहारे सत्रु को, खङ्गलता-अहिराज ॥३७॥

अस्य तिलक

इहाँ *लता* सब्द अधिक है । ३७ अ ॥

पतत्प्रकर्ष-लक्षणं-(दोहा)

सो है पततप्रकर्ष जहँ, लई रीति निबहै न ।
कान्ह कृष्न केसव कृपा-सागर राजिवनैन ॥३८॥

अस्य तिलक

चारि नाउ ककारादि कह्यो, आगे न निबह्यो । ३८ अ ॥

कथितशब्द, यथा-(दोहा)

कह्यो फेरि कहे कथितपद, अरु पुनरुक्ति कहीय ।
जो तिय मो मन लै गई, कहाँ गई वह तीय ॥३९॥

अस्य तिलक

तिय तिय द्वै बार आयो । ३९ अ ॥

समाप्तपुनरात्त-लक्षणं-(दोहा)

करि समाप्त बातहि कहै, फिरि आगे कछु बात ।
सो समाप्तपुनराप्त है दूषन मति-अवदात ॥४०॥

यथा

डाभ बराए पग धरौ, ओढ़ौ पट अति घाम ।
सियहि सिखायो, निरखतीँ दृग जल भरि मगबाम ॥४१॥

अस्य तिलक

निरखिकै सिखावतिँ चाहिये । ४१ अ ॥

---

[३७] सु है–सोइ (बेल०) ।

[३९] कहे–कह (सर०) । अरु–औ (भारत, वेंक०, बेल०) ।

[४०] करि–कहि (भारत, वेंक०) ।

[४१] बराए–बचायँ (भारत, वेंक०) । सिखायो–सिखै यौं (भारत, वेंक०) ।
निरखतीँ–निरखतै (बेल०) ।

चरणांतर्गतपद-वर्णनं–(दोहा)

चरणांतर्गत एक पद, द्वै चरनन के माँझ।
गैयन लीन्हे आजु कान्हहि मैँ देख्यो साँझ ॥४२॥

अस्य तिलक

कान्ह सब्द द्वै चरन के माँझ पर्‌यो । ४२ अ ॥

अभवन्मतयोग-लक्षणं–(दोहा)

मुख्यहि मुख्य जु गनत नहि, सो अभवन्मतजोग ।
प्रान प्रानपति बिनु रह्यो, अब लौँ ध्रुग बृजलोग ॥४३॥

अस्य तिलक

प्रान ही कौँ *ध्रुग* चाहिये । ४३ अ ॥

पुनः, यथा–(दोहा)

बसन जोन्ह मुकुता उडुग, तिय-निसि के मुख चंद।
झिल्लीगन मंजीररव, उरज सरोरुह बंद ॥४४॥

अस्य तिलक

इहाँ *तियनिसि* करिकै बर्नन है सो मुख्य करिकै समस्या मैँ चाहिये । ४४ अ ॥

अकथितकथनीय-लक्षणं–(दोहा)

नहिँ अवस्य कहिबो कहै सो अकथितकथनीय ।
पीतमु पाय लग्यो, नहीँ मान छोड़ती तीय ॥४५॥

अस्य तिलक

पाय लगेहू चाहिये सो न कह्यो । ४५ अ ॥

---

[४२] लीन्हे–कीन्हे (सर०) । कान्हहि मैँ–मैँ कान्हहि (भारत, वेंक०) ; मैँ कान्है (बेल०) ।
[४३] जु–जो (भारत, वेंक० बेल०) । नहि–कहि (वही) ।
[४४] 'सर०' मैँ छूट गया है ।
[४४अ] इहाँ–यहाँ (भारत, वेंक०) । बर्नन–बर्नतु (वेंक०) ।
[४५अ] पाय–पाँइ (भारत, वेंक०) । लगेहू–लागेहू (वेंक०) । न–नहीँ (भारत) ; नाहीँ (वेंक०) ।

पुनः, यथा–(दोहा)

सिर पर सोहै पीतपट, चंदन को रँग भाल।
पान-लीक अधरन लगी, लई नई छबि लाल ॥४६॥

अस्य तिलक

नई छबि कह्यो तौ यह कहिबो अवस्य है—नीलपट, जावक को रँग, स्यामलीक। ४६ अ ॥

अस्थानस्थपद, यथा–(दोहा)

सो है अस्थानस्थपद, जहँ चहियत तहँ नाहिँ।
हैँ वै कुटिल गड़ी अजौँ, अलकैँ मो मन माहिँ ॥४७॥

अस्य तिलक

कुटिल पद *अलक* के ढिग चाहिये—
अजौँ कुटिल अलकैँ गड़ी हैँ वै मो मन माहिँ। ४७ अ ॥

संकीर्णपद, यथा–(दोहा)

दूरि दूरि ज्योँ त्योँ मिलै, संकीरनपद जान।
तजि पीतमु पायनि पर्‌यो, अजहूँ लखि तिय मान ॥४८॥

अस्य तिलक

पीतमु पायनि पर्‌यो लखिकै मान तजि—योँ अर्थ बनत है। पै ऐसो चाहिये—लखि पीतमु पायनि पर्‌यौ, अजहूँ तजि तिय मान। ४८ अ ॥

गर्भितपद, यथा–(दोहा)

और वाक्य दै बीच जौ वाक्य रचै कबि कोइ।
गर्भित दूषन कहत हैँ, ताहि सयाने लोइ ॥४९॥

---

[४६] सिर तन (भारत)।
[४६अ] तौ–है तौ (भारत, वेंक०)। यह–यौँ (वही)। है–है कि (वही)। रँग–रँग और (वही)।
[४७] अस्थान–स्थान (सर०, वेंक०)। जहँ–जहाँ (सर०)। चहियत–चाहियत (सर०); चहिये (भारत, वेंक०, बेल०)। वै-यौँ (वही)।
[४७अ] अजौँ...माहिँ–× (भारत, वेंक०)।
[४८अ] पै–× (भारत, वेंक०)। लखि–यथा लखि (वही)।
[४९] जौ–को (भारत, वेंक०)।

यथा

साधु संग औ' हरिभजन, बिषतरु यह संसारु ।
सकल भाँति बिष सौं भख्यो, द्वै अंमृतफल चारु ॥५०॥

अस्य तिलक

यौं चाहिये—साधुसंग औ' हरिभजन, द्वै अंमृतफल चारु । सकल भाँति बिष सौं भख्यो, बिषतरु यह संसारु । ५० अ ॥

अमतपरार्थ, यथा—(दोहा)

औरै रस मैं राखिये, औरै रस की बात ।
अमतपरारथ कहत हैं, लखि कबिमत को घात ॥५१॥
राम-काम-सायक लगे, बिकल भई अकुलाइ ।
क्यौं न सदन परपुरुष के, तुरत तारका जाइ ॥५२॥

अस्य तिलक

ऐसो रूपक सिंगार रस मैं चाहिये । ५२ अ ॥

प्रक्रमभंग, यथा—(दोहा)

सो है प्रकरमभंग जहँ, बिधिसमेत नहिं बात ।
जहाँ रैनि जागे सकल, ताही पै किन जात ॥५३॥

अस्य तिलक

जापै निसि जागे सकल—यौं चाहिये । ५३ अ ॥

पुनः—(दोहा)

जथासंख्य जहँ नहिं मिलै, सोऊ प्रकरमभंग ।
रमा उमा बानी सदा, बिधि हरि हर के संग ॥५४॥

अस्य तिलक

हरि हर बिधि चाहिये । ५४ अ ॥

---

[५०] बिष–दुख (भारत, बेल०) । सौं–सं (सर०) । द्वै०–होहि अमृत (वही) ।
[५०अ] चाहिये–चाहिये यथा दोहा (भारत); चाहिये यथा (वेंक०) । द्वै०–है हि अमृत (सर०) । बिष–दुख (भारत, बेल०) । 'भारत, वेंक०, बेल०' मैं प्रथम दल दूसरा है ।
[५१] राखिये–चाहियै (सर०) ।
[५२अ] चाहिये–चाहिये रामायन सांतरस है वहाँ न चाहिये (भारत, वेंक०) ।
[५४अ] बिधि–बिधि के संग (भारत) ।

पुनः–(दोहा)

सोऊ प्रकरमभंग जहँ, नहीं एक सम बैन।
तूँ हरि की अँखियाँ बसी, कान्ह बसे तुव नैन ॥५५॥

अस्य तिलक

कान्ह-नैन मैं तूँ बसी–यौं चाहिये। ५५ अ ॥

प्रसिद्धहत, यथा–(दोहा)

परसिधहत जुं प्रसिद्ध मत, तजै और फल लेखि।
कूजि उठे गोकरभ सब, जसुमति-सावक देखि ॥५६॥

अस्य तिलक

कूजिबो पच्छिन को प्रसिद्ध है, करभ हाथी ही के बच्चा कौं, सावक मृगादिक के बच्चे कौं प्रसिद्ध है, और ही और थल कह्यो तातैं प्रसिद्धहत भयो। ५६ अ ॥

इति वाक्यदोष

अथ अर्थदोष-कथनं–(छप्पय)

अपुष्टार्थ कष्टार्थ व्याहतो पुनरुक्तो जित।
दुःक्रम ग्राम्य सँदिग्ध जु निरहेतो अनवीकृत।
नियम अनियम प्रबृत्ति बिसेष समान्य प्रबृति कहि।
साकांक्षा पद-अजुत सबिधि अनुबाद अजुक्तहि।
जु बिरुद्धप्रसिद्ध प्रकासितनि सहचर भिन्नोऽस्लील धुनि।
है त्यक्तपुनःस्वीकृत सहित अर्थदोष बाईस पुनि ॥५७॥

अपुष्टार्थ, यथा–(दोहा)

प्रौढ़ उक्ति जहँ ब्याज है, अपुष्टार्थ सो बंक।
उयो अति बड़े गगन मैं, उज्जल चारु मयंक ॥५८॥

---

[५६] परसिध–प्रसिद्ध (सर०) ; प्रसिधहत जु परसिद्ध मत (वेंक०) ; परिसिध हत परसिद्ध मत (बेल०)। और–एक (भारत, वेंक०, बेल०)।

[५६अ] बच्चा कौं–बच्चा कौं कहिये (भारत, वेंक०)। प्रसिद्ध है–कहिये (वही)। और ही ..भयो–सो नहीं मान्यो सब एक सौं लेखिकै और ही और कह्यो (भारत, वेंक०)।

[५७] जु निरहेतो–जु नीरहतो (भारत, वेंक०) ; अपर निर्हेतु (बेल०)।

[५८] ब्याज–अर्थ (भारत, वेंक०, बेल०)। उयो-उग्यो (वेंक०)। बड़े–बड़ो (वही)।

अस्य तिलक

गगन अति बड़ो है ही, चंद्रमा उज्जल चारु है ही—यह कहिबो व्यर्थ है। *गगन मे मयंक उठ्यो*—एतनो कहिबो पुष्टार्थ है, और अपुष्ट है। ५८ अ॥

कष्टार्थ, यथा–(दोहा)

अर्थ भिन्न अच्छरनि तेँ, कष्टारथ सु बिचारि।
तो पर वारौँ चारि मृग, चारि बिहग फल चारि॥५९॥

अस्य तिलक

नैन पर मृग, घूंघट पर हय, गति पर गज, कटि पर सिंह योँ चारि मृग। बैन पर कोकिल, ग्रीवा पर कपोत, केस पर मोर, नासिका पर सुक योँ चारि बिहंग। दंत पर दाख्यौ, कुच पर श्रीफल, अधर पर बिंब कपोल पर मधूक योँ चारयो फल। ५९ अ॥

व्याहत दोष, यथा–(दोहा)

सत असतहु एकै कहै, ब्याहत सुधि बिसराइ।
चंदमुखी के बदन सम हिमकर कह्यो न जाइ॥६०॥

अस्य तिलक

चंदमुखी कहतु हैँ, चंद सम बदन ही कहतो। ६० अ॥

पुनरुक्त, यथा–(दोहा)

उहै अर्थ पुनि पुनि मिलै, सब्द और पुनरुक्ति।
मृदु बानी मीठी लगै, बात कबिन की उक्ति॥६१॥

अस्य तिलक

बानी, बात, उक्ति को अर्थ एक ही है। ६१ अ॥

[५८अ] यह–याहू (भारत, वेंक०)। एतनो–इतनो ही (वही)।

[५९अ] मृग मृग वारयो (भारत, वेंक०)। कोकिल–कोकिला (वही)। मोर–भौर (सर०)। बिहंग–बिहंग वारयो (भारत, वेंक०)। दारयौ–दाड़िम (भारत)। मधूक-मधुकर (सर०)। चारयो–फल चारयो वारयो (भारत, वेंक०)।

[६०अ] ही–नहीँ (भारत, वेंक०)।

[६१अ] बात–बात औ (भारत, वेंक०)।

दुष्क्रम, यथा–(दोहा)

कम बिचार क्रम को कियो, दुःक्रम है यहि काल।
बर बाजी कै बारनै, दैहै रीझि दयाल ॥६२॥

अस्य तिलक

बारन ही कै बाजिही दैहै चाहिये। ६२ अ ॥

ग्राम्यार्थ, यथा–(दोहा)

चतुरन की सी बात नहिँ, ग्राम्यारथ सो चेति।
अली पास पौढ़ी भले, मोहिँ किन पौढ़न देति ॥६३॥

अस्य तिलक

पुरुष ह्वै कै इस्त्री को दाँजु करत है, तातेँ ग्राम्यार्थ भयो। ६३ अ ॥

संदिग्ध, यथा–(दोहा)

संदिग्धार्थ जु अर्थ बहु, एक कहत संदेह।
केहि कारन कामिनि लिख्यो, सिवमूरति निज गेह ॥६४॥

अस्य तिलक

काम की डर औ'। ६४ अ ॥

निर्हेतु, यथा–(दोहा)

बात कहै बिन हेत की, सो निरहेतु बिचारि।
सुमन झर्‌यो मानो अली, मदन दियो सर डारि ॥६५॥

अस्य तिलक

काम कौन हेत सर डारि दियो सो नहीँ कह्यो। ६५ अ ॥

अनवीकृत-लक्षणं–(दोहा)

जो न नए अर्थहि धरै, अनवीकृत सु बिसेषि।
जनि लाटानुप्रास अरु आवृतिदीपक देखि ॥६६॥

---

[६२] कम–क्रम (सर्वत्र)।

[६३अ] इस्त्री–स्त्री (भारत, वेंक०)। तातेँ–यह (वही)। भयो–है (वही)।

[६४अ] की–के (भारत); को (वेंक०)। डर औ–डर वो (सर०); डर्‌यो (वेंक०)।

[६५अ] काम–काम ने (भारत)।

[६६] नए–नुये (भारत, वेंक०)।

यथा–(सवैया)

कौन अचंभो जौ पावक जारै तौ कौन अचंभो गरू गिरि भाई ।
कौन अचंभो खराई पयोधि की कौन अचंभो गयंद-कराई ।
कौन अचंभो सुधा-मधुराई औ' कौन अचंभो बिषो करुआई ।
कौन अचंभो बृषो बहै भार औ' कौन अचंभो भलेहि भलाई ॥६७॥

अस्य तिलक

नवीकृत यौँ चाहिये—
कौन अचंभो जौ पावक जारै गरू गिरि है तौ कहा अधिकाई ।
सिंधुतरंग सदैव खराई नई न है सिंधुर-अंग कराई ।
मीठो पियूष करू बिष-रीतियै *दास*जू यामैं न निंद बड़ाई ।
भार चलाइहि आए धुरीन भलेनि के अंग सुभावै भलाई ॥६७अ॥

नियमपरिवृत्ति-अनियमपरिवृत्ति-लक्षणं–(दोहा)

अनियम थल नेमहि गहै, नियम-ठौर जु अनेम ।
नियम-अनियम-प्रवृत्ति है, दूषन दुऔ अप्रेम ॥ ६८ ॥

नियमपरिवृत्ति, यथा

जाकी सुभदायक रुचिर, कर तैँ मनि गिरि जाइ ।
क्यौँ पाए आभासमनि, होइ तासु चित चाइ ॥ ६९ ॥

अस्य तिलक

आभासमनि द्रुपल के नग को कहत हैँ पै इहाँ अनेम बात चाहिये, यथा–क्यौँ लहि छाया मात्र मनि, होइ तासु चित चाइ । ६९ अ ॥

अनियमपरिवृत्ति, यथा—(दोहा)

है कारी भैकारियै, लेन चाहती जीय ।
तनु तापनि ताड़ित करै, जामिनि ही जम-तीय ॥७०॥

---

[६७] पयोधि०-पयोनिधि (भारत, वेंक०) बृषो०-बहै बृष (भारत, बेल०); बृषै बहै (वेंक०) ।

[६७अ] रीतियै–रीति पै (भारत, वेंक०, बेल०) । चलाइहि०–चलावहिँ आपुहि बैल (भारत, बेल०); चलाइहि आपु धरीन (वेंक०) । के–को (वही) ।

[६९अ] 'सर०' मैं नहीँ है । अनेम–अनेक (भारत) ।

[७०] है–भये (भारत, वेंक०, बेल०) ।

अस्य तिलक

भैकारियै जामिनी ही यह नेम चाहिये, यौं अनेम चाहिये—

है कारी भैकारिनी, लेन चाहती जीय।
तनु तापनि ताड़ित करै, जामिनि जम की तीय ।७० अ ॥

विशेषपरिवृत्ति-लक्षणं-(दोहा)

जहाँ ठौर सामान्य को, कहै बिसेष अयान।
ताहि बिसेषप्रबृत्ति गनि, दूषन गनै सुजान ॥७१॥

यथा

कहा सिंधु लोपत मनिन्ह, बीचिन्ह कीच बहाइ।
सक्यो कवस्तुब-जोर तूँ, हरि सौं हाथ ओड़ाइ ॥७२॥

अस्य तिलक

कवस्तुब बिसेष न चाहिये, सामान्य ही चाहिये—

कहा मनिन्ह मूँदत जलधि, बीचिन्ह कीच मचाइ।
सक्यो कवस्तुब जोर तूँ, हरि सौं हाथ ओडाइ ।७२ अ ॥

सामान्यपरिवृत्ति, यथा-(दोहा)

जहाँ कहत सामान्य ही, थल बिसेष को देखि।
सो सामान्यप्रबृत्ति है, दूषन दृढ़ अवरेखि ॥७३॥

यथा

रैनि स्याम रँग पूरि ससि चूरि कमल करि दूरि।
जहाँ तहाँ हौं पिय लखौं, ये भ्रमदायक भूरि ॥७४॥

अस्य तिलक

रैनि सामान्य है सितौ असितौ है इहाँ जोन्ह बिसेषि चाहिये।
७४ अ ॥

[७०अ] यह नेम–प्रहरे मुन (भारत; वेंक०)। दोहा–यथा दोहा (भारत); यथा (वेंक०)।

[७२] कवस्तुब–कौस्तुभ (भारत, वेंक०, बेल०)। ओड़ाइ–वोडाइ (वही)।

[७४] पूरि–पूर (बेल०)। चूरि–चोर (वही)। दूरि–दौर (वही)। भ्रमदायक–भ्रमदासक (सर०, वेंक०)। भूरि–मूरि (सर०); भौर (बेल०)।

[७४अ] जोन्ह–जो न (भारत, वेंक०)।

साकांक्ष-लक्षणं–(दोहा)

आकांक्षा कछु सब्द की, जहाँ परत है जानि ।
सो दूषन साकांक्ष है, सुमति कहैं उर आनि ॥७५॥

यथा

परम बिरागी चित्त निज, पुनि देवन्ह को काम ।
जननी-रुचि पुनि पितु-बचन, क्यों तजिहैं बन राम ॥७६॥

अस्य तिलक

बन जाइबो क्यों तजिहैं राम—यों चाहिये, *जाइबे* सब्द की आकांक्षा है । ७६ अ ॥

अयुक्त-लक्षणं–(दोहा)

पद कै बिधि अनुबाद कै, जहँ अजोग्य ह्वै जाइ ।
तहँ अजुक्त दूषन कहैं, जे प्रबीन कबिराइ ॥७७॥

पद-अयुक्त, यथा

मोहनछबि अँखियन बसी, हिये मधुर मुसुकानि ।
गुनचरचा बतियान मैं, उन सम और न जानि ॥७८॥

अस्य तिलक

चौथे चरन अजुक्त है । यों चाहिये—*स्रौननि मृदु बतलानि* । ७८ अ ॥

विधि-अयुक्त, यथा–(दोहा)

पवन-अहारी ब्याल है, ब्यालहि खात मयूर ।
ब्याधौ खात मयूर कौं, कौन सत्रु बिन कूर ॥७९॥

अस्य तिलक

अहारी न चाहिये, *उहऊ खात* सब्द चाहिये । ७९ अ ॥

अनुवाद-अयुक्त, यथा–(दोहा)

रे केसव-कर-आभरन, मोदकरन श्रीधाम ।
कमल, बियोगी-ज्यौ-हरन, कहाँ प्रिया अभिराम ॥८०॥

[७६अ] बन...राम—क्यों न जाँय बन राम (भारत, वेंक०, बेल०)।
[७८अ] चौथो—चौथे (सर०) । स्रौननि—और न (भारत, वेंक०, बेल०) ।
[७९] मयूर कौं—मयूरऊ (सर०) ।
[८०] बियोगी—बिरोगी (सर०) ।

अस्य तिलक

बियोगी-ज्यौ-हरन इन बातनि के साथ कहिबो अजुक्त है। ८० अ ॥

प्रसिद्धविद्याविरुद्ध—(दोहा)

लोक बेद कबिरीति अरु, देस काल तेँ भिन्न।
सो प्रसिद्धबिद्यानि के है बिरुद्ध मति खिन्न ॥८१॥

यथा—(सवैया)

कौल खुले कच गूँदती मूँदती चारु नखच्छत अंगद के तरु।
दोहद मैँ रति के स्रमभार बड़े बल कै धरती पग भू परु।
पंथ असोकनि कौँप लगावती है जस गावती सिंजित के भरु।
भावती भादौँ की चाँदनी मैँ जगी भावते संग चली अपने घरु ॥८२॥

अस्य तिलक

असोक को इस्त्री के पाँउ छुए तेँ फूलिबो कहिबो लोकरीति है, यह पल्लव लागे कहत है तातेँ लोकबिरुद्ध है। दोहद मैँ रति बर्जित है सो कह्यो तातेँ बेदबिरुद्ध है। भादौँ की चाँदनी बरनिबो कबिरीति-बिरुद्ध है। आतुर चली भोर न होन पायो, यह रसबिरुद्ध है। नखच्छत कुच मैँ चाहिये भुजा मैँ कह्यो, यह अंग-देसबिरुद्ध है। ८२ अ ॥

प्रकाशितविरुद्ध, यथा—(दोहा)

जो लच्छन कहिये परै तासु बिरुद्ध लखाइ।
वहै प्रकासित बात को है बिरुद्ध कबिराइ ॥८३॥

यथा

हँसनि तकनि बोलनि चलनि, सकल सकुच-मै जासु।
रोष न केहूँ कै सकै, सुकबि कहै सुकिया सु ॥८४॥

अस्य तिलक

यामैँ परकीयाहू को अर्थ लगि जात है। ८४ अ ॥

---

[८१] के—को (सर०)।

[८२] मैँ—के (सर०)। परु—धरु (भारत, वेंक०, बेल०)।

[८२अ] लागे—लाग्यो (भारत, वेंक०)।

[८४] कै—करि (सर०)।

सहचरभिन्न-वर्णनं–(दोहा)

सो है सहचरभिन्न जहँ, संग कहत न बिबेक।
निज पर पुत्रनि मानते, साधु काग-बिधि एक ॥८५॥

अस्य तिलक

काग कोइल के पुत्र धोखे पालतु है, साधु की समता न चाहिये। ८५ अ ॥

पुनः, यथा–(दोहा)

निसि ससि सौँ जल कमल सौँ, मूढ़ बिसन सौँ मित्त।
गज मद सौँ नृप तेज सौँ, सोभा पावत नित्त ॥८६॥

अस्य तिलक

मूढ़ बिसन सौँ संगति सौँ भिन्न है। ८६ अ ॥

अश्लीलार्थ, यथा–(दोहा)

कहिये अश्लीलार्थ जहँ, भौंडो भेद लखाइ।
उन्नतु है परछिद्र कौं, क्यौँ न जाइ मुरुझाइ ॥८७॥

अस्य तिलक

व्यंग्यार्थ मैँ मुख्य ग जान्यो जातु है। ८७ अ ॥

त्यक्तपुनःस्वीकृत, यथा–(दोहा)

त्यक्तपुनःस्वीकृत कहैँ, छोड़ि बात पुनि लेत।
मो सुधि बुधि हरि हरि लई, काम करौँ डर हेत ॥८८॥

अस्य तिलक

सुधि बुधि हरि जाति तौ काम क्यौँ करि सकती। ८८ अ ॥

इति श्रीसकलकलाधरकलाधरवंशावतंसश्रीमन्महाराजकुमार-
श्रीबाबूहिंदूपतिविरचिते काव्यनिर्णये शब्दार्थ-
दूषणवर्णनं नाम त्रयोविंशमो-
ल्लासः ॥ २३ ॥

[८५अ] के–को (भारत, वेंक०)। की–X (वही)।
[८६] बिसन–व्यसन (भारत, वेंक०, बेल०)।
[८७अ] व्यंग्यार्थ–विज्ञानार्थ (सर०)। ग–गज (भारत, वेंक०, बेल०)।

२४

अथ दोषोद्धार-वर्णनं-(दोहा)

कहुँ सब्दालंकार कहुँ छंद कहूँ तुक हेत।
कहुँ प्रकरनबस दोषहूँ, गनैं अदोष सचेत ॥१॥
कहूँ अदोषै होत, कहुँ दोष होत गुनखानि।
उदाहरन कछु कछु कहौं, सरल सुमति ढिग जानि ॥२॥

यथा

हरि स्रुति को कुंडल मुकुत-हार हिये को स्वच्छ।
आँखिन देख्यो सो रह्यो, हिय मैं छाइ प्रतच्छ ॥३॥

अस्य तिलक

स्वच्छ सब्द स्रुतिकटु है, *प्रतच्छ* सब्द भाषाहीन है, *मुकुतहार* सब्द चरनांतरगत की ठौर है वाक्यदोष है औ' *स्रुति को कुंडल हिय को हार आँखिन को देखिबो* अर्थदोष मैं अपुष्टार्थ है *कुंडल हार* को देख्यो इतनो ही कहे अर्थ को बोधु है। तद्यपि तुकबस तैं स्रुतिकटु भाषाहीन औ' छंदबस तैं चरनांतरगतपद औ' लोकोक्तिबस तैं अपुष्टार्थ अदोष है। औ' कुंडल हार कान हृदय तैं भिन्नहूँ धर्‍यो रहतु है औ' दरसन मैं स्रवन चित्र स्वप्नौ गन्यो है। हार जद्यपि मोती ही के हार कौं कहत हैं तद्यपि भाषा-कबिन्ह हार कौं साधारनै लिख्यो है यह कबिरीतिबस है। ३ अ ॥

---

[२] अदोषै–अदोषौ (भारत, वेंक०, बेल०)। होत कहुँ–दोष कहुँ (बेल०)। ढिग–दढ़ (वही)।

[३] मुकुत–मुकुट (भारत, वेंक०, बेल०)। हिये–हियो (सर०)। आँखिन–आखिय (वही); अँखियन (भारत, वेंक०, बेल०)। प्रतच्छ–प्रत्यच्छ (भारत, वेंक०); प्रत्तच्छ (बेल०)।

[३अ] वाक्यदोष है–वाक्यदोष (भारत, वेंक०)। तुक०–तु कमल (वही); चित्र–चित (सर०)। साधारनै०–साधारन ही लिख्यो यह (भारत, वेंक०)।

पुनः, यथा-(कवित्त)

सिंह कटि *मेषला* ज्यों *कुंभ* कुच *मिथुन* त्यों,
मुखबास *अलि* गूँजैं भौं हैं *धनुलीक* है।
बृषभान-कन्या *मीन*नैनी सुबरन अंगी,
नजरि-*तुला* मैं तोसौं रति सो रतीक है।
ह्वैहै बिलगात उर *करक* कटाछन सौं,
चाहिये गलग्रह तौ लोग सुघरी कहै।
कुंडल *मकर*वारे सौं लगी लगन अब,
बारहौ लगन को बनाव बन्यो ठीक है ॥४॥

अस्य तिलक

ला निरर्थक, *मिथुन* सब्द द्वै कौं अप्रयुक्ति, *अलि* सब्द निहितारथ, *धनुलीक* सब्द अबाचक, *कन्या* सब्द सिंगार मैं अनुचितार्थ, *गलग्रह* मिलिबे कौं अप्रतीत, *कुंडल मकर* सब्द अबिमृष्टबिधेय, *अब बारहो* सब्द श्रुतिकटु द्वै बकार की संधि तें, औ' पहिले बिलगाइबे की बात कह्यो पीछे मिलबे की यह त्यक्तपुनःस्वीकृत अर्थदोष है, *रति* कौं *रतीक* कह्यो राधा कौं गरू न कह्यो यह साकांछ है—सो स्लेष मुद्रालंकार करिकै बारह लग्न को नाम आन्यो चाह्यो तातैं सब अदुष्ट है। औ' जैसे मेढ़ु को मेढ़ला कहत हैं तैसे मेष कौं मेषला कह्यो तातैं निरर्थकहू को निवारन है। ४ अ ॥

अश्लील क्वचित् अदोष क्वचित् गुण, यथा-(दोहा)

कहुँ अस्लील दोषै नहीं, जथा सुभग भगवंत।
कहूँ हास निंदादि तैं ऽस्लील गुनैं गुन संत ॥५॥

---

[४] ज्यौं–त्यौं (भारत, वेंक०) ; × (बेल०)। कुंभ०–कुच कुंभ (वही)। त्यौं–त्यौं ही (वही)। तोसौं–तौले (वही)। सो–तौ (वही)। ह्वैहै–ह्वैकै (भारत, वेंक०) ; नेकौ (बेल०)। उर–अरि (वही)। करक०–जात कर (भारत, वेंक०)। चाहिये–छ्वै गए (बेल०)। तौ–त (सर०) ; × (भारत, वेंक०) ; सौं (बेल०)।

[४अ] ला सब्द–ला (भारत, वेंक०)। अब–औ (वही)। साकांछ–साकांछा (वही)। मेढ़ु–मेढुक (वही)। कहत–कहते (वही)। मेष कौं–× (वही)।

[५] अस्लील–स्लील (भारत, वेंक०, बेल०)। दोषै–दोषो (सर०) ; दूषन (भारत, बेल०)। संत–वंत (बेल०)।

पुनः

मीत न पैहै जान तूँ, यह खोजा-दरबार।
जो निसिदिन गुदरत रहै, ताही को पैठार ॥६॥

अस्य तिलक

यौँ निंदादि मैँ क्रीड़ाहास मैँ अस्लील गुन है। ६ अ ॥

क्वचित् ग्राम्य गुण-(दोहा)

ग्रामीनोक्ति कहे कहूँ, ग्रामै गुन ह्वै जाइ।
अजौँ तिया सुख की छिया, रही हिया पर छाइ ॥७॥

क्वचित् न्यूनपद गुण, यथा

नहीँ नहीँ सुनि नहि रह्यो, नेह-नहनि मैँ नाह।
त्यौँ त्यौँ भा रति-मोद सौँ, ज्यौँ ज्यौँ झारति बाँह ॥८॥

अस्य तिलक

यह समै सुरति को नहीँ है हम नहीँ मानती—सो नायिकाबचन करिकै बल नहीँ, सो जान्यो जातु है, ऐसी ठौर ऐसो न्यून गुन है। ८ अ ॥

क्वचित् अधिकपद गुण-(दोहा)

खल बानी खल की कहा साधु जानते नाहिँ।
सब समझैँ पै तहि तहाँ, पतित करत सकुचाहिँ ॥ ९ ॥

अस्य तिलक

कहा जानते नाहिँ यामैँ समुझिबे को अर्थ आइही बीत्यो, फेरि सब *समझैँ* कह्यो तौ अति दिढ़ताई भई यह अधिकपद गुण है। ९ अ ॥

क्वचित् कथितपद गुण-(दोहा)

दीपक लाटा बीपसा, पुनरुक्ताप्रतिकास।
बिधि भूषन मैँ कथितपद, गुन करि लेख्यो दास ॥ १० ॥

[६ अ] यौँ-जो (भारत, वेंक०)।
[७] अजौँ-आज (बेल०)। सुख-मुख (वही)।
[८ अ] बल-बोल (भारत)।
[९] खल की-छल की (सर०)।
[९ अ] बोलो-बोल्यो (भारत, वेंक०)। दिढ़ताई-दृढ़ता (वही)।
[१०] पुनरुक्ता०-पुनरुक्तिबदाभास (बेल०)। लेख्यो-लेख्यै (सर०); लेखो (भारत, वेंक०, बेल०)।

यथा

ज्यौँ दर्पन मैँ पाइये, तरनि-तेज तैँ आँच।
त्यौँ पृथ्वीपति-तेज तैँ, तरनि तपत यह साँच ॥ ११ ॥

अस्य तिलक

इहाँ *तरनि तरनि* द्वै बेर आयो है, सो गुण है। ११ अ ॥

गर्भितपद क्वचित् अदोष–(दोहा)

लाल अधर मैँ कै सुधा, मधुर किये बिनु पान।
कहा अधर मैँ लेत हौ, धर मैँ रहत न प्रान ॥ १२ ॥

अस्य तिलक

धर मैँ रहत न प्रान यह वाक्य *बिनु पान* के समीप चाहिये, ऐसी दूरान्वय भाषाकवि संसकृतकबि बहुत बनाइ आए हैँ तातैँ अदोष है। १२ अ ॥

प्रसिद्धविद्याविरुद्ध क्वचित् गुण, यथा–(दोहा)

जो प्रसिद्ध कबिरीति मैँ सो संतत गुन होइ।
लोकबिरुद्ध बिलोकिकै, दूषन गनै न कोइ ॥ १३ ॥
महा अँध्यारी रैनि मैँ, कीर्ति तिहारी गाइ।
अभिसारी पिय पै गई, उजियारी अधिकाइ ॥१४॥

अस्य तिलक

कीर्ति के गाइबे तैँ उज्यारी ह्वैबो लोकबिरुद्ध है, सो कबिरीति गुन है। १४ अ ॥

सहचरभिन्न क्वचित् गुण–(दोहा)

मोहन मो दृग पूतरी, वै छबि सिगरी प्रान।
सुधा चितौनि सुहावनी, मीचु बाँसुरी-तान ॥ १५ ॥

अस्य तिलक

इहाँ सब सत मैँ बाँसुरी-तान असत है, सो बिसेषोक्ति अलंकर भयो गुन है। १५ अ ॥

---

[१२] कै–को (भारत, वेंक०, बेल०)। हौ–है (वही)।
[१५अ] सत मैँ–समय (भारत, वेंक०)। विसेषोक्त–बिनोक्ति (सर०)।
] समता–ममता (भारत, वेंक०, बेल०)।

(दोहा)

इहि बिधि औरौ जानिये, जहाँ सुमति चित लेत।
दोष होत निरदोष तहँ, अरु समता गुन हेत ॥ १६ ॥

इति श्रीसकलकलाधरकलाधरवंशावतंसश्रीमन्महाराजकुमार-
श्रीबाबूहिंदूपतिविरचिते काव्यनिर्णये ग्रंथे अदोष-
वर्णनं नाम चतुर्विंशतिमोल्लासः ॥ २४ ॥

२५

अथ रसदोष-वर्णनं–(दोहा)

रस अरु चर थिर भाव की, सब्दबाच्यता होइ।
ताहि कहत रसदोष हैं, कहूँ अदोषिल सोइ ॥ १ ॥
अंचल ऐंचि जु सिर धरत, चंचलनैनी चारु।
कुचकोरनि हिय कोरिकै, भर्‌यो सु रस स्िंगार ॥ २ ॥

अस्य तिलक

इहाँ *स्िंगार रस* ही कहत हैं स्िंगार को नाम कहिबो अनुचित है, वाके अनुभाव तँ कह्यो चाहिये, यथा—कुचकोरनि हिय कोरिकै, दुख भरि गई अपार। २ अ ॥

व्यभिचारीभाव की शब्दबाच्यता–(सवैया)

आनन-ओर सलज्ज गयंद की खालन पै करुनानि मिलाई।
दास भुजंगनि त्रास धरे अरु गंग-तरंग धरे इरषाई।
भूति-भर्‌यो सित अंग सदीनता चंद्रप्रभा सबितर्क महाई।
ब्याह-समै हर-ओर चहैं चर भाव भईं अँखियाँ गिरिजाई ॥ ३ ॥

---

[३] आनन–आनँद (सर्वत्र)। ओर०–औ रस लज्जा (भारत, वेंक०, बेल०)। हर ओर–हर और (बेल०)। भईं–गईं (वेंक०)।

अस्य तिलक

इहाँ लज्यादिक ब्यभिचारी भावनि को बाच्य ही मैं कह्यो, उनको अनुभाव ही बाच्य मैं आनिकै व्यंजित करिबो उत्तम काव्य है, यथा—

आनन-सोभ पै ह्वैकै निचौंही गयंद की खाल पै ह्वै जलसाई।
दास भुजंगनि संजुत कंप औ' गंग-तरंग समेत ललाई।
भूति-भरयो तनु लै मलिनाई औ' चंदप्रभा अनिमेष महाई।
ब्याह-समै हर-ओर निहारै नई नई डीठिन सौं गिरिजाई॥ ३ अ॥

स्थायीभाव की शब्दवाच्यता—(दोहा)

अकनि अकनि रन परसपर, असिप्रहार भनकार।
महा महा जोधनि हिये, बढ़त उछाह अपार॥ ४॥

अस्य तिलक

इहाँ *उछाह* बाच्य मैं कहे तैं अबर काव्य होत है, *मंगल बढ़त अपार* कहे *अपार उछाह* ब्यंगि मैं पाइयतु है। ४ अ॥

शब्दवाच्यता तैं अदोष-वर्णनं–(दोहा)

जात जगायो है न अलि, आँगन आयो भानु।
रसमोयो सोयो दोऊ - प्रेम - समोयो प्रानु॥ ५॥

अस्य तिलक

इहाँ नाइका को संजुक्त भाव ब्यभिचारी बरनतु है सो यौं कहे तैं सब्दबाच्यता होति है तहाँ सोइबे को पुनि और भाँति कहिबो नहीं भलो होत। औ' रसहू की, प्रेमहू की सब्दबाच्यता है सो अत्यंत रसिकता अत्यंत प्रतीति को हेतु है। औ' अपरांग ह्वै ब्यंगि मैं सखिन की दुहुँन पर प्रीति थाई भाव है, तातैं गुन है। ५ अ॥

अन्य रसदोष-वर्णनं–(दोहा)

जहँ बिभाव अनुभाव की कष्टकल्पना-ब्यक्ति।
रसदूषन ताहू कहैं, जिन्हैं काव्य की सक्ति॥ ६॥

[३अ] ललाई—लखाई (सर्वत्र)।

[४अ] अबर-और (भारत, वेंक०)। कहे अपार—कहे (वही)। ब्यंगि—पैगि (वही)।

[५अ] संजुक्त भाव—स्वभाव भारत, (वेंक०)। कहे तैं—कहते (वही)। अत्यंत रसिकता—× (सर०)। सखिन—सखी (भारत, वेंक०,। की—को (सर्वत्र)। पर—को पर (भारत, वेंक०)।

विभाव की कष्टकल्पना-व्यक्ति

उठति गिरति फिरि फिरि उठति, उठि उठि गिरि गिरि जाति।
कहा करौं कासौं कहौं, क्यों जीवै इहि राति ॥ ७ ॥

अस्य तिलक

इहाँ नाइका की बिरहदसा कहत हैं सो औरी ब्याधि तें औरहू पर लागत है, तातें कष्टकल्पना व्यक्ति है। ७ अ ॥

अस्य अदोषता, यथा—(दोहा)

कै चलि आगि परोस की, दूरि करौ घनस्याम।
कै हम कौं कहि दीजियै, बसैं और ही ग्राम ॥ ८ ॥

अस्य तिलक

इहाँ और ही भाँति की आगि जानी जाति है पै वह छिपाइकै कहति है तातें नायकनाइकहि की बिरहागि जानी जाति है, यह गुन है दोष नहीं। ८ अ ॥

अनुभाव की कष्टकल्पना-व्यक्ति (सवैया)

चैत की चाँदनी छीरनि सौं दिगमंडल मानो पखारन लागी।
तापर सीरी बयारि कपूर की धूरि सी लै लै बगारन लागी।
भौंरन की अवली करि गान पियूष सो कान मैं डारन लागी।
भावती भावते-ओर चितै सहजै ही मैं भूमि निहारन लागी ॥ ९ ॥

अस्य तिलक

इहाँ कछु प्रेम को अनुभाव कहिबो उचित है सहजै ही मैं भूमि निहारिबो कहे प्रेम नहीं जान्यो जातु। यौं चाहिये, जथा—आँखिन कै ललचौहीं लजौहीं प्रिया पिय-ओर निहारन लागी। ९ अ ॥

अन्य रसदोष-लक्षणं—(दोहा)

भाव रसनि प्रतिकूलता, पुनि पुनि दीपति जुक्ति।
येऊ हैं रसदोष जहँ, असमै उक्ति न उक्ति ॥१०॥

[७अ] औरी–और (भारत, वेंक०)।
[८] कौं–सौं (भारत, वेंक०)।
[८अ] इहाँ–यह (भारत, वेंक०)। नाइकहि–नायिका ही (वही)।
[९] लैलै–लैकै (सर०)।
[१०] जुक्ति–उक्ति (भारत, बेल०)। न उक्ति–अनुक्ति (वही)।

अरी खेलि हँसि बोलि चलि, भुज पीतम-गल डारि।
आयु जात छिन छिन घटी, छीलरि कैसो बारि ॥११॥

अस्य तिलक

आयु घटिबे को ज्ञानु कहिबो सांतरस को बिभाव है, सिंगार को नहीँ। ११ अ ॥

पुनः–(दोहा)

बैठी गुरजन-बीच सुनि बालम-बंसी चारु।
सकल छोड़ि बन जाउँ, यह तिय हिय करति बिचारु ॥१२॥

अस्य तिलक

नाइका मैँ उत्कंठा बर्नतु हैँ, सकल छोड़ि बन जाइबो—यह निरबेद थाईभाव सांतरस को है सो बिरुद्धता दोष है, योँ चाहिये—कौने मिस बन जाउँ यह, तिय हिय करति बिचारु। १२ अ ॥

अस्य अदोषता गुण, यथा–(दोहा)

बाध किये उपमा दिये, लिये पराए अंग।
प्रतिकूलौ रस भाव है, गुनमय पाइ प्रसंग ॥१३॥

बाध किये भाव प्रतिकूल गुण, यथा

धन संचै धन सौँ सुरति-सरसन सुख जग माहिँ।
पै जीवन अति अलप लखि, सज्जन मन न पत्याहिँ ॥१४॥

अस्य तिलक

इहाँ सिंगाररस बाधित करिकै सांतरस पोषत है तातैँ गुन है। १४ अ ॥

पुनः–(सवैया)

दृग नासा न तौ तप-जाल खगी न सुगंध सनेह के ख्याल खगी।
स्रुति जीहा बिरागै न रागै पगी मति रामै रँगी औ' न कामै रँगी।

---

[११] चलि–चलु (भारत, वेंक०, बेल०)। छीलरि०–छीजे घट सो (भारत, बेल०); छीलरु० (वेंक०)।

[१२अ] हिय–जिय (सर०)।

[१३] बाध–बोध (सर्वत्र)।

[१४] सरसन–सरिसन (सर०); सरसत (भारत, बेल०)।

[१४अ] × (भारत, वेंक०)।

बपु मैं व्रत नेम न पूरन प्रेम न भूति जगी न बिभूति जगी।
जग जन्म बृथा तिनको जिनके गरे सेली लगी न नवेली लगी ॥१५॥

अस्य तिलक

यामैं दुहूँ को बाधक है, तातैं गुन है। १५ अ ॥

पुनः–(दोहा)

पल रोवति पल हँसति पल बोलति पलक चुपाति।
प्रेम तिहारो प्रेत ज्यौं, वाहि लग्यो दिन राति ॥१६॥

अस्य तिलक

इहाँ एक भाव बाध कै कै एक भाव होत है सो गुन है ।१६अ॥

उपमा तैं विरुद्धता गुण, यथा–(कबित्त)

बेलिन के बिमल बितान तनि रहे जहाँ,
द्विजन को सोर कछू कह्यो न परत है।
ता बन दवागिनि की धूमनि सौं नैन,
मुकुतावली सी वारै डारै फूलनि झरत है।
फेरि फेरि अँगुठो झवावै मिसु काँटनि के,
फेरि फेरि आगे पीछे भाँवरै भरत है।
हिंदूपतिजू सौं बच्यो पाइ निज नाहँ,
बैरिबनिता उछाहँ मानि ब्याह सो करत है ॥१७॥

अस्य तिलक

इहाँ बीररस बर्नतु हैं बैरिन मैं भयानक, उपमा रूपक मैं सिंगार ल्यायो तातैं गुन है। १७ अ ।

पुनः–(दोहा)

भक्ति तिहारी यौं बसै, मो मन मैं श्रीराम।
बसै कामिजन-हियनि ज्यौं परम सुंदरी बाम ॥१८॥

[१५अ] बाधक–बोधक (भारत, वेंक०)।

[१६अ] भाव०–भाव के बोधक (भारत, वेंक०)। सो–तातैं (वही)।

[१७] के–को (सर०)। तनि–तानि (वही)। द्विजन–दुर्जन (वही)। न–ना (भारत, वेंक०, बेल०)। परत–परति (सर०, भारत, वेंक०)। सी–सु (भारत, वेंक०, बेल०)। झवावै–छुवावै (वही)। काँटनि–कंटनि (वही)।

[१७अ] उपमा–उपमा औ (भारत, वेंक०)।

पराये अंग लिये विरुद्धता गुण, यथा-(सवैया)

पीछे तिरीछे तकैं उचकैं न छोड़ाइ सकैं अटके द्रुम सारी।
जी मैं गहैं यों लुटेरनि के भ्रम भागतीं दीन-अधीन दुखारी।
गोरी कृसोदरी भोरी चितै सँग ही फिरैं दौरी किरात-कुमारी।
हिंदूनरेस के बैर तें यों बिचरैं बन बैरिन की बर नारी ॥१९॥

अस्य तिलक

इहाँ सिंगार करुना अद्भुत अपरांग है, बीररस अंगी है। १९ अ ॥

दीपति बार बार लक्षणं-(दोहा)

पुनि पुनि दीपति ही कहै, उपमादिक कछु नाहिं।
ताही तें सज्जन गनैं, याहू दूषन माहिं ॥२०॥

यथा-(सवैया)

पंकज-पाँयनि पैजनियाँ कटि घाँघरो किंकिनियाँ जरबीली।
मोती को हार हवेल बनीन पै सारी सोहावनी कंचुकी नीली।
ठोढ़ी मैं स्यामल बुंद अनूप तरयौनन की चुनियाँ चटकीली।
ईंगुर की सुरकी ढुरकी नथ भाल मैं लाल की बेंदी छबीली ॥२१॥

असमय उक्ति, यथा-(दोहा)

सजि सिंगार सर पै चढ़ी, सुंदरि निपट सुबेस।
मनो जीति भुवलोक सब, चलि जीतन दिविदेस ॥२२॥

अस्य तिलक

सहगामिनी देखिकै सांतरस बरनिबो कै दाया बरनिबो उचित है, सिंगार नहीं। १२ अ ॥

---

[१९] तिरीछे०-भिरैं छमकै (वेंक०)। अटके-अटकी (भारत, बेल०); अटकै (वेंक०)। के-की (भारत, वेंक०)।

[२१] मोती को-मोतिन (भारत, वेंक०, बेल०)। हवेल-हमेल (वही)। बनीनि-बलीन (वही)। मैं-पै (वही)। लाल की-बाल के (भारत); बाल की (बेल०)।

[२२] चलि०-चली जितन (भारत, वेंक०, बेल०)।

[२२अ] दाया-दया (भारत, वेंक०)।

पुनः-(दोहा)

राम आगमन सुनि कह्यो, राम-बंधु सौं बात।
कंकन मोहिँ छोराइबे, उतै जाहु तुम तात ॥२३॥

अस्य तिलक

इहाँ कंकन की भीर छाँडिकै राम को उन पै जाइबो उचित हो सो न कह्यो, यामैं कादरता जान्यो जात है। २३ अ॥

अन्य रसदोष-लक्षणं-(दोहा)

अंगहि को बरनन करै, अंगी देइ भुलाइ।
येऊ है रसदोष मैं, सुनौ सकल कबिराइ ॥२४॥

अंग को वर्णन, यथा

दासी सौं मंडन समै, दर्पन माँग्यो बाम।
बैठि गई सो सामुहे, करि आनन अभिराम ॥२५॥

अस्य तिलक

इहाँ नाइका अंगी है दासी अंग है, यातैं दासी की अति सोभा बर्निबो दोष है। २५ अ॥

अंगी को भूलिबो, यथा-(दोहा)

पीतम पठै सहेट निज, खेलन अटकी जाइ।
तकि तिहिँ आवत उतहि तैं, तिय मन मन पछिताइ ॥२६॥

अस्य तिलक

इहाँ नायक तैं खेल ही मैं प्रेम अधिक ठहर्यो तौ यह भूल्यो, यहै रसदोष है। २६ अ॥

प्रकृतिविपर्यय-वर्णनं-(दोहा)

तीनि भाँति कै प्रकृति है, दिब्य अदिब्य प्रमान।
तीजो दिब्यादिब्य यह, जानत सुकबि सुजान ॥२७॥
देव दिब्य करि मानिये, नर अदिब्य करि लेखि।
नर-अवतारी देवता, दिब्यादिब्य बिसेषि ॥२८॥

[२३अ] हो-है (भारत, वेंक०)। जान्यो०-जानी जाति (भारत)।
[२५] सो-सोइ (भारत, वेंक०)।
[२६] तहिँ-तकि (सर०)। पछिताइ-पछितात (वही)।
[२६अ] ठहर्यो-ठहरायो (भारत, वेंक०)।

सोक हास रति अद्भुतहि, लीन अदिव्यै लोग।
दिव्यादिव्य में सकति तन नहीं दिव्य को जोग ॥२९॥
चारि भाँति नायक कह्यो, तिन्हैं चारि रस मूल।
किये और के और मैं, प्रकृतिबिपर्जय तूल ॥३०॥
धीरोदात्त सु बीर मैं, धीरोद्धत रिसवंत।
धीरललित सिंगार सौं, सांत धीरपरसंत ॥३१॥
स्वर्ग पतालै जाइबो, सिंधुउलंघन-चाव।
भस्म ठानिबो क्रोध तें, सातौ दिव्य-सुभाव ॥३२॥
ज्यों बरनत पितु मातु को, नहिं सिंगार रस लोग।
त्यों सुरतादिक दिव्य मैं, बरनत लगै अजोग ॥३३॥
एहि बिधि औरौ जानिये, अनुचित बरनन चोख।
प्रकृति बिपर्जय होत है, अरु सिगरो रसदोष ॥३४॥

(सवैया)

पाटी सी है परिपाटी कबित्त की ताकौं त्रिधा बिधि बुध्दि बनाई।
तीछन एक सुपंथ करै बरमानि लौं दास अरै जिहि ठाई।
पंथहि पाइ भलो इक खीलै ज्यौं होत सुदार की कील सुहाई।
एकै न पंथ बिचार को मानै बिदारई जानै कुठार की नाई ॥३५॥

(दोहा)

अमित काव्य के भेद मैं, बरन्यो मति-अनुरूप।
संपूरन कीन्ह्यो सुमिरि, श्रीहरि-नाम अनूप ॥३६॥

श्रीरामनाम-महिमा-(सवैया)

पूरनसक्ति दुबर्न को मंत्र है जाहि सिवादि जपैं सब कोऊ।
पावक पौन से मीत लसैं मिलि जारत पाप-पहार कितोऊ।

---

[२९] दिव्यादिव्य०–दिव्यादिव्यन मैं सकति नहीं (भारत, वेंक०, बेल०)। को–के (वही)।

[३१] सांत–संत (सर०); सांति (वेंक०)। पर–सो (वही)।

[३३] सुरतादिक–सुर आदिक (बेल०)।

[३५] करै०–बिचार का मालो (सर०)। खीलै–खोलै (भारत, वेंक०, बेल०)।

[३६] कीन्ह्यो–कीन्हौ (सर०)।

दास दिनेस कलाधर भेस बने जग के निसतारक जोऊ।
मुक्ति-महीरुह के दुखते किधौं राम के नाम के आखर दोऊ ॥३७॥

आगर बुध्धि-उजागर है भवसागर की तरनी को खवैया।
व्यक्तबिधान अनंदनिधान है भक्ति-सुधारस प्रान-भवैया॥
जानि यहै पुनि मानि वहै मन मानिकै *दास* भयो है सेवैया।
मुक्ति को धाम है भुक्ति को दाम है राम को नाम है कामद गैया ॥३८॥

पावतो पार न वार कोऊ परिपूरन पाप को पानिप जो तो।
बूड़तो भूठि तरंगनि मैं मिलि मोहमई सरितानि को सोतो।
*दास*जू त्रास-तिमिंगिल सौं तम-ग्राह के ग्रास तैं बाँचतो को तो।
जौ भवसिंधु अथाह निबाह कौं राम को नाम मलाह न होतो ॥३९॥

आपु दसैसिर-सत्रु हन्यो यह सै-सिर दारिद को बधिको है।
सिंधु बँधाइ तर्थो तुम हौ यह तारन मोह-महोदधि को है।
रावरे कौं सुनिये यह जाहिर बासी सबै घट के मधि को है।
रामजू रावरे नाम मैं *दास* लख्यो गुन रावरे तैं अधिको है ॥४०॥

सिध्धनि को सिरताज भयो कबि कोबिद नामहि की सेवकाई।
गीध गयंद अजामिल से तरि गे सब नामहि की प्रभुताई।
दास कहै प्रहलाद उबारत रामहु तैं पहिले कहि ठाई।
राम बड़ाई न, नाम बड़ो भयो राम बड़ो निज नाम बड़ाई ॥४१॥

राम को दास कहावै सबै जग *दास*हु रावरो दास निहारो।
भारी भरोसो हिये सब ऊपर ह्वैहै मनोरथ सिध्ध हमारो।

---

[३७] से मीत-समेत (भारत बेल०)। दुखते-द्रुम हैं (वही)।
[३८] है-हौ (सर०)। को-के (भारत, वेंक०, बेल०)। पुनि-अनु (भारत, बेल०)। वहै-यहै (वही)। भयो है-भएहू (सर०); नएहू (वेंक०)।
[३९] निबाह कौं-निबाहते को (सर०); निबाहते (वेंक०)।
[४०] तर्यो०-तरे तुम तो (भारत, बेल०)। तारन-तारक (वही)। मोह-मोहि (सर्वत्र)। 'सर०' मैं चौथा चरण छूट गया है।
[४१] कहि-किहि (भारत, बेल०)।
[४२] निनारो-निहारो (भारत, बेल०)। भयो-भए (सर०)। रहै-रह्यो (भारत, बेल०)।

राम अदेवनि के कुल घाले भयो रहै देवन को रखवारो।
दारिद घालिबो दीन को पालिबो राम को नाम है काम तिहारो ॥४२॥

क्यों लिखौं राम को नाम तुम्हैं कहाँ कागद ऐसो पुनीत मैं पाऊँ।
आखर आछे अनूठे तिहारे क्यों जूठी जुबान सों हौं रट लाऊँ।
दासजू पावनता भरे पुंज हौ मोह भरे हिय मैं क्यों बसाऊँ।
काम है मेरो तमाम यहै सब जाम गुलाम तिहारै कहाऊँ ॥४३॥

जानौं न भक्ति न ज्ञान की सक्ति हौं दास अनाथ अनाथ के स्वामि जू।
माँगौं इतो बर दीन दयानिधि दीनता मेरी चितै भरौ हामि जू।
ज्यों बिच नाम के नेह को ब्योर है अंतरजामि निरंतर जामि जू।
मो रसना को रुचै रस ना तजि राम नमामि नमामि नमामि जू ॥४४॥

इति श्रीसकलकलाधरकलाधरवंशावतंसश्रीमन्महाराजकुमार-
श्रीबाबूहिंदूपतिविरचिते काव्यनिर्णये रस-
दोषोद्धारवर्णनं नाम पंचविंशतिमो-
ल्लासः ॥ २५ ॥

---

[४३] तुम्हैं-हिये (भारत, बेल०); नि मैं (वेंक०)। जूठी-झूठी (वही)। मोह-नोह (वही)। हिय मैं-हियरे (भारत, बेल०)। तिहारै-तिहारो (भारत, वेंक०, बेल०)।

[४४] को-के (सर०)।

परिशिष्ट

१—आधार-पद्य

[बड़े कोष्ठक मेँ पहली संख्या काव्यनिर्णय के उल्लास की और दूसरी छंद की है]

[१।१२] शक्तिर्निपुणता लोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षणात्।
काव्यज्ञशिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे ॥
—काव्यप्रकाश, १ ३

प्रतिभैव श्रुताभ्याससहिता कवितां प्रति ।
हेतुर्मृदम्बुसंबद्धबीजव्यक्तिर्लतामिव ॥
—चंद्रालोक, १।६

[२।४८] मुखं विकसितस्मितं वशितवक्रिम प्रेक्षितं ।
समुच्छलितविभ्रमा गतिरपास्तसंस्था मतिः ।
उरो मुकुलितस्तनं जघनमंसबन्धोद्धुरं
बतेन्दुवदनातनौ तरुणिमोद्गमो मोदते ॥
—काव्यप्रकाश, २।९

[२।४९] श्रीपरिचयाज्जडा अपि भवन्त्यभिज्ञा विदग्धचरितानाम्।
उपदिशति कामिनीनां यौवनमद एव ललितानि ॥
—वही, २।१०

[२।५६] अइपिहुलं जलकुंभं घेत्तूण समागदह्मि सहि तुरिअम्।
समसेअसलिलणीसासणीसहा वीसमामि खणम् ॥
(अतिपृथुलं जलकुम्भं गृहीत्वा समागतास्मि सखि त्वरितम्।
श्रमस्वेदसलिलनिःश्वासनिःसहा विश्राम्यामि क्षणम् ॥)
—वही, ३।१३

[२।५४] ओण्णिद्दं दोब्बल्लं चिंता अलसत्तणं सणीससिअम्।
मह मंदभाइणीए केरं सहि तुहवि अहह परिहवइ ॥
(औन्निद्रयं दौर्बल्यं चिन्तालसत्वं सनिःश्वसितम्।
मम मन्दभागिन्याः कृते सखि त्वामपि अहह परिभवति ॥)
—वही, ३।१४

[२।५६] तइया मह गण्डत्थलणिमिअं दिट्ठिं ण णेसि अण्णत्तो ।
एण्हिं सच्चेअ अहं ते अ कवोला ण सा दिट्ठि ॥

(तदा मम गण्डस्थलनिमग्नां दृष्टिं न नयस्यन्यत्र।
इदानीं सा चैवाहं तौ च कपोलौ न सा दृष्टिः॥)
– वही, ३।१६

[२।५७] उद्देशोऽयं सरसकदली श्रेणिशोभातिशायी।
कुञ्जोत्कर्षाङ्कुरितरमणीविभ्रमो नर्मदायाः।
किञ्चैतस्मिन् सुरतसुहृदस्तन्वि ते वान्ति वाता
येषामग्रे सरति कलिताकाण्डकोपो मनोभूः॥
—वही, ३।१७

[२।५८] णोल्लेइ अणुण्णमणा अत्ता मां घरभरम्मि सअलम्मि।
खणमेत्तं जइ संझाइ होइ ण व होइ वीसामो॥
(नुदति अनन्यमनाः श्वश्रूर्मां गृहभरे सकले।
क्षणमात्रं यदि सन्ध्यायां भवति न वा भवति विश्रामः॥)
—वही, ३।१८

[२।६०] सुव्वइ समागमिस्सदि तुज्झ पिओ अज्ज पहरमेत्तेण।
एमेअ किंत्ति चिट्ठसि ता सहि सज्जेसु करणिज्जम्॥
(श्रूयते समागमिष्यति तव प्रियोऽद्य प्रहरमात्रेण।
एवमेव किमिति तिष्ठसि तत्सखि सज्जय करणीयम्॥)
—वही, ३।१६

[२।६१] अन्यत्र यूयं कुसुमावचायं कुरुध्वमत्रास्मि करोमि सख्यः।
नाहं हि दूरं भ्रमितुं समर्था प्रसीदतायं रचितोऽञ्जलिर्वः॥
—वही, ३।२०

[२।६५] अत्ता एत्थ णिमज्जइ एत्थ अहं दिअहए पलोएहि।
मा पहिअ रत्तिअन्धअ सेज्जाए मह णिमज्जहिसि॥
श्वश्रूरत्र निमज्जत्यत्राहं दिवस एव प्रलोकय।
मा पथिक रात्र्यन्धक शय्यायां मम निमङ्क्ष्यसि॥
—काव्यप्रदीप, ३।२२

[२।६७] माए घरोवअरणं अज्ज हु णत्थि त्ति साहिअं तुमए।
ता भण किं करणिज्जं एमेअ ण वासरो ठाइ।
(मातर्गृहोपकरणमद्य हि नास्तीति साधितं त्वया।
तद्भण किं करणीयमेवमेव न वासरः स्थायी॥)
—काव्यप्रकाश, २।६

[२।६८] साहेन्ती सहि सुहअं खणे खणे दूणिआसि मज्झकए।
सब्भावणेहकरणिज्जसरिसअं दाव विरइअं तुमए ॥
(साधयन्ती सखि सुभगं क्षणे क्षणे दुनोषि मत्कृते।
सद्भावस्नेहकरणीयसदृशकं तावद्विरचितं त्वया ॥)
—वही, २।७

[२।६९] उअ णिच्चलणिप्पंदा भिसिणीपत्तम्मि रेहइ बलाआ।
णिम्मलमरगअभाअणपरिट्ठिआ संखसुत्तिव्व ॥
(ऊह निश्चलनिस्पन्दा बिसिनीपत्रे राजते बलाका।
निर्मलमरकतभाजनपरिस्थिता शङ्खशुक्तिरिव ॥)
—वही, २।८

[४।१७] वियदलिमलिनाम्बुगर्भमेघं
मधुकरकोकिलकूजितैर्दिशां श्रीः।
धरणिरभिनवाङ्कुराङ्कटङ्का
प्रणतिपरे दयिते प्रसीद मुग्धे ॥
—वही, ४।२७

[४।२१] हरत्यघं संप्रति हेतुरेष्यतः शुभस्य पूर्वाचरितैः कृतं शुभैः।
शरीरभाजां भवदीयदर्शनं व्यनक्ति कालत्रितयेऽपि योग्यताम् ॥
—वही, ४।४६

[५।१७] अविरलकरवालकम्पनैर्भ्रुकुटीतर्जनगर्जनैर्मुहुः।
ददृशे तव वैरिणां मदः स गतः क्वापि तवेक्षणे क्षणात् ॥
—वही, ५।१२०

[६।१४] शून्यं वासगृहं विलोक्य शयनादुत्थाय किञ्चिच्छनै-
र्निद्राव्याजमुपागतस्य सुचिरं निर्वर्ण्य पत्युर्मुखम्।
विस्रब्धं परिचुम्ब्य जातपुलकामालोक्य गण्डस्थलीं
लज्जानम्रमुखी प्रियेण हसता बाला चिरं चुम्बिता ॥
—वही, ४।३०

[६।३३] अलससिरमणी धुत्ताणं अग्गिमो पुत्ति धणसमिद्धिमओ।
इअ भणिएण णअंगी पप्फुल्लविलोअणा जाआ ॥
(अलसशिरोमणि धूर्त्तानामग्रिमः पुत्रि धनसमृद्धिमयः।
इति भणितेन नताङ्गी प्रफुल्लविलोचना जाता ॥)
—वही, ४।६०

[६।३४] धन्याऽसि या कथयसि प्रियसङ्गमेऽपि
विस्रब्धचाटुकशतानि रतान्तरेषु ।
नीवीं प्रति प्रणिहिते तु करे प्रियेण
सख्यः शपामि यदि किञ्चिदपि स्मरामि ॥

—वही, ४।६१

[६।३७] कैलासस्य प्रथमशिखरे वेणुसंमूर्छनाभिः
श्रुत्वा कीर्त्तिं विबुधरमणीगीयमानां यदीयाम् ।
स्रस्तापाङ्गाः सरसबिसिनीकाण्डसंजातशङ्का
दिङ्मातङ्गाः श्रवणपुलिने हस्तमावर्त्तयन्ति ॥

— वही, ४।६४

[६।३९] सहि विरइऊण माणस्स मज्झ धीरत्तणेण आसासम् ।
पिअदंसणविहलंखलखणम्मि सहसत्ति तेण ओसरिअम् ॥
(सखि विरचय्य मानस्य मम धीरत्वेनाश्वासम् ।
प्रियदर्शनविशृङ्खलक्षणे सहसेति तेनापसृतम् ॥

—वही, ४।६६

[६।४१] उल्लोल्लकरअरअणक्खएहिं तुअ लोअणेसु मह दिण्णम् ।
रत्तंसुअं पसाओ कोवेण पुणो इमे ण अक्कमिए ॥
(आर्द्रार्द्रकरजरदनक्षतैस्तव लोचनयोर्मम दत्तम् ।
रक्तांशुकं प्रसादः कोपेन पुनरिमे नाक्रान्ते ॥)

—वही, ४।७०

[६।४३] जा ठेरं व हसंती कइवअणंबुरुहबद्धविणिवेसा ।
दावेइ भुअणमंडलमण्णं विअ जअइ सा वाणी ॥
(या स्थविरमिव हसन्ती कविवदनाम्बुसह रुद्धविनिवेशा ।
दर्शयति भुवनमण्डलमन्यदिव जयति सा वाणी ॥

—वही, ४।६७

[६।५८] राईसु चंदधवलासु ललिअमप्फालिऊण जो चावम् ।
एकच्छत्तं विअ कुणइ भुअणरज्जं विअंभंतो ॥
(रात्रीषु चन्द्रधवलासु ललितमास्फाल्य यश्चापं ।
एकच्छत्रमिव करोति भुवनराज्यं विजृम्भमाणः ॥)

—वही, ४।८४

[६।६६] गामारिअम्हि गामे वसामि, णअरट्ठिइं ण जाणामि ।
णाअरिआणं पइणो हरेमि जा होमि सा होमि ।

(ग्रामरुहास्मि ग्रामे वसामि नगरस्थितिं न जानामि ।
नागरिकीणां पतीन् हरामि या भवामि सा भवामि ॥
—वही, ४।१०१

[७।५] गुणिगणगणनारम्भे न पतति कठिनी सुसम्भ्रमाद्यस्य ।
तेनाम्बा यदि सुतनी वद वन्ध्या कीदृशी भवति ॥
—सुभाषित

[७।११] ब्राह्मणातिक्रमत्यागो भवतामेव भूतये ।
जामदग्न्यस्तथामित्रमन्यथा दुर्मनायते ॥
—काव्यप्रकाश, ५।१३०

[७।१४] अदृष्टे दर्शनोत्कण्ठा दृष्टे विश्लेषभीरुता ।
नादृष्टेन न दृष्टेन भवता विद्यते सुखम् ॥*
—वही, ५।१२८

[७।१८] भ्रमिमरतिमलसहृदयतां प्रलयं मूर्च्छां तमः शरीरसादञ्च ।
मरणं च जलदभुजगजं प्रसह्य कुरुते विषं वियोगिनीनाम् ॥
—वही, ५।१२६

[७।२१] हरस्तु किञ्चित्परिवृत्तधैर्यश्चन्द्रोदयारम्भ इवाम्बुराशिः ।
उमामुखे बिम्बफलाधरोष्ठे व्यापारयामास विलोचनानि ॥
—वही, ५।१२६

[७।२३] वाणीरकुडंगुड्डीणसउणिकोलाहलं सुणंतीए ।
वरकम्मवावडाए बहुए सीअंति अंगाइं ॥
(वानीरकुञ्जोड्डीनशकुनिकोलाहलं शृण्वन्त्याः ।
गृहकर्म्मव्यापृतायाः वध्वाः सीदन्त्यङ्गानि ॥)
—वही, ५।१३२

[८।४५] दृष्टंचेद्वदनं तस्याः किं पद्मेन किमिन्दुना ।
—चंद्रालोक, ५।१६

[८।४८] गुणदोषौ बुधोगृह्णन्निदुक्ष्वेडाविवेश्वरः ।
शिरसा श्लाघते पूर्वं परं कण्ठे नियच्छति ॥
—कुवलयानंद, ६

---

* इन दुखिया अँखियान कौं, सुख सिरजौई नाहिँ ।
देखत बनै न देखतै, अनदेखे अकुलाहिँ ॥
—बिहारी

[८।६३] दानं ददत्यपि जलैः सहसाधिरूढे
को विद्यमानगतिरासितुमुत्सहेत।
यद्दन्तिनः कटकटाहतटान्मिमंक्षो
र्मंक्षूदपाति परितः पटलैरलीनाम् ॥

—वही, १२२

[८।७४] अरण्यरुदितं कृतं शवशरीरमुद्वर्तितं
स्थलेऽब्जमवरोपितं सुचिरमूषरे वर्षितम्।
श्वपुच्छमवनामितं बधिरकर्णजापः कृतो
धृतोऽन्धमुखदर्पणो यदबुधो जनः सेवितः ॥

—वही, ५२

[८।८६] यश्च निम्बं परशुना यश्चैनं मधुसर्पिषा।
यश्चैनं गन्धमाल्याद्यैः सर्वस्य कटुरेव सः ॥

—वही, ४५

[६।२८] वदनमिदं न सरोजं नयने नेन्दीवरे एते।
इह सविधे मुग्धदृशो मधुकर न मुधा परिभ्राम्य ॥

—साहित्यदर्पण, १०।३६

[१०।६] नित्योदितप्रतापेन त्रियामामीलितप्रभः।
भास्वतानेन भूपेन भास्वानेषः विनिर्जितः ॥

—काव्यप्रकाश, १०।४६६

[१०।८] इयं सुनयना दासीकृततामरसश्रिया।
आननेनाकलङ्केन निन्दतीन्दुं कलङ्किनम् ॥

—वही, १०।४६५

[११।४] अन्येयं रूपसंपत्तिरन्या वैदग्ध्यधोरणी।
नैषा नलिनपत्राक्षी सृष्टिः साधारणी विधेः ॥

—कुवलयानंद, ३७

[११।७] अनयोरनवद्याङ्गि स्तनयोर्जृम्भमाणयोः।
अवकाशो न पर्याप्तस्तव बाहुलतान्तरे ॥

—वही, ३६

[११।६] कतिपयदिवसैः क्षयं प्रयायात्कनकगिरिः कृतवासरावसानः।
इति मुदमुपयाति चक्रवाकी वितरणशालिनि वीररुद्रदेवे ॥

—वही, ३८

[११।१२] यामि न यामीति धवे वदति पुरस्तात्क्षणेन तन्वङ्ग्याः ।
गलितानि पुरो वलयान्यपराणि तथैव दलितानि ॥
—वही, ४१

[११।१५] आलिङ्गन्ति समं देव ज्यां शराश्च पराश्च ते ।
—चंद्रालोक, ५।४०

[११।१६] मुञ्चति मुञ्चति कोशं भजति च भजति प्रकम्पमरिवर्गः ।
हम्मीरवीरखड्गे त्यजति त्यजति क्षमामाशु ॥
—कुवलयानंद, ४०

[११।१८] त्वयि दातरि राजेन्द्र याचकाः कल्पशाखिनः ।
—चंद्रालोक, ५।३६

[११।२३] असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिंधुपात्रे
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी ।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालम्
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति ॥*
—महिम्नःस्तोत्र

[११।२७] त्वत्सूक्तिषु सुधा राजन्भ्रान्ताः पश्यन्ति तां विधौ ।
—चंद्रालोक, ५।३६

[११।२६] अनुच्छिष्टो देवैरपरिदलितो राहुदशनैः
कलङ्केनाश्लिष्टो न खलु परिभूतो दिनकृता ।
कुहूभिर्नो लिप्तो न च युवतिवक्त्रेण विजितः
कलानाथः कोऽयं कनकलतिकायामुदयते ॥
—सुभाषित

[११।४३] यन्मध्यदेशादपि ते सूक्ष्मं लोलाक्षि दृश्यते ।
मृणालसूत्रमपि ते न संमाति स्तनान्तरे ॥
—कुवलयानंद, ६६

[११।४५] दिवमप्युपयातानामाकल्पमनल्पगुणगणा येषाम् ।
रमयन्ति जगन्ति गिरः कथमिह कवयो न ते वन्द्याः ॥
—काव्यप्रकाश, १०।५५६

[१२।२०] व्यावल्गत्कुचभारमाकुलकचं व्यालोलहारावलि
प्रेङ्खत्कुण्डलशोभिगण्डयुगलं प्रस्वेदि वक्त्राम्बुजम् ।

---

* कागज धरनि करै द्रुम लेखनि जल सायर मसि घोर ।
लिखैं गनेस जनम भरि मम कृत तऊ दोष नहिं ओर ॥—सूरदास

शश्वद्दत्ताकरप्रहारमधिकश्वासं रसादेतया
यस्मात्कन्दुक सादरं सुभगया संसेव्यसे तत्कृती ॥

—कुवलयानंद, ६०

[१२।२६] विधिरेवविशेषगर्हणीयः करट त्वं रट कस्तवापराधः।
सहकारतरौ चकार यस्ते सहवासं सरलेन कोकिलेन ॥

—वही, ७१

[१२।३३] यद्वक्त्रं मुहुरीक्षसे न धनिनां ब्रूषे न चाटून्मृषा
नैषां गर्ववचः शृणोषि न च तान्प्रत्याशया धावसि ।
काले बालतृणानि खादसि परं निद्रासि निद्रागमे
तन्मे ब्रूहि कुरङ्ग कुत्र भवता किन्नाम तप्तं तपः ।

—वही, ७०

[१२।३४] लावण्यद्रविणव्ययो न गणितः क्लेशो महानर्जितः
स्वच्छन्दं चरतो जनस्य हृदये चिन्ताज्वरो निर्मितः ।
एषापि स्वगुणानुरूपरमणाभावाद्वराकी हता
कोऽर्थश्चेतसि वेधसा विनिहितस्तन्वीमिमां तन्वता ।

—वही, ७१

[१३।३१] लुब्धो न विसृजत्यर्थं नरो दारिद्र्यशङ्कया
दातापि विसृजत्यर्थं तयैव ननु शङ्कया ॥

—वही, १०२

[१३।३४] हृदि स्नेहक्षयो नाभूत्स्मरदीपे ज्वलत्यपि ।

—चंद्रालोक, ५।८२

[१३।४१] त्वत्खड्गखण्डितसपत्नविलासिनीनां
भूषा भवन्त्यभिनवा भुवनैकवीर ।
नेत्रेषु कङ्कणमथोरुषु पत्रवल्ली
चोलेन्द्रसिंह तिलकं करपल्लवेषु ॥

—कुवलयानंद, ८५

[१३।४३] मोहं जगत्त्रयभुवामपनेतुमेतदादाय रूपमखिलेश्वर देहभाजाम्।
निःसीमकांतिरसनीरधिनामुनैव मोहं प्रवर्धयसि मुग्धविलासिनीनाम् ॥

—वही, ८६

[१३।५१] सिंहिकासुतसंत्रस्तः शशः शीतांशुमाश्रितः ।
जग्रसे साश्रयं तत्र तमन्यः सिंहिकासुतः ॥

—काव्यप्रकाश, ५३८

दिवि श्रितवतश्चन्द्रं सैंहिकेयभयाद्भुवि ।
शशस्य पश्य तन्वं ङ्गिसाश्रयस्य ततो भयम् ॥

—कुवलयानंद, ८६

[१४।४] अपि मां पावयेत्साध्वी स्नात्वेतीच्छति जान्हवी ।

—चंद्रालोक, ५।१३२

[१४।११] लोकानन्दन चंदनद्रुम सखे मास्मिन्वने स्थीयतां
दुर्वंशैः परुषैरसारहृदयैराक्रान्तमेतद्वनम् ।
ते ह्यन्योन्यनिघर्षजातदहनज्वालावलीसंकुला
न स्वान्येव कुलानि केवलमिदं सर्वं दहेयुर्वनम् ॥

—कुवलयानंद, १३४

[१४।१५] त्वं चेत्संचरसे वृषेण लघुता का नाम दिग्दन्तिनां
व्यालैः कङ्कणभूषणानि कुरुषे हानिर्न हेम्नामपि ।
मूर्द्धन्यं कुरुषे सितांशुमयशः किं नाम लोकत्रयी-
दीपस्याम्बुजबान्धवस्य जगतामीशोऽसि किं ब्रूमहे ॥

—वही, १३५

[१४।२३] आघ्रातं परिचुम्बितं परिमुहुर्लीढं पुनश्चर्वितं
त्यक्तं वा भुवि नीरसेन मनसा तत्र व्यथां मा कृथाः ।
हे सद्रत्न तवैव देव कुशलं यद्वानरेणादरा-
दन्तःसारविलोकनव्यसनिना चूर्णीकृतं नाश्मना ॥

—कुवलयानंद, १३४

[१४।२६] प्रणमत्युन्नतिहेतोर्जीवनहेतोर्विमुञ्चति प्राणान् ।
दुःखीयति सुखहेतोः को मूढः सेवकादन्यः ॥

—साहित्यदर्पण, १०।७१

नमन्ति सन्तस्त्रैलोक्यादपि लब्धुं समुन्नतिम् ।

—चंद्रालोक, ५।६३

[१४।३५] द्वारं खड्गिभिरावृतम्बहिरपि प्रस्विन्नगण्डैर्गजै-
रन्तः कञ्चुकिभिः स्फुरन्मणिधरैरध्यासिता भूमयः ।
आक्रान्तं महिषीभिरेव शयनं तत्त्वद्विषां मन्दिरे
राजन्सैव चिरन्तनप्रणयिनी शून्येऽपि राज्यस्थितिः ॥

— कुवलयानंद, १४२

[१४।३६] नीलोत्पलानि दधते कटाक्षैरतिनीलताम् ।

—चंद्रालोक, १४४

[१४।३६] ये कन्दरासु निवसन्ति सदा हिमाद्रे-
स्त्वत्पातशङ्कितधियो विवशा द्विषस्ते ।
अप्यङ्गमुत्पुलकमुद्वहतां सकम्पं
तेषामहो बत भियां न बुधोऽप्यभिज्ञः ॥

—काव्यप्रकाश, ५४७

[१५।८] नीचप्रवणता लक्ष्मीर्जलजायास्तवोचिता ।

—चंद्रालोक, ५।६१

[१५।६] दवदहनादुत्पन्नो धूमो घनतामवाप्य वर्षैस्तम् ।
यच्छमयति तद्युक्तं सोऽपि च दवमेव निर्दहति ॥

—कुवलयानंद, ६१

[१५।१७] अद्यापि तिष्ठति दृशोरिदमुत्तरीयं धर्तुं पुरःस्तनतटात्पतितं प्रवृत्ते ।
वाचं निशम्य नयनं नयनं ममेति किंचित्तदा यदकरोत्स्मितमायताक्षी ॥

—वही, १६०

[१५।२६] कस्तूरिकामृगाणामण्डाद्गन्धगुणमखिलमादाय ।
यदि पुनरहं विधिः स्यां खलजिह्वायां निवेशयिष्यामि ॥

—वही, १२५

[१५।३५] यौवनं धनसंपत्तिः प्रभुत्वमविवेकिता ।
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम् ॥

—सुभाषित

[१५।३६] त्रियामा शशिना भाति शशी भाति त्रियामया ।

—चंद्रालोक, ५।६७

[१५।४२] यथोर्ध्वाक्षः पिबत्यम्बु पथिको विरलांगुलिः ।
तथा प्रपापालिकापि धारां वितनुते तनुम् ॥

—कुवलयानंद, ६७

[१५।४४] सद्यः शिरांसि चापान्वा नमयन्तु महीभुजः ।

—चंद्रालोक, ५।११३

[१५।४५] पतत्यविरतं वारि नृत्यन्ति च कलापिनः ।
अद्य कान्तः कृतान्तो वा दुःखस्यान्तं करिष्यति ॥

— कुवलयानंद, ११३

[१५।५७] अधरोऽयमधीराक्ष्या बन्धुजीवप्रभाहरः
अन्यजीवप्रभां हन्त हरतीति किमद्भुतम् ॥

— वही, ११६

[१६।२३] ग्रामेऽस्मिन्प्रस्तरप्राये न किंचित्पान्थ विद्यते ।
पयोधरोन्नतिं दृष्ट्वा वस्तुमिच्छसि चेद्वस ॥
—वही, १४८

१६।२६] सुधांशुकलितोत्तंसस्तापं हरतु वः शिवः ।
—चंद्रालोक, ५।६१

[१७।८] माने नेच्छति वारयत्युपशमे क्ष्मामालिखन्त्यां ह्रियां
स्वातन्त्र्ये परिवृत्य तिष्ठति करौ व्याधूय धैर्ये गते ।
तृष्णे त्वामनुबध्नता फलमियत्प्राप्तं जनेनामुना
यत्स्पृष्टो न पदा स एव चरणौ स्प्रष्टुं न संमन्यते ॥
—कुवलयानंद, १६६

[१७।१६] असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा यदार्यमस्यामभिलाषि मे मनः ।
सतां हि संदेहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणस्य वृत्तयः ॥
—वही, १७०

[१७।२०] स्फुटमसदवलग्नं तन्वि निश्चिन्वते ते
तदनुपलभमानास्तर्कयन्तोऽपि लोकाः ।
कुचगिरिवरयुग्मं यद्विनाधारमास्ते
तदिह मकर केतोरिन्द्रजालं प्रतीमः ॥
—वही

[१७।२२] ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां
जानन्ति ते किमपि तान्प्रति नैष यत्नः ।
उत्पत्स्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानधर्मा
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी ॥
—वही

[१७।२३] निर्णेतुं शक्यमस्तीति मध्यं तव नितम्बिनी ।
अन्यथा नोपपद्येत पयोधरभरस्थितिः ॥
—वही

[१७।३१] ईदृशैश्चरितैर्जाने सत्यं दोषाकरो भवान् ।
—चंद्रालोके, ५।१६३

[७ ३५] सहस्व कतिचिन्मासान्मीलयित्वा विलोचने ।
—वही, ५।१५६

[१७।३८] मम रूपकीर्तिमहरद्भुवि यस्तदनु प्रविष्टहृदयेयमिति ।
त्वयि मत्सरादिव निरस्तदयः सुतरां क्षिणोति खलु तां मदनः ॥
—कुवलयानंद, ११८

[१८।१०] विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम् ।
पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्मस्ततः सुखम् ॥
—सुभाषित

[१८।२१] श्रोणीबन्धस्त्यजति[1] तनुतां सेवते मध्यभागः
पद्भ्यां मुक्तास्तरलगतयः संश्रिता लोचनाभ्याम् ।
धत्ते वक्षः कुचसचिवतामद्वितीयत्वमास्यं[2]
तद्गात्राणां गुणविनिमयः कल्पितो यौवनेन ॥
—काव्यप्रकाश-टीका, पर्याय में

[१८।२४] प्रायश्चरित्वा वसुधामशेषां छायासु विश्रम्य ततस्तरूणाम् ।
प्रौढिं गते संप्रति तिग्मभानौ शैत्यं शनैरन्तरपामयासीत् ॥
—कुवलयानंद, १०६

[१८।२५] बिम्बोष्ठ एव रागस्ते तन्वि पूर्वमदृश्यत ।
अधुना हृदयेऽप्येष मृगशावाक्षि लक्ष्यते ॥
—काव्यप्रकाश, १०।५१४

[१८।२७] पुराभूदस्माकं प्रथममविभिन्ना तनुरियं
ततो नु त्वं प्रेयान्वयमपि हताशाः प्रियतमाः ।
इदानीं नाथस्त्वं वयमपि कलत्रं किमपरं
हतानां प्राणानां कुलिशकठिनानां फलमिदम् ॥
—कुवलयानंद, ११०

[१६।६८] चित्ते विहुट्टदि ण खिद्दति सा गुणेसु
सेज्जासु लोट्टदि विसट्टदि दिम्मुहेसु ।
बोल्लम्मि वट्टदि पवट्टदि कव्वबन्धे
धाणेण तुट्टदि खणं तरुणी तरट्टी ॥
(चित्ते विघटिते न खिद्यसि सा गुणेषु शय्यासु लुठति विसर्पति दिङ्मुखेषु ।
वाक्ये वर्तते प्रवर्तते काव्यबन्धे ध्यानेन त्रुट्यति चिरं तरुणी प्रगल्भा ॥)
—काव्यप्रकाश, ८।३४३

[१६।६६] मित्रे क्वापि गते सरोरुहवने बद्धानने ताम्यति
क्रन्दत्सु भ्रमरेषु वीक्ष्य दयितासक्तं पुरः सारसम् ।
चक्राह्वेन वियोगिना विलसता नास्वादिता नोज्झिता
कण्ठे केवलमर्गलेव निहिता जीवस्य निर्गच्छतः ॥
—वही, ८।३४४

पाठांतर—१–भागः । २–च वक्त्रम् ।

१६।७०] अपसारय घनसारं कुरु हारं दूर एव किं कमलैः ।
अलमलमालि मृणालैरिति वदति दिवानिशं बाला ॥
—वही, ८।३४१

[२३।१५] प्राभ्रभ्राड्विष्णुधामाप्य विषमाश्वः करोत्ययम् ।
निद्रां सहस्रपर्णानां पालायनपरायणाम् ॥
—वही, ७।१७४

[२३।१८] आशीःपरम्परां वन्द्यां कर्णे कृत्वा कृपां कुरु ।
—वही, ७।१५४

[२३।२०] शरत्कालसमुल्लासिपूर्णिमाशर्वरीप्रियम् ।
करोति ते मुखं तन्वि चपेटापातनातिथिम् ॥
—वही, ७।१५७

[२३।२२] वज्रवैदूर्यचरणैः क्षतसत्त्वरजःपरा ।
निष्कम्पा रचिता नेत्रयुद्धं वेदय साम्प्रतम् ॥
—वही, ७।१८१

[२३।२३] क्लिष्टमर्थो यदीयोऽर्थश्रेणितः श्रेणिमृच्छति ।
हरिप्रियापितृवधूप्रवाहप्रतिमं वचः ॥
—चंद्रालोक, २।१२

[२३।२४] विहंगा वाहनं येषां त्रिकचा यत्र भूषणम् ।
सालया वामभागे च ते देवाः शरणं मम ॥
—सुभाषित

[२३।३६] न्यूनं त्वत्खड्गसम्भूतयशःपुष्पं नभस्तलम् ।
—चंद्रालोक, २।१८

[२३।३७] अधिकं भवतः शत्रून् दशत्यसिलताफणी ।
—वही

[२३।४१] मसृणचरणपातं गम्यतां भूः सदर्भा
विरचय सिचयान्तं मूर्ध्नि घर्मः कठोरः ।
तदिति जनकपुत्री लोचनैरश्रुपूर्णैः
पथि पथिकवधूभिः शिक्षिता वीक्षिता च ॥
—काव्यप्रकाश, ७।२२६

[२३।४५] चरणानतकान्तायास्तन्वि कोपस्तथापि ते ।
—साहित्यदर्पण, ७।७

[२३।४८] किमिति न पश्यसि कोपं पादगतं बहुगुणं गृहाणेमम् ।
नतु मुञ्च हृदयनाथं कण्ठे मनसस्तमोरूपम् ॥
—काव्यप्रकाश, ७।२३६

[२३।५२] राममन्मथशरेण ताडिता दुःसहेन हृदये निशाचरी ।
गन्धवद्रुधिरचन्दनोक्षिता जीवितेशवसतिं जगाम सा ॥
—वही, ७।२५४

[२३।५८] अतिविततगगनसरणिप्रसरणपरिमुक्तविश्रमानन्दः ।
मरुदुल्लासितसौरभकमलाकरहासकृद्रविर्जयति ॥
—वही, ७।२५५

[२३।६०] सहस्रपत्रमित्रं ते वक्त्रं केनोपमीयते ।
कुतस्तत्रोपमा यत्र पुनरुक्तः सुधाकरः ॥
—चंद्रालोक, २।३१

[२३।६२] भूपालरत्न निर्दैन्यप्रदानप्रथितोत्सव ।
विश्राणय तुरङ्गम्मे मातङ्गं वा मदालसम् ॥
—काव्यप्रकाश, ७ २६०

देहि मे वाजिनं राजन् गजेन्द्रं वा मदालसम् ।
—साहित्यदर्पण, ७।६

[२३।६३] स्वपिति यावदयं निकटे जनः स्वपिमि तावदहं किमपैति ते ।
तदुपसंहर कूर्परमायतं त्वरितमूरुमुदञ्चय कुञ्चितम् ॥
—काव्यप्रकाश, ७।२६१

स्वपिहि त्वं समीपे मे स्वपिम्येवाधुना प्रिये ।
—साहित्यदर्पण, ७।६

[२३।६४] ब्रूत किं सेव्यतां चन्द्रमुखोचन्द्रकिरीटयोः ॥
—चंद्रालोक, २।३४

[२३।६७] यदि दहत्यनलोऽत्र किमद्भुतं यदि च गौरवमद्रिषु किं ततः ।
लवणमम्बु सदैव महोदधेः प्रकृतिरेव सतामविषादिता ॥
—काव्यप्रकाश, ७।२७२

[२३।६६] याताः प्राणभृतां मनोरथगतीरुल्लङ्घ्य यत्सम्पद-
स्तस्याभासमणीकृताश्मसु मणेरश्मत्वमेवोचितम् ॥
—वही, ७।२७३

[२३।७२] कल्लोलवेल्लितदृषत्परुषप्रहारै
रत्नान्यमूनि मकराकर मावमंस्थाः ।
किं कौस्तुभेन भवतो विहितो न नाम
याञ्चाप्रसारितकरः पुरुषोत्तमोऽपि ॥
—वही, ७।२७६

[२३।७४] श्यामां श्यामलिमानमानयत भोः सान्द्रैर्म्मसीकूर्चकै-
र्म्मन्त्रं तन्त्रमपि प्रयुज्य हरत श्वेतोत्पलानां त्विषम् ।
चन्द्रं चूर्णयत क्षणाच्च कणशः कृत्वा शिलापट्टके
येन द्रष्टुमहं क्षमे दश दिशस्तद्वक्त्रमुद्राङ्किताः ।
—वही, ७।२७५

[२३।७६] वाताहारतया जगद्विषधरैराश्वास्य निःशेषितं
ते ग्रस्ताः पुनरभ्रतोयकणिकातीव्रव्रतैर्बर्हिभिः ।
तेऽपि क्रूरचमूरुचर्म्मवसनैर्नीताः क्षयं लुब्धकै-
र्दम्भस्य स्फुरितं विदन्नपि जनो जाल्मो गुणानीहते ॥
—वही, ७.२८२

[२३।८०] अरे रामाहस्ताभरण भसलश्रेणिशरण
स्मरक्रीडाव्रीडाशमन विरहिप्राणदमन
सरोहंसोत्तंस प्रचलदल नीलोत्पल सखे
सखेदोऽहं मोहं श्लथय कथय क्वेन्दुवदना ।
— वही, ७ २८३

[२३।८५] ध्वाङ्क्षाः सन्तश्च तनयं स्वं परञ्च न जानते ।
—चंद्रालोक, २।३८

[२३।८६] श्रुतेन बुद्धिर्व्यसनेन मूर्खता मदेन नारी सलिलेन निमग्ना ।
निशा शशाङ्केन धृतिः समाधिना नयेन चालंक्रियते नरेन्द्रता ॥
—काव्यप्रकाश, ७।२.६

[२३।८७] हन्तुमेव प्रवृत्तस्य स्तब्धस्य विवरैषिणः ।
यथाऽऽशु जायते पातो न तथा पुनरुन्नतिः ॥
—वही, ७।२८५

[२४।६] यद्वञ्चनाहितमतिर्बहु चाटुगर्भं
कार्योन्मुखः खलजनः कृतकं ब्रवीति ।

तत्साधवो न न विदन्ति विदन्ति किन्तु
कर्तुं वृथा प्रणयमस्य न पारयन्ति
—वही, ७।३१२

[२४।१४] सुसितवसनालङ्कारायां कदाचन कौमुदी-
महसि सुदृशि स्वैरं यान्त्यां गतोऽस्तमभूद्विधुः ।
तदनु भवतः कीर्तिः केनाप्यगीयत येन सा
प्रियगृहमगान्मुक्ताशङ्का क नासि शुभप्रदः ॥
—वही, ७।२६६

[२५।३] सव्रीडा दयितानने सकरुणा मातङ्गचर्माम्बरे
सत्रासा भुजगे सविस्मयरसा चन्द्रेऽमृतस्यन्दिनि ।
सेर्ष्या जह्नुसुतावलोकनविधौ दीना कपालोदरे
पार्वत्या नवसङ्गमप्रणयिनी दृष्टिः शिवायास्तु वः ॥
—वही, ७।३२१

[२५।३अ] व्यानम्रा दयितानने मुकुलिता मातङ्गचर्माम्बरे
सोत्कम्पा भुजगे निमेषरहिता चन्द्रेऽमृतस्यन्दिनि ।
मीलद्भ्रूः सुरसिन्धुदर्शनविधौ म्लाना कपालोदरे
पार्वत्या नवसङ्गमप्रणयिनी दृष्टिः शिवायास्तु वः ॥
—वही (वृत्ति), ७।३२१

[२५।४] संप्रहारे प्रहरणैः प्रहाराणां परस्परम् ।
ठणत्कारैः श्रुतिगतैरुत्साहस्तस्य कोऽप्यभूत् ॥
—वही, ७।३२४

[२५।७] परिहरति रतिं मतिं लुनीते स्खलतितरां परिवर्त्तते च भूयः ।
इति बत विषमा दशास्य देहं परिभवति प्रसभं किमत्र कुर्मः ॥
—वही, ७।३२६

[२५।६] कर्पूरधूलिधवलद्युतिपूरधौतदिङ्मण्डले शिशिररोचिषि तस्य यूनः।
लीलाशिरोंऽशुकनिवेशविशेषक्लृप्तिव्यक्तस्तनोन्नतिरभून्नयनावनौ सा॥
—वही, ७।३२५

[२५।११] प्रसादे वर्त्तस्व प्रकटय मुदं सन्त्यज रुषं
प्रिये शुष्यन्त्यङ्गान्यमृतमिव ते सिञ्चतु वचः ।
निधानं सौख्यानां क्षणमभिमुखं स्थापय मुखं
न मुग्धे प्रत्येतुं प्रभवति गतः कालहरिणः ॥
—वही, ७।३२७

[२५।१२] णिहुअरमणम्मि लोअणपहम्मि पडिए गुरुअणमज्झम्मि ।
सअलपरिहारहिअआ वणगमणं एव्व महइ वहू ॥
(निभृतरमणे लोचनपथं पतिते गुरुजनमध्ये ।
सकलपरिहारहृदया वनगमनमेव महति वधूः ॥)

—वही, ७।३२८

[२५।१६] एहि गच्छ पतोत्तिष्ठ वद मौनं समाचर ।
एवमाशाग्रहग्रस्तैः क्रीडन्ति धनिनोऽर्थिभिः ॥

—वही, ७।३३९

[२५।१७] क्रामन्त्यः क्षतकोमलाङ्गुलिगलद्रक्तैः सदर्भाः स्थलीः
पादैः पातितयावकैरिव गलद्बाष्पाम्बुधौताननाः ।
भीत्या भर्तृकरावलम्बितकरास्त्वद्वैरिनार्य्योऽधुना ।
दावाग्निं परितो भ्रमन्ति पुनरप्युद्यद्विवाहा इव ॥

—वही, ७।३३८

२—प्रतीकानुक्रम

[पहली संख्या उल्लास की और दूसरी छंद की है]

अभिधान

[संख्याएँ अध्यायों एवम् छंदों की हैं]

अंक=चिह्न, (चंद्र-) कलंक । १०-१

अँकुरकारी=अंकुरित करनेवाले । ३-५४

अँकोर=भेंट, नजर । १७-३६

अंग=शरीर । १-१३

अंगद=बिजायठ । २३-८२

अंगना=नायिका । १६-५६

अंगनास=अंग का नाश । १६-५६

अँगोछि=गीले कपड़े से पोंछकर । १७-६

अंतरजामि=(अंतर्यामी) अंतःकरण की स्थिति जाननेवाला, ईश्वर । २५-४४

अँदेस=(अंदेशा) खटका । ८-२७

अंधधुंध=(अंधाधुंध) विशाल । ४-३४

अँध्यार=(अंधकार) श्यामता । ६-६८

अंब=आम । ८-४२

अंबर-डंबर=वह लाली जो संध्यासमय बादलों में दिखाई पड़ती है । १६-६२

अंबिकारमन=अंबिका (पार्वती) रमण (पति), शिव; अंबिका (माता) रमण (पति) । २३-२८

अंबे=हे माँ (अंबा=माता) । २-६७

अंसु=अंश, भाग । २१-६१

अकथ्थ=(अकथ्य) अकथनीय, अवर्णनीय । १६-४६

अकनि=(आकर्णन) सुनकर । २५-४

अकर=जिनका करना कठिन हो । २०-१३

अकाज=स्वार्थरहित; काम बिगड़ना । २३-२६

अकाथ=व्यर्थ । १५-२५

अकारथ=व्यर्थ, निष्फल । १-८

अकास के फूल=आकाशकुसुम । १६-१६

अकिलवाने=अक्लमंद, बुद्धिमान् ही । २१-७७

अखरा=अक्षर । २१-२६

अखिन्न=खेदरहित, प्रसन्न, उत्तम । ६-२४

अगनित=अनगिनत । २-२४

अगाधु=गहरा, बड़ा । ५-२०

अगिनि-कोन=अग्निकोण । (पूर्व और दक्षिण के बीच) । ६-१२

अगिनबासो=अगिनबासा, बाज की जाति का पक्षी; ज्वाला का निवास । २०-१३

अगोटिकै=छिपाकर । १५-१३

अघ=पाप । ५-१५

अघओघ=पाप का समूह । २१-४७

अघाइहै=तृप्त होगा । २१-४७

अघात=परितृप्त होते (हैं) । २२-५

अघानी=तृप्त हुई । ४-२२

अघाने=तृप्त । ४-४२

अघोर=बहुत भयंकर । ४-३७

अघोर=अघोरपंथ की साधना करनेवाला, अघोरी। ४-३७
अचकाँ=अचानक, सहसा। १६-२५
अचै=पीकर; भलीभाँति देखकर। २-२४
अचैकै=पीकर; त्याग कर। २-२५
अचैन=बेचैन, व्याकुल। १३-२३
अचैबो=पीना। १५-५२
अछकन्ह=न छके हुओं को। ४-५३
अजौं=आज भी, अब भी। ११-१४
अज्जा=(आर्या) बड़ी जेठी स्त्री। २-६५
अतन=कामदेव। १०-३०, २१-४५
अतूल=अद्वितीय। ६-४१
अदेह=अनंग, कामदेव। १०-१६
अदोषिल=दोषरहित। २४-१
अधंग=अर्द्धांग, आधा अंग। १७-५
अध ऊरध=नीचे ऊपर। १८-३४
अधरछत=(अधर + क्षत) ओठ में का घाव। ३-१२
अधरा=(अधर) होंठ। ११-२५
अधिकारी=अधिकता। २१-३५
अधीस=(अधीश) स्वामी; (अधीन = वश में)। २१-३८
अधोमुहै=अधोमुख, नीचे मुँह किए हुए। १०-३६
अनंग=काम। १८-४१, १६-६२
अनंगकला=कामकला, रतिक्रीड़ा। ४-२२
अनंद के कंद=आनंद के मूल (श्रीकृष्ण)। ४-२२
अनखानी=बुरा माननेवाली। १६-२६
अनखौहैं=बुरा मानने को उन्मुख, अप्रसन्न। १७-६
अनगन=अगणित। ५-१५
अनत=अन्यत्र। ४-४०, १३-३६
अनबन्यो=बिगड़ा। १-७
अनमिल=असंबद्ध, बेमेल। १३-२
अनयास=अनायास। १४-६
अनसंनिधि=अन्यसंनिधिवैशिष्ट्य। २-५१
अनहद्द=बेहद, अपार। १६-४६
अनाकनी=आनाकानी; सुनी अनसुनी करना। ११-१८
अनारी=अनारवाले। ३-५४
अनारी=अनाड़ी, अनभिज्ञ। १०-३७
अनी=सेना। ४-३४, १०-४०
अनु=(अणु) कण। १५-७
अनूप=अनुपम, अद्वितीय। २-६६
अनेम=नियमरहित। २३-६६ अ
अनैसी=अप्रिय। १३-२१
अनैसो=अनिष्टकारक। १३-११
अन्यास=अनायास, अकस्मात्। ४-५०
अपत=पत्रविहीन; अप्रतिष्ठित। २-४५
अपति=अप्रतिष्ठा। १०-१०
अपलोक=अपयश। ४-३३
अपूरब=(अपूर्व) अनोखी। १३-३४
अब को=(बको) बगुला पक्षी; अब कौन। २०-१३
अबर=अश्रेष्ठ, अधम। २५-४ अ
अबलनि=बल से रहितों; अबलाओं। १३-४३
अबूत=शक्तिहीन। ५-७
अब्द=मेघ, बादल। १६-४६
अभरन=(आभरण) आभूषण। २०-१०
अभिनयादिकनि=अभिनय इत्यादि, मुद्रा चेष्टा आदि। २-१६
अभिराम=सुंदर। १०-२३

अभिसारी=अभिसारिका (नायिका)। २४-१४
अभेरैं=भिड़ाए हुए। ६-४४
अभै=(अभय) २१-७०।
अमत्त=मात्रारहित। २१-३६
अमत्ता=(अमत्त) मात्रारहित। २१-४४
अमर=देवता। २१-४३
अमर-निकेत=देवलोक। ६-४६
अमर (भाषा)=देवभाषा, संस्कृत। १-१५
अमरैआ=अमराई, आम का बगीचा। ६-५१
अमल=निर्मल, निर्धूम। ३-४८
अमान=अपरिमित, अत्यंत। ८-३६
अमित=अपरिमित। २६-६
अयान=अज्ञान, अज्ञानी। २३-७१
अयानै=(अज्ञान) मूर्ख ही। ११-२७
अरगला=(अर्गला) बेंड़ा। १६-६६
अरधंग=अर्द्धांग, आधा अंग। १३-१०
अरब्बीवारे=(अरब्बी=इंद्र, बारे=छोटे) उपेंद्र, श्रीकृष्ण; अरब की संख्या। २०-१६
अरीनि=शत्रुता रखनेवाली स्त्रियाँ, सौतैं। २०-१७
अरुनारो=अरुणाई, ललाई। १२-१७
अरुनारे=लाल। १०-२७, ११-२५
अरो=अड़ा, अड़ गया। २१-१५
अर्क=सूर्य। २०-१४
अर्थ-प्रसंग=अर्थ की संगति, अर्थ की स्थिति। २-१८
अर्थैप्रकरन=अर्थप्रकरण ही। २-११
अर्नं=(अर्ण) जल, अश्रु। ४-१३
अरसात=आलस्य करते हैं। २२-५
अरबिंद=कमल। ८-४५
अरन्य=(अरण्य) वन, जंगल। २२-४
अरजुन=चमकीलापन; चाँदी सी चमक; एकलौता बेटा (सिंहिनी सिंह को जन्म देकर मर जाती है, ऐसा प्रसिद्ध है); पांडुपुत्र अर्जुन। २०-७
अरचत=अर्चना (पूजा) करते हैं। २१-४५
अलंग-ओर। ११-१२
अलक=केश की लट। ४-१६, २०-१३-२३-३
अलसानि=आलस्य। २ ५३
अलापी=आलाप करनेवाले, बोलनेवाले। ४-१७
अलिन्ह=सखियों ने। २१-६०
अलेख=जिसका लेख न हो, अदृय, देवता। १०-२७
अलेखी-जिसका लेखन न हो सके, अलेख्य, सूक्ष्म देवयोनि। २०-१०
अवकास = निर्बाध, स्वच्छंद। ४-१७
अवदात = स्वच्छ, निर्मल। १२-४
अवनीपै=राजा को। ६-६
अवराधी=आराधित की, ग्रहण की। १८-२३
अवराधो=आराधना। ६-७
अवरेखि = समझो। ६-७१
अवरोह=उतार। १६-२०
अवसि = (अवश्य)। १२-३५
अवहित्थ=(अवहित्था) आत्मगोपन। ४-३६
अवास=(आवास) निवासस्थान, घर। ६-४४

अष्ट सिद्धी=अणिमादिक आठ प्रकार की सिद्धियाँ । १-१
असंजोग=वियोग । २-८
असकति=अशक्त, शक्तिहीन । २-६१
असकी =न सकी । २३-२६
असत =असाधु । ३-८
असन =(अशन) भोजन । १२-३३
असमसरी=(असमशरी) कामदेव की पत्नी रति; अ + समसरी (चमत्कारार्थ) । २०-१०
असमै =(असमय) । २५-१०
असवारी = अश्वारोही सेना । १०-३७
असारु =सारहीन । १४-११
असि =तलवार । ८-१४
असितौ=अश्वेत (काली) भी । २३-७४अ
असु = प्राण । ११-१६
असुरसाखि =(अ + सुरसाखि) कल्पवृक्ष से रहित । २३ ८
असूया =ईर्ष्या । ४-२१
असेष = परिपूर्ण । २-६४
अहि-छौने =सर्प के बच्चे । ४-१६
अहितू = शत्रु । ४-४२
अहिसंगी = सर्प का साथी (चंदन के वृक्ष मेँ सर्प लिपटे रहते हैँ); विषैला । १३-११
अहीर = श्रीकृष्ण । २१-७५
आँगी=(अंगिका) अँगिया, चोली । १८-४१
आँगुरिन फोरि=उँगलियाँ चटकाकर । १७-६
आँब=आम । १४-२४
आक=अर्क, मदार । १४-५
आगमु =आगमन, होनहार । ४-३१
आगर=घर । २०-६
आगार=घर । २१-१२
आगि=अग्नि । ४-४६
आड़=आड़ा तिलक । ६-६८
आदिगुर=आदिगुरु, आदिमगुरु । १-१
आधिक=आधी । ११-१२
आनँदनिकंदु=(आनंदनि+कंदु) आनंदोँ की जड़, आनंददायक (सूर्य चंद्र); (आनँद+निकंद) सुख को नष्ट करनेवाला (सिंह); आनंददाता (श्रीकृष्ण) । २०-७
आन=(अन्य) दूसरा । २-१३
आन=शपथ । २०-१५
आन=आनबान । २०-१५
आनि = लाकर । ४-३६
आनि=शपथ । १६-५५
आनि = ले आ । १६-५५
आनु = (आनय) ले आ । ५-७
आपु=आप (आदरार्थ सर्वनाम); जल । २१-३१
आभरन=(आभरण) आभूषण । ७-१२
आभरन=पोषण करनेवाला; अलंकार; पेट भरनेवाला; भूषण । २०-७
आभा=छटा, ज्योति, चमक । ३-५४
आममौर=आम की मंजरी । ६-५१
आमिल=(अमल-प्रबंध, आमिल= प्रबंधक) हाकिम, शासनाधिकारी । १२-२१ अ
आयसु=(आदेश) आज्ञा; कवच । २०-५
आरज=(आर्य) पति । १२-१७

आरस = आलस्य । ८-६४, २२-५

आरसी = (आदर्श) दर्पण । ५-६, ८-५३

आरोपन = (आरोपण) स्थापित करना । ३-१६

आलम = कवि-नाम । १-१६

आवनिहार = आनेवाला । २-६०

आसा = डंडा । १३-७

आसै = आशा [आनै = नकल आनै, स्वाँग करते हैं] । २१-३८

आहिन = हूँ । २१-७६

इंदिरा = लक्ष्मी । ८-३७

इंदीबर = कमल । ८-५१

इंदु = चंद्रमा । ३-४८

इंदु की बधूटी = वीरबहूटी, लाल रंग का बरसाती कीड़ा । २२-१५

इंदुमती = अज की पत्नी । ८-३७

इंदुवै = चंद्रमा ही । १६-१६

इंद्रजाली = (ऐंद्रजालिक) मायावी । १७-२०

इकंक = निश्चय, भली भाँति । ६-५८

इकठोरी = एक स्थान पर, एक साथ । ५-१३

इतहि = यहीं, पास ही । २-६१

इती = इतनी सी (छोटी) । २-१६

इते = इतना । २-१६

इरखाति = ईर्ष्या करती (है) । ५-२५

इलाजै = युक्ति, उपाय । १७-३६

इस्त्री = स्त्री । १६-३२ अ

ईठ = (इष्ट) मित्र । ३-५४

ईठि = सहेली । ६-३०

ईर = 'पीर' शब्द के अंत्य अंश की अनुवृत्ति । २३ १३

उछंग = (उत्संग) गोद । ४-३०

उछरत = उछलता है । २१-२५

उछाह = (उत्साह) उमंग । ४-५

उडुग = तारे । २३-४४

उतंग = (उत्तुंग) उच्च । ४-४८

उतपल = (उत्पल) कमल । १०-३६

उतरीय = (उत्तरीय) ओढ़नी । २२-६

उतरु = उत्तर । ४-३२

उताल = उतावली मैं । २-५३

उताली = उतावली, शीघ्रता । ११-११

उत्साह-ठान = उत्साह की ठान, उत्साह की अभिव्यक्ति । ४-७

उत्साहिल = उत्साहित । ४ ५

उदयाद्रि = उदयाचल, पुराणानुसार पूर्व दिशा का एक पर्वत जहाँ से सूर्य निकलता है । १-२

उदोत = प्रकाश, प्रगट होना । २-२२

उद्दात = उदात्त । ३-१८

उद्योत = प्रकाश । ३-३३

उनमानि = अनुमानकर । ५ १५

उनहारी = अनुहारी, समता । १७-३०

उनीदता = (उन्निद्रता) नींद उचटना । २-५४

उन्नत = ऊपर छाए (ऊँचे) । १६-२३

उन्नतताई = उच्चता, कठोरता । १३-१५

उपखान = (उपाख्यान) कथा । १७-३४

उपचार = (विरह दूर करने के) प्रयास । १०-३६

उपदेश = शिक्षा देना, जगाना । २-४६

उफिनातु = उबाल खाता है, उफनता है । १२ १२

कंदरप =(कंदर्प) कामदेव । १०-१०
कंदुक = गेंद । ८-८६
कंबु = शंख । ६-२
कंसारि = कंस के शत्रु (श्रीकृष्ण) । २-३
ककै =(कैकै) कर करके । ५-१४
कच = केश । ६-२
कचभार = चोटी । ११-१६
कजरारे = काजल लगे । ३-३१
कज्जल = काजल । ११-२३
कटक = सेना । १?-१३
कटीले = रोमांचयुक्त । ४-१८
कट्टि = काटकर । १६-८
कठिनाति = कठोर होती है । ५-२५
कढ़ी = निकली । २-३२
कढ़ै = निकले । २-६६
कत = क्यों । २-५६
कतल-काती = कत्ल करनेवाली छोटी तलवार । ६-४
कथ्थ = कथा, गाथा । १६-४६
कदंबिनि=कादंबिनी, मेघमाला । १३-४७
कद = शरीर । ४-२४
कदन = नाश करनेवाले, संहारक । १६-१७
कदम = कदंब (फूल) । ४-२४
कन =(जल) कण । २१-४१
कनकपात = धतूरे का पत्ता । १४-१५
कनकाभरन = सोने का आभूषण । १४-४०
कनखा = तिरछी चितवन । २-६३
कनि =(कने) पास । १५-७
कनीनिका = आँख की पुतली । १५-६
कने = कण । २१-७८
कन्हाई = कृष्ण । १-८
कपि = बंदर (हनुमान्) । ३-१७
कपीस = श्रेष्ठ बंदर । २१-२५
कबिपंथ = कविपरंपरा । १-५
कबिराइ=(कविराज) श्रेष्ठ कवि । २-३३
कबूलि गो = स्वीकार कर चुका । ४-२४
कमलज = ब्रह्मा । २१-४३
कमल-से = कमल के समान; कम + लसे । २-१६
कमलाकर = सरोवर, तालाब । १४-४६
कमलाकला=लक्ष्मी की शोभा । २१-५३
कर = किरण; हाथ । ८-४६
कर = हाथ, कलाई । २०-१६ ।
कर = का । २१-६१
करक्कि = कड़क (उठा), टूटने की ध्वनि कर बैठा । ४-३४
करतलगत आमलक = हस्तामलक, प्रत्यक्ष । ११-३८
करतार = ब्रह्मा । २१-३८
कर तार (देत)=महसूल अदा कर देते हैं । २१-३८
करतूति = तूती पक्षी; करनी । २०-१३
करन = हाथों को । ५-५
करन =(कर्ण) कान । ८-६३
करन = कान; कर्ण (राजा) । १०-२७
करबीर = कनेर का फूल । १४-३१
करहति डारै = कराहती हुई डाल देती है । १६-५६
कर हति डारै =(किंशुक के पुष्पों के कारण) काली दिखती डालें । १६-५६
कर हति डारैगी=हाथ से छाती को हत डालेगी (पीटेगी) । १६-५६

करहाट=कमलनाल । ११ ४३
करहाट=कमलों का समूह । ११-३३
करहिंगे कंठ=कंठस्थ करेंगे, याद करेंगे । १-६
कराई=कालापन । ८-६६
कराकृति=(कर + आकृति) सूँड़ का आकार । ८-७८ ।
करि देइ=कर दे । २-३५
करिबर=श्रेष्ठ हाथी । १०-२८
करी=हाथी । ८-६३
करुआई=कड़वाहट । २३-६७
करू=कड़वा । २३-६७
करोटी=कालापन । १७-४७
करोरि=व्याकुल होकर; करोड संख्या)। २०-१६
करोरै=करोड़ों ही । १४-११
कल=चैन, सुख । २-५८
कलई उघरैगी=वास्तविक रूप जाहिर होगा, भेद प्रकट होगा । १६-१६
कल धुनि=मधुर ध्वनि । २-५५
कलप=(कल्प) तुल्य, समान । ३-५४
कलप=(कल्प) काल का एक विभाग जिसे ब्रह्मा का दिन कहते हैं। ११-२३
कल पैये=चैन पाती हूँ । ४-२७
कलपैये=दुखी करूँ । ४-२७
कलरव=कोकिल । १२-२६
कलरौ=कलरव, पक्षियों की मधुर ध्वनि । १३-२३ ।
कलस=घड़ा । ८-८६
कलानिधि=चंद्रमा । ११-२७
कलाप=समूह, झुंड । २०-१२
कलापी=मयूर, मोर । ४-१७
कलामुख=चंद्रमा । ६-२५
कलामैं=बातें । १२-४३
कलिंद=जिस पर्वत से यमुना नदी निकलती है । १६-१३
कलिंदजा=यमुना । २-५७
कलिंदी=यमुना । १६-१३
कलोलैं=क्रीड़ाएँ, नीचे-ऊपर आगे-पीछे जाना आना । ४-१७
कल्प=तुल्य । ३-५५
कवन-कौन । ६-२१
कवस्तुब=(कौस्तुभ) एक रत्न जो समुद्रमंथन के समय निकला था । २३-७२ अ
कसिबे=कसने के । २-६३
कसोटी=कसौटी, निकष । १७-४७
कहँरति=कराहती (है) । ५-२५
कहनावति=उक्ति । ६-१८
कहर=आफत, गजब । १५-१७
कहा=क्या । ३-५
कहिबी=कहना । ६-५१
कही = कथित, कही हुई बात । ५-७
काकताल को न्याइ=काकतालीयन्याय, संयोगवश घटित होना । १५-११
काकु=कंठध्वनिविकार । २-५१
काढ़िबीं=निकालिएगा । १३-२६
कादर=डरपोक । १६-६५, २१-३१
कानन=कानों (मैं) । ५-११
काननि=कानों मैं (श्रवणदर्शन) । २१-६०
कान्ह=कन्हैया । २-३
कान्हर = कन्हैया, श्रीकृष्ण । ६-५५
कामजेता = काम को जीतनेवाले । २१-६

कामद=कामनादायक । ८-५३
कामदगैया=कामधेनु । २५-३८
कामदुघा=कामधेनु । १०-६
कामवंत=कामवृत्तिवाला । २१-६१
कामैं=किसमैं; काम (कामदेव) का ही । २१-३१
कारनौ=कारण भी । ३-५५
कारी = काली । ६-३६
कारे चोर=काले रंग वाला माखनचोर, श्रीकृष्ण । २३-१६
कारो = काला । २१-१६
काल=समय । २-१७
कालकूट = भयंकर विष । ६-२७
कालिदास = कवि-नाम । १-१६
काल्हि = कल । २-५६
कास = काँसा, एक घास (जिसके फूल श्वेत होते हैं) । ८-१६
किंकिनियाँ=करधनी । २५-२१
किश्र=किया । २१-७७
कित=(कुत्र) कहाँ । ५-२४
कितेक=कितने ही । ४-३२
कितै=कहाँ । २१-२५
किन=क्यों नहीं । २३-५३
किनूका=कण । १०-२६
किरकिरी=आँख मैं पड़कर पीड़ा करनेवाला पदार्थ । १८-३६
किरनारि=किरणपंक्ति । ६-३७
किरवानु=(कृपाण) तलवार । ६-६
किरातकुमारी=कोल-भीलों की लड़कियाँ । २५-१६
किरीट=मुकुट । ५-११
किल=निश्चय । ८-८६
किसलै=नए कोमल पत्ते । २०-१५
किसानो=कृषक । ६-४६
कीक=काँव काँव । २१-४७
कीबी=करना । ६-५१
कीमति=शक्ति । २०-६
कीर=तोता । ३-४७
कीरति=(कीर्ति) यश । १-१८
कील=लोहे या काठ की मेख । २५-३५
कुंज=अनेक सघन वृक्षों वाला स्थान । २-५७
कुंजर=हाथी । २-१४
कुंत=भाला । २-२८
कुंभ=घड़ा (स्तन) । १८-१८
कुचाली=नीचता, कुटिलता । १३-३३
कुठाल=कुठार, कुल्हाड़ी । ८-८६
कुदारु=कुत्सित काष्ठ (वृक्ष) । ८-६४
कुनेहिल=अस्नेही, पापी । २१-७८
कुवलय=(कु + वलय) पृथ्वीमंडल ; कमल । १०-१७
कुवलय=कुमुदिनी । १६-१२
कुवलय=नीला कमल ; कुई ; हाथी; भूमंडल । २०-७
कुवलै=(कुवलय) रात मैं फूलनेवाला सफेद कमल, कुईं ; दिन मैं फूलनेवाला कमल, नील कमल । २-१७
कुमुख = कुत्सितमुख । ८-४६
कुरंग = मृग । १२-३३
कुरबान = निछावर । १२-२२
कुरबिंद = (कुरुविंद) कुल्माष, लाल-कुलथी । ३-५४
कुरर = पक्षीविशेष, क्रौंच । २१-७२
कुराई = नीची-ऊँची भूमि । १२-२०
कुरूपता = असुंदरता । १-१३

कुलकानि = बंश की मर्यादा। १२-२२
कुलकानिनि=कुल की मर्यादा का विचार करनेवाली। १७-३३
कुलधरम = कुलधर्म, वंश की मर्यादा। २-२५
कुस = कुश, राम के पुत्र, लव के भाई। २१-३२
कुहू = अमावास्या। ११-२५
कूर = अज्ञान, मूर्ख। २-३९
कृत = किया हुआ। १९-४६
कृतारथ = सफलमनोरथ, कृतकृत्य। १६-१९
कृतु = कृत्य, कार्य। १०-१६
कृपानि=(कृपाणी) तलवार। १९ ६२
कृपाबारिधर = दया के बादल। १९-२५
कृमि = कीड़े। ४-३७
कृसान=(कृशानु) आग। २-३६
कृसोदरी = (कृशोदरी) क्षीण कटि-वाली। २५-१९
केवार = (कपाट) किवाड़। २१-५६
केका = मोर की बोली। १०-३७
केकी = 'केका' ध्वनि करनेवाला मोर। २-१३
केतकि = केतकी, केवड़ा। १०-१२
केतकि = कितनी। १०-१२
केतकी = केवड़े का फूल। १९-५७
केतकी = कितनी ही, अत्यंत। १९-५७
केती = कितनी। २१-२७
केदार = क्यारी। १४-४०
केलियै = केलि के लिए।
केसरि = किंजल्क। १०-१२
केसरि-आड़ = केसर का तिलक। १८-१९
केसव = कवि केशवदास। १-१०
केसौ = आचार्य केशवदास। १-१६
केहूँ = किसी प्रकार। ११-२३
कै = अथवा। २३-६२
कैतव = बहाना। ९-३१
कैवा=कई बार। १४-३३
कैरव=कुमुद। १०-१७
कैसो=कैसा; (कै + सौ) कितने सौ। २०-१६
कौंप=कोंपल। २३-८२
कोक=चकवा। ८-४२
कोकनद=लाल कमल। १७-१३
को कहै=(कोक) चकवा पक्षी; कौन कहे। २०-१३
कोटि=करोड़। ११-२३
को तो=कौन था। २५-३९
कोदँड=(कोदंड) धनुष। ४-३४
कोद=ओर। १५-१८
कोद=दिशा। २१-३१
कोन=कोना। ४-३६
कोप=क्रोध; कोंपल। २०-१५
कोप=क्रोध। २१-३१
कोपजुत=कोंपलयुक्त; क्रोधयुक्त। २-४५
कोबिद=पंडित। ८-५१
कोबिद=(कोविद) पंडित अर्थात् ब्रह्मा। २१-३१
कोर=नोक। १०-२२
कोरिकै=खुरचकर। २५-२
कोरी = कोमल। १३-४७
कोरी = जुलाहा। १४-१९

कोल = शूकर, पृथ्वी का भार उठाने-वाला । २१-३१

कोस=छत्ता; धन । ८ ३८

कोस=(कोश) म्यान । ११-१६

कोस=(कोश) संचित धन, खजाना । ११-१६

कोस=निधि; गर्भ, बीच का भाग; म्यान । २०-६

कोह=क्रोध । १८-६

कौतुक=खेल । १३-१३

कौनप=(कौणप) राक्षस । २१-३१

कौर=ग्रास । ४-३७

कौल=कमल । ६-२

कौलपानि = कमलपाणि (विष्णु) । २१-६१

कौहर=इंद्रायन, इनारू । ३-५४

क्यौँ हूँ = किसी प्रकार । २-३३

क्वै = कोई । २१-६५

खंगा=कमी । २१-४७

खंजरीट=खंजन । ६-१६

खए=बाहुमूल, पखौरा । १३-४२

खगपतिपतितियपितुबधू जल=खगपति (गरुड़) पति (स्वामी, विष्णु) तिय (स्त्री, लक्ष्मी) पितु (पिता, समुद्र) बधू (गंगा) जल । २३-२३

खगाधिप=पक्षिराज गरुड़ । ८-७५

खगासन=गरुड़वाहन, विष्णु । २१-६१

खगी=लीन हुई । २५-१५

खग्ग =(खड्ग) तलवार । १६-८

खचि (रही =एकत्र कर रही है । १२-३४

खड्ग=तलवार । २१-५६

खड्गी=गैंडा । १४-३५

खन खन=क्षण क्षण । २१-४१

खर=तिनका । ४-३६

खराई=खारापन । ८-६६

खरी=अत्यंत । ४-५२

खरे=अत्यंत (या खड़े) । २१-७८

खरो=अत्यंत । १८-१५

खरो = खड़ा । २०-१६

खरोट = खरौंच, नख-क्षत १४-३६

खल = खरल; दुष्ट । १२-१५

खलक = जगत् । २१-४५

खलकत = खलभली हो जाती है । ११-३५

खलाजै = (खला=दुष्टा + जै = जय) दुष्टाओं को जीतनेवाली । २१-८६

खानि खानि = खान की खान, अनेक । १६-५३

खाली = रिक्त, केवल । १२-१५

खिस्याइ = (भेद के खुलने से) लज्जित होकर । ६-१४

खीन = (क्षीण) । ६-३६

खीलै = कील की भाँति जड़ता है । २५-३५

खेत = (क्षेत्र) तीर्थस्थान; उपजाने की भूमि । ६-४६

खेलार=खिलाड़ी । १०-३५

खेह = धूल । ७-२८

खैखै = झंझट, झगड़ा । २१-४७

खोजा = (ख्वाजा रनिवास का नपुंसक भृत्य । २४-६

खोटि = दोषयुक्त । १२-४३

खोटी = खोटापन, कालापन । १७-४७

खौरि = चंदन का तिलक। ६-१६
ख्याल = खेल। ५-७
ख्याल = ध्यान। ५-७
गंगाबासी=गंगा में बसनेवाले; गंगा के किनारे बसनेवाले। २-३१
गंज = समूह। १२-१०
गंधवह-(सुगंधित) वायु। ८-७७
गँवारिनि=गाँव की रहनेवाली, भोली। १२-२६
गई करि जाहि = छोड़ दे। ५-१४
गगंनु = गगन, आकाश। २१-७८
गज = हाथी; नापने का औजार। १२-१४
गजकुंभ = हाथी का मस्तक। ८-८६
गजमुकुता=(गजमुक्ता) हाथी के मस्तक का कल्पित मोती। ६-३८
गजराजु = गजरा (लंबी माला) जु; श्रेष्ठ हाथी। २०-५
गजाइ = गाँजकर, एकत्र कर। ११-२३
गतागत = (गया आया) सीधा उलटा। २१-२६
गति = दशा, स्थिति। २-४८
गथ = पूँजी। ८-८६
गदगद = (गद्‌गद्) अत्यधिक आवेग से पूर्ण होकर आत्मविस्मृत हो जाना। ४-२४
गन = गण (शिव के)। २१-४५
गनपतिजननीनामबल =
१—गल = गला।
२—नल = फौवारा।
३—पल = मांस।
४—तिल = (तिलदान)।
५—जल = पानी।
६—नल=राम की सेना का बंदर।
७—नील=राम की सेना का बंदर
८—नाल = कमल का डंठल।
९—मल = विष्ठा।
१०—बल = बलराम।
११—गनपतिजननीनामबल = गणेश की माता पार्वती (शक्ति) के नाम के बल से। २१-२५
गनराउ=गणराय, गणपति। १६-१७
गनाउ = गिनाओ, मानो। ४-८
गनि = गणना करके, गिनकर। २-२
गनै = (गण) समूह को। २१-७७
गब्बर = गर्वीले। ६-७०
गभीर = गहरा। ८-८४
गयंद = (गजेंद्र) श्रेष्ठ हाथी। ४-१६
गरलगर = गले में महाविष धारण करनेवाले २१-४५
गरा = गला, कंठ। २१-२७ अ
गरू = (गुरु); गौरवशाली। ८-५०
गरुआई = गुरुता, भारीपन। १२-१८
गरे = गले में। २२-५
गर्भ = हमल। ५-१७
गर्भ = गर्व, घमंड। ५-१७
गल = गला। १०-३६
गल्ल = बात। २३-१७
गवइँ = गाँव (का)। २-३८
गवावैं = गँवाते (खोते) हैं; गवाते गाने के लिए प्रेरित करते हैं। ३-५२
गसी = चुभी। २१-७५
गहागहै = (गहगहे) प्रसन्नतासूचक। २१-४७

गाड़ = गर्त, गड्ढा । ६-६८
गाड़े = गड़े हुए, अटल । ६-३५
गाड़ो = (गाड़ा) गड्ढा । ३-४८
गात = (गात्र) शरीर । ४-१८
गातु = (गात्र) शरीर । १७-१२
गारेहूँ = डालने पर । ८-७०
गारो = ईंट जोड़ने का मसाला । ७-२८
गारो = गर्व; गारा (बरी, चूने आदि का) । १२-१४
गारो = अहंकार, गर्व । २१-६६
गिरिजा = पार्वती । १०-३६
गिरिजाई = हिमालयपुत्री पार्वती ही । २५-३
गिरिधारी = श्रीकृष्ण । १०-३७
गिलि गए = गीले हो गए । ६-३५
गीश्र = गीत । २१-४७
गुंज = (गुंजा) घुँघची । ५-११
गुड़हर = अड़हुल का फूल, जपापुष्प । ३-५४
गुन = माधुर्यादि गुण । १-१८
गुन = (गुण) रस्सी, प्रत्यंचा । १०-१६
गुनकरनी = गुण की करनी करनेवाला; गुण (डोर) और करनी (एक औजार) । १२-१४
गुनजाल = गुण का समूह; (आँखों के) डोरों का समूह । १५-६
गुनन्ह = गुणों; तागों । १०-२६
गुनि राखौ = विचार कर लो । २-४
गुने = समझने पर । २२-५
गुमान=गर्व, घमंड । २१-२७
गुरंगनि = गोरे अंगों में । १४-२६
गुर = गुरु । २६-१८
गुरजैं = (गुर्ज) गदाएँ । १६-४७
गुरुजन = नृत्य गान की शिक्षा देनेवाले उस्ताद लोग; (गुर्ज = गदा) गदाओं । २०-५
गुरौ = बृहस्पति ग्रह जिसका रंग पीला है । १८-१६
गुलाम = दास, सेवक । २५-४३
गूँदती = (केश) गूँथती है । २३ ८२
गूँदे = गुँथे हुए । १०-३६
गूजरी = ग्वालिन । १६-५८
गृही = गृहस्थ; घर बनानेवाला । १२-१४
गै गै = जा जाकर । २१-५५
गैबो = गान करना । ५-४
गैल = गली, मार्ग । ६-५४
गोइ = छिपाकर । ६-६
गोए = छिपाए हुए । ५-२४
गोत = (गोत्र) । १४-५
गोप = अहीर, ग्वाला । २-३८
गोप = गोपन, छिपाव । १६-६
गोपी रही = गुप्त रही । ४-१४
गोरस = दूध, दही । १२-२६
गोसाँई = गोस्वामी । १-१०
गौने = चलने । ४-१६
ग्राम्य = ग्राम्यदोष । १६१४
ग्राह = मगर । १६-२५
घन-अच्छरी=घने अच्छर; घनाच्छरी छंद । २०–१२
घटा = (गजघटा) हाथियों का समूह । ६-२०
घटिका = घड़ी (ढाई घड़ी का घंटा होता है) । २१-२७

घतियाँ = घातें । ५-२४
घनसार = कपूर या चंदन । १६-७०
घनस्याम = श्रीकृष्ण; बादल । २०-१५
घनी = बहुत, अनेक । २-३०
घनु = बादल । २२-१५
घनेरे = घने, अनेक । २२-३
घरीक = (घड़ी + एक) घड़ी भर । ५-६
घरी दूघरी = घड़ी दो घड़ी में, शीघ्र ही । १६-५८
घहरानि = गर्जना । ६-२०
घाँघरो = लहँगा । ११-८
घाइ = घाव, चोट । १३-५२
घाइ = घूमकर, चक्कर काटकर । २१-४७
घाउ = (घात) घाव । २३-६
घात = दाँव । २३-५१
घाम = (घर्म) धूप । ६-३७
घाय = (घात) चोट, घाव । ६-३५, ८-२७
घालही = नष्ट कर देती है । ३-४७
घाले = नष्ट किए । २५-४२
घावरे = घामड़, नासमझ । ८-८६, १७-८
घिन = घृणा । ४-१
घिनात = घृणा करता है । ४-३७
घोश्र = (घृत) घी । २१-४७
घुमरि = घुमड़कर । ६-२६
घोरो = घोड़ा । २१-१५
घ्रिना = घृणा । २१-२५
चंचरीक=भ्रमर, भौंरा । ७-२७
चंडीपति=शिव । ७-२७
चँडोलनि=हाथी के हौदे के आकार की पालकी । १०-४०
चंद्रक=कपूर । ४-२८
चंद्र-खत=द्वितीया का छोटा चंद्रमा; नखक्षत । १३-१४
चंद्रभागा=राधिका की सखी । १२-४३
चंद्रिकनि=मोरपंख में की चंद्राकृतियों के (पास) । १५-७
चंद्रिका-पंख=जिस पंख पर चंद्रिका बनी हो, मोरपंख । १६-६
चंपलतिका=राधिका की सखी । १२-४३
चँवेली = चमेली । २-५७
चकि = चकित होकर । ११-१४
चक्क = (चक्र) दिशा । ७-२७
चक्कवै = चक्रवर्ती । ७-२७
चक्र = पहिया । १-१२
चक्र=विपत्ति । ७-२७
चक्रधर=सुदर्शनचक्रधारी, विष्णु । ७-२७
चक्रवती=चकवा के आकार के; चक्रवर्ती राजा । १०-२२
चक्रवाक=चकवा, स्तन । ८-३०
चक्षुश्रवा=जो आँख से सुने, सर्प । २३-३
चख=(चक्षु) नेत्र । ८-३७
चख=उपमान पद्म । १२-४२
चखमृगी=मृग के नेत्र के समान नेत्रवाली, मृगनयनी । २३-२५
चटक=छटा, चमक । ४-१६
चटकीलो=चमकीला । ४-३८

चतुरानन = ब्रह्मा । ७-२७
चनूर=(चाणूर) कंस का प्रख्यात मल्ल । ४-३६
चपला=बिजली । ६-२६
चबाई=चबाता है, काटता है । ६-२५
चय=समूह । १५-४५
चर=संचारी । २५-१
चर-अचर = चराचर, जड़-चेतन । ११-४७
चरचा = वर्णन, जिक्र । १-१०
चरबन = चर्बण (करती है, चबाती है)। ५-५
चर्न = चरण, पैर । २३-३२
चल = अस्थिरता, अनिश्चय । ४-३२
चलदल-पान = पीपल का पत्ता । २०-१२
चलन = प्रसंग । १६-५६
चलन = प्रस्थान । १६-५६
चलन = गतिशील, प्रज्वलित होनेवाली। १६-५६
चलिहैं = चलेंगे, (शरीर त्याग देंगे) । ५-२२
चवाई=बदनामी करनेवाले । १३-४४
चाइ = चाव । ६-२५
चाड़ = प्रबल इच्छा । ६-६८
चामर = चँवर, चौर । १६-२२
चाय = चाह । २-६३
चारि के अंक = (४) चार के अंक की भाँति बीच मैं पतली । ८-२०
चारि पदारथ = चारो पदार्थ (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष)। ३-३८
चारु = सुंदर, श्रेष्ठ । १८-११,
चारो = चारा, पक्षी आदि का खाद्य । ३-४८
चारयो-फलद = चारो फलों (धर्म, अर्थ काम मोक्ष) को देनेवाले । ७-२७
चाहि = बढ़कर । २-५७
चिंतामनि = कवि-नाम, भूषण के बड़े भाई । १-१६
चिंति = चिंता करके । ५-२५
चितै = देखकर । २५-४४
चितौने = देखने, निरखने । ४-१६
चित्तचाही = मनचाही, इच्छित । ६-३३ अ
चित्र = चित्रकाव्य, कमलबंधादि । १-१८
चित्ररेखा = एक अप्सरा । ८-३७
चिरानी = पुरानी । ७-२७
चिरी = (चिड़िया) पक्षी । ६-३५
चिरु = बड़ी चिड़िया; चिरकालीन । २०-१३
चिरैया = चिड़िया (गरुड़) । ७-२७
चिहुँटाइ = चिपटाकर, (निकट से)। १४-३०
चिहुटनी = घुँघची । १४-३०
चीरादिक = वस्त्रादि । ६-४६
चुनियाँ = चुन्नियाँ, माणिक या रत्न के छोटे टुकड़े । २५-२१
चूरे = चूड़े, कड़े । १६-१५
चूहरी = चांडालिनी । ७-२७
चैत = चेत, होश । २१-८१
चोख = चोखा, उत्कट । २५-३४
चोखो = तीक्ष्ण, तेज । ६-२५
चोप = उमंग । १८-४१

चोपकारियै = उमंगित करनेवाले। ७-२७

चौकी = रखवाली। १६-१६

चौखँडे = घर के चौथे खंड पर (से)। ६-२०।

चौदह बिद्यनि=चौदह प्रकार की विद्याएँ—चारो वेद, छओ अंग, मीमांसा, न्याय, धर्मशास्त्र और पुराण। १-१

चौबाहु=जिसके चार बाहँ हों (गणेश जी का विशेषण)। १-१

चौहरी = चार घेरेवाली। ६-२५

छई = छाई हुई। २-४८

छकाइ (देत) = तृप्त (कर देती है)। ४-५३

छकिकै = छककर, तृप्त होकर। ४-२२

छजतु = सोहते हैं अर्थात् सिद्ध होते हैं। ११-१६

छनजोति = बिजली। १०-५

छनदान = (क्षणदान) आनंद का दान; (क्षणदा) रात्रि; निशा, रात; गोरस का प्रतिक्षण दान (कर)। २०-७

छनु = क्षणमात्र मैं। २१-६०

छनेक = क्षणभर। १६-३१

छपती = छिपती (है), समाप्त होती (है)। १६-५७

छपाइ = (क्षपा) रात्रि ही। १६-५७

छपाइ = (षट्पद) भौंरा। १६-५७

छपाइ = छिपाकर। १६-५७

छपाइ = छाप, दाग। १६-५७

छबिजेय = शोभा को जीतनेवाला। ३-३

छबिभूषन = गहने की शोभा। २१-२७

छबीलिनि = शोभावाली स्त्रियाँ। १७-३०

छरियादार = छड़ीबरदार, द्वारपाल। ३-१८

छला = छल्ला, मुँदरी। ६-५०

छवा = एँड़ी। १६-१३

छाँह = प्रतिबिंब। ४-५२

छाँह = शरण। १३-१६

छाकी = छकी, अघाई हुई। १-१८

छाके = छके हुए। १०-३६

छामता = (क्षामता) कृशता, क्षीणता। ११-१२

छामिनी = क्षीण। १५-५०

छामोदरी = (क्षामोदरी) क्षीण कटि-वाली। ११-७

छाया = सूर्य की एक पत्नी; कालिमा (छायांक = चंद्रमा); कात्यायनी; सौंदर्य। २०-७

छार = धूल। १६-१६

छिगुनिया = कानी उँगली, कनिष्ठिका। ६-५०

छिति = (क्षिति) पृथ्वी। ११-३१

छिन = क्षण। २-६३

छिया = छोकड़ी; मल। २४-७

छीट = छींटा। १०-३८

छीर = (क्षीर) दूध। १८-१२

छीरनीरन्याय = नीरक्षीरन्याय, दूध पानी की भाँति मेल, जहाँ पार्थक्य लक्षित न हो। ३-४६

छीलरि = छिछली तलैया। २५-११

छेम = क्षेम, कल्याण। २१-६५

छै = क्षय, नाश। २१-६५

छौने = छौने, बच्चे । १०-२८
छोभ = (क्षोभ) व्यग्रता, हड़बड़ी । २१-६६
छोर = किनारा, अग्रभाग । ११-४१
छोरति = खोलती है । ४-१८
छोरिकै = छीनकर । १६-२५
छोह = ममता, प्रेम । १२-१५
जँजीराजोर=जंजीरे का सा जोड़, शृंखलाबद्ध । ३-४४, १८-६
जई = अंकुर । १३-४४
जकति = चकपकाती है । ५-२५
जकी = चकपकाई हुई । २-४८
जगंभरा = विश्वंभरा, पृथ्वी । २३-२२
जच्छिनी = यक्षिणी । १०-२६
जजीर = जंजीर, शृंखला । २१-८२
जतनै = (यत्न) उपाय ही । १५-२१
जति = जितने, कुल । २१-७२
जद्रिच्छा=(यदृच्छा) मनमानापन । २-२
जन = दास, सेवक । २१-२७
जनमजरी = जन्म से जली हुई । १३-७
जनी = स्त्री । १४-४३
जनी = दासी । १५-२३
जनेस = (जनेश) नरेश, राजा । ५-४
जनै = उत्पन्न करती है । २३-३४
जपा = जवा, अड़हुल । ८-१०
जम = (यम) । ११-२५
जमक = डटना । ८-१४
जमन (भाषा) = मुसलमानों की भाषा, खड़ी बोली । १-१५
जमाति = टोली । १४-१७
जमान = जमानतदार, जामिन । २-६२
जरद = पीले रंग की । ६-३५
जरबीली = भड़कीली । २५-२१
जरा = बुढ़ापा । २१-२७ अ
जराइ = जड़ाऊ, रत्नजटित । ५-४, २२-३
जराउ = रत्नों का जड़ाऊ काम । ६-३७
जराउ-जरे = रत्नजटित । १६-१५
जरावत = जलाता है । १२-१२
जरी = जली । १६-५८
जरे = जड़े, जटित । १७-५
जरो = जला, जल गया । २१-१५
जल अनघ = पवित्र जल, गंगाजल । २१-४५
जलजा = लक्ष्मी । ११-४३
जलजात = जलज, कमल । १०-११
जलवा = 'जाल' का तिरस्कारसूचक रूप । २१-३२ अ
जलसाई = जलयुक्त । २५-३ अ
जलासै = (जलाशय) । ११-२३
जल्पति = बकती है । ५-२५
जवादि = जब्बाद, एक सुगंधित द्रव्य जिसे गंधामार्जार से निकालते हैं । १४-३३
जवास = (यवास) एक कँटीला क्षुप । ८-६२
जस = (यश) कीर्ति । १-१
जस = यश, कीर्ति; [जन = लोग] । २१-३८
जसहद = यश की पराकाष्ठा । २१-६४
जसु = यश । २१-२७ अ
जहान = दुनिया, विश्व । ४-३८
जाई=उत्पन्न । १३-७

जाचिबे=याचना करने,माँगने । १०-१५
जाड़वै = जाड़ा ही । ६-१२
जातरूप = सोना । ६-६६
जान = (सुजान) पंडित । २१-२६ अ
जान = जानकर । २१-८१
जान = जानो, समझो । २१-८२
जानकीरवनयस=जानकीपति श्रीरामचंद्र का यश । २१-२६ अ
जानन्ह = यानौं (चंद्रमा के) । २१-८२
जानबी = जानिए । २१-३८ अ
जानु = जाँघ । २-६३
जापी = जप करनेवाला । ८-८५
जाम = (याम) प्रहर । २५-४३
जामिनि = (यामिनी) रात्रि । २३ ७० अ
जामैं = जिसमैं । १-१२
जाल = समूह । २-२६
जाली = जालीदार (ओढ़नी) । ६-३५
जावक = महावर । २१-१६
जाहि = जा, चली जा । २-६१
जाहिर = प्रकट, प्रत्यक्ष । ६-३८
जिकिर = जिक्र, चरचा । १२-१८
जी = मन, चित्त । ४-१८
जीगना = जुगनू । २२-१५
जीजति = जीते हैं । २१-७२
जीमूत = बादल । २५-१६
जीय = जी, प्राण । २३-७० अ
जीरो = जियरा, जी । १३-१८
जीवन = जल, पानी । २-१६
जीवन = पानी; जिंदगी । ८-८५, १२-१३
जीहा = (जिह्वा) जीभ । ५-१४
जु = जो । २-४
जुगुति = (युक्ति), उपाय । १२-४३
जुत = युक्त । २-७
जुतजोति = ज्योतियुक्त । ८-८०
जुथ्थप = (यूथप) सेनापति । १६-८
जुवा = (युवा) जवान । २१-२६
जृंभ = जँभाई, जमुहाई । २-५४
जैतुवार = विजयी । १३-२४
जोगुनू = जुगनू, खद्योत । ८-७५
जोर = बल, शक्ति । ५ ५
जोहारै = प्रणाम करे । ८-८८
जो = यद्यपि । २१ ८२
जोग = योग, स्थिति । २-३१
जोजित = (योजित) संयुक्त । १२-८
जोटी = जोड़ी । १७-४७
जोति = ज्योति, ज्योत्स्ना । ४-४६
जोति = (ज्योति) प्रकाश; जोतकर । ६-४६
जोधा = (योद्धा) वीर, सिपाही । ३-२६
जोन्ह = ज्योत्स्ना, चाँदनी । २१-८१
जोर = बलपूर्वक, बरबस । ५-१७
जोहै = देखती है; जो है । २०-५
ज्ञान = सुधबुध । २१-६०
ज्ञानिये = ज्ञानी ही । १-१६
ज्यान = नुकसान, क्षति । २०-१६
ज्यावन=जिलानेवाला । ८-६५
ज्यौं त्यौं = किसी प्रकार, कठिनता से । २-६१
ज्यौ = जी । ११-३५
ज्वलन=आग, जलन । ६-२१
ज्वाब = जवाब, उत्तर । १०-१६
झंपि = ढककर, छाकर । ६-५३

झँवावती = झाँवे से पैर की मैल छुड़वाती है। ११-३४
झखकेतु = मीनध्वज, कामदेव। १-२-६, १८-१६
झगा = बच्चों के पहनने का ढीला-कुरता। १६-१५
झझकारती = झिटकती है, डाँट बताती है। १७-६
झमक = झनकार। ८-१४
झर = (पानी की) झड़ी। ४-१७
झर = वर्षा की झड़ी; (चमत्कारार्थ–ज्वाला)। १६-४७
झरसै = झुलसती है। १६ ४७
झर्पि = झोंका देकर। १६-४६
झलैं = (विष ही) बोल रही हैं। १६-४७
झल्लै = बकवाद करता है। २३-१७
झाँवतो हो = झाँवे से रगड़ता था। ५-२४
झाँवरी = झाँवे के रंग की, काली। २२-८
झार = ज्वाला। १२-६, १७ ८
झार = क्षुप, पौदे। २२-१७
झारति = झटकती है। २४-८
झिल्लो = झीँगुर। ४-१७, २३-४४
झीन = अत्यंत महीन। ११-८
झुकति = रोष करती है। १७-६
झूठिए = झूठ ही। २१-८६
झोर = झटका। ६-२०
टंकोर = टंकार, धनुष की ध्वनि। ५-१७
टकी = टकटकी। १५-४३।
टटको = टोटका, जादू। ६-३०
टहल = कार्य, काम। १२-२१ अ
टुक = थोड़ा, तनिक। २३-१७
टेक = संकल्प, सिद्धांत, शैली। ३-८
टोने = जादू। ४-१६
टोल = टोला, महल्ला। ६ ३६
ठई = युक्त। १०-४२
ठगि रहीँ = ठगी जा रही हैँ; स्तब्ध हो रही हैँ। २-३५
ठगौरी = ठगविद्या। ८-२८
ठट्ट = समूह। ४-३५
ठमक = ठसक। ८-१४
ठरी = अत्यंत शीतल। १६-५८
ठहराइये = निश्चित कीजिए। ३-३१
ठहरात = ठहरता है, निश्चित होता है। २-१४
ठहरैहै = स्थिर होगा, काम मैँ आएगा। १-८
ठाईँ = (ठाँव) स्थान मैँ। १-१०
ठाउ = स्थापित करो, समझो। ४-२०
ठान = ठानो, स्थिर करो। २-२७
ठिकु = ठीक। १८-३०
ठौनि = ठवनि, मुद्रा। २-४८, १८-३०
ठौर = स्थान, बदले। ११-१६ ३१-३८ अ
डंबर = विलास। १४-४३
डगरी = चली। २-२६
डगी = डगमग करती। १६-२१
डगुलात = डगमगाता है, हिलता है। ५-१०
डरारी = डरावनी, भयावनी। १०-३७
डरारे = डरावने। ५-११

डहकायो = खोया, गँवाया। १५-१५
डहरैं = (डगर) गलियाँ। १६-१३
डाभ = (दर्भ) कुश। २३ ४१
डीठि बचाइ = आँख बचाकर, छिपाकर। ५-६
डौंरू = डमरू। १०-३६
डौर = (डौल) तौरतरीका। ४-३७
डौरु = डमरू। १३-१४
डौल = डोल। ६-३६
ढर = उड़िलना। ४-५३
ढलकत = लहराती है, फहराती है। ११-३५
ढारिकै = ढालकर, उड़ेलकर। ५-१४
ढिग = पास। २-१३
ढुरकी = हिलती। २५-२१
ढेल = ढेला। ७-२८
ढोरी = लगन। ५-१३
ढौर = प्रकार, ढंग। १६-५४
तंत=(तंत्र) धंधा। १३-१२
तंत= तंत्र) रहस्य। २१-६१
तंतु=कमलनाल के रेशे। ११-४३
तंबू=खेमा। ८-८६
तँही=तू ही। ५-७
तकाइकै=तकाकर, देखभाल के लिए सहेजकर। १५-२३
तकिकै=ताककर, देखकर। ४-२२
तकै=ताकती है, देखती है। २-६०
तकत=देखती है। ६-७०
तकस=(तरकश) तूणीर। ४-३४
तछन=(तत्क्षण) उसी क्षण, तत्काल। ४-३५
तचि=तपकर, तप्त होकर। १२-३४
तड़ित=बिजली। ८-२४
ततछन=(तत्क्षण) उसी क्षण। ४-४५
तति=पंक्ति। १४-१
ततु=तत्त्व। २१-३६
ततुतौ=तत्त्वतः। २१-४६
तदै=(तदा ही) उसी समय। २१-७६
तन=ओर, तरफ। २१-७६
तनकौ=तनिक भी। २१-८०
तनमै=तन्मय, तल्लीन। ६-७
तनी=बंद।४-१८
तनु=शरीर। २-४८
तनु=छोटा। ११-४२
तनु=क्षीण। १२-१८
तनुताई=क्षीणता। १८-२१
तनै=शरीर के। १५-२१
तपपुंजनि=तपस्या का ढेर। १-१०
तपी=तपस्वी। २१-२६
तम=अंधकार; तमोगुण। ८-४६
तमक=जोश। ८-१४
तमतोम=अंधकार का समूह। ६-२०
तमराइ=(तमराज) घना अंधकार। २२-१५
तमीले=तमोगुण वाले, क्रुद्ध। ६-६५
तमोल = (तांबूल) पान। ६-३६
तरकि=तर्क करके। ५-१५
तरकि गईं =तड़क गईं, टूट गईं। ११-१२
तरकि=तड़क (उठा), चिटक (गया)। ४-३४
तरनि=तरणि, सूर्य। ८-५१
तरनी=नाव। २५-३८
तरपै=तड़पती है, कड़कती है। १६-४७
तरलो=द्रव (जल)। २१-८१

तरवारी=तलवार । १०-३७
तरह=ढब, प्रकार । ६-६६
तरिबर=तरुबर, वृक्ष । १०-२८
तरु=वृक्ष । ६-२०
तरु=तरुण (बड़े); वृक्ष (चमत्कारार्थ) । २०-१६
तरु = तर, नीचे । २३-८२
तरुनि = तरुणी, नायिका; वृक्ष । २०-१५
तरे = तले, नीचे । ६-६ अ
तरैयन=तारों । ८-५७
तरैयाँ = तारे । २२-१५
तर्जि = तर्जना देकर, धमकाकर । १६-४६
तल = (पैर का) तलवा । ८-४२
तलास=(तलाश) खोज । ५-१५
तस्कर=चोर । १३-३२
तहँ=वहाँ ।२२-५
ताए=तपाए हुए । ११-२५
ताकी=उसकी । १-१८
ताड़ित=पीड़ित । २३-७० अ
ताते=उस प्रिय से । २१-४६
ताते=इसलिए । २१-४६
ताते=तप्त । २१-४६
तातैं=तिससे, उस कारण । १-८
तापत=संतप्त करता है । ३-२२
तापनि = तापों से, ज्वालाओं से । २३-७० अ
तातपर्ज=तात्पर्य, अभिप्राय । १६-४८
तापर=तिसपर, उसपर । ५-१४
तापसी=तपस्या करनेवाली । ४-२८
तामरस=कमल । ८-८६
ताय=(ताप) गरमी । ६-३५
तार=ताल, मँजीरा । ४-१६
तार=(कमलनाल तोड़ने पर दिखाई पड़नेवाला) रेशा । ८-३३
तारका=ताड़का राक्षसी । २३-५२
तारमुलम्मे=कलाबत्तू के । २२-६
तारिका = आँख की पुतली । १५-५५
तारे = सितारे (मोती के आभूषण) । ६-८
तारे = आँख की पुतलियाँ । २१-४१
तारे कसै = अपनी पुतलियों को जाँचती (टिकाती) है । २१-६२
तारे कसौटिन = पुतलियाँ रूपी कसौटियों पर । २१-६२
तासु = उसके । २-३७
तिक्ख = तीक्ष्ण, तेज । १६-४६
तिन = तिनका । २२-१६
तिनूका = तिनका । १०-२६
तिमहले = (घर के) तीसरे खंड (पर), तिमंजिले (पर) । ६-५
तिमिंगिल = मछली को निगल जानेवाला समुद्री जलजीव । २५-३६
तिमिर = अंधकार । १३-५०
तिमिरारि = सूर्य । २२-१५
तियानि = स्त्रियाँ । १-११
तिरि = तिरकर, तैरकर । ६-६८
तिल-आधु = आधे तिल के समान, अत्यंत छोटा । ५-२०
तिलक = टीका (गूढ़ ग्रंथ की); तिलक वृक्ष (वन मैं); तिल+क = पानी (तर्पणी मैं); घोड़ा (गोनो लादनेवाला); जनाना कुरता (गणिका); शिरोभूषण, टीका (बाल = सौभाग्य-

त्रिया=स्त्री। २३-३
थंभ=स्तंभ। ४-१३
थँमि थँमि=रुक रुककर। ४-१७
थरथरी=कँपकँपी। ४-३६
थल=स्थल, अंग। ४-३२
थलकत=डोलती है, हिलती है। ११-३५
थली=स्थली। ८-५८
थहरै=हिलती है। ६-८
थाई=स्थायी। ४-८
थान=स्थान। १४-२६
थाप=स्थापना, चिह्न। १८-१८
थापिये=स्थापित कीजिए, आरोप कीजिए। २-३३
थिर=(स्थिर) स्थायी। ४-१
थिरता=(स्थिरता) अचंचलता। ३-४५
दंपति=नायक और नायिका। ४-२३
दई=दैव, ब्रह्मा। १०-४२
दई=दिया है, अर्पित किया है। १०-४२
दई के निहोरैं=दैव के निमित्त, ईश्वर के नाम पर। ५-२४
दईमारी=दैव की मारी, अभागिन। २-२५
दच्छिनपौन=मलयवायु। १३-११
दगो=दग्ध किया। २१-८१
दनुजारि=दानवों के शत्रु, श्रीकृष्ण। १३-२६
दपट्टि=डपटकर। ४-३५
दमयंती=राजा नल की पत्नी। ८-३७
दरकिबे को=फटने के लिए। १३-३९
दरद=(दर्द) पीड़ा। २१-७७
दरप=(दर्प) रोब, गर्व। १०-१०
दरपन=दर्पण (आईना); दर्प (अहंकार) न। २०-५
दरम्यान=बीच। ११-३०
दरिद्र=दरिद्रता। ६-३३ अ
दल=पत्ता। २-११
दल=सेना। २-११
दल=पंखड़ी; सेना। ८-३८
दलकत=फट जाते हैं। ११-३५
दलन=संहार। ४-४७
दलन=सेनाएँ; पंखड़ियाँ; संहार। २०-६
दलगीर=उदास; (दल=पत्ता, गिर=गिरना) पत्तों का गिरना। २०-१५
दवन=(दमनक) दौना। २१-७२
दवानल=(दावानल) दावाग्नि। ५-६
दवारी=दौड़। १०-३७
दसकंध=रावण। ४-३४
दसदिसि=दसो दिशाओं मैं, सर्वत्र। १-१
दसन=(दशन) दाँत। २-६८
दसबदन=दशानन, रावण। २१-४३
दसैसिर=दस सिर वाला, रावण। २५-४०
दह=(ह्रद) कुंड। २२-४
दहे पर दाहि देत=जले पर जलाता है। ५-१४
दाँजु=स्पर्धा। २३-६३ अ
दाउ=दाँव। १२-३८
दाख=(द्राक्षा) अंगूर। ३-६
दाग=दागता है, जलाता है। २१-७६
दाड़िम=अनार। २२-१७
दातन=देनेवालों। ६-६६
दानि=दानी, दाता। १-१

दामवंत=धनवाला । २१-६१
दार=हे स्त्री । २१-१५
दारनि=नारियाँ । १५-३४
दारनो=दलन करनेवाले । २१-६६
दारिद=(दारिद्र्य) दरिद्रता । ५-१५
दारु=काष्ठ । १०-२६
दार्यौ=(दाड़िम) अनार । ८-२६, २२-१७
दास=सेवक; [दान = देना] । २१-३८
दासी=सेविका; [दानी=दाता] । २१-३८
दख-साध = देखने की लालसा । १८-३२
दिगअंबर = दिशाओं का वस्त्र; नग्न रूप । १३-१६
दिठौना = अनखा, काजल की बिंदी जो नजर बचाने को लगाई जाती है । १७-६
दिढ़ताई = दृढ़ता । २४-६ अ
दिनराज = सूर्य । २-६७
दिया = (दीपक) चिराग । २-३२
दिविदेस = स्वर्गलोक । २५-२२
दीज्य = देय । १७-१७
दीनी = दी । १-१२
दीन्ही पीठि= विमुख हो गए । ३-३६
दीपति = दीप्ति । ६-६
दीपै = द्वीपों में । ६-६
दीबी = दे देना । ६-५१
दुअन = दुर्जन । २१-६३
दुकुल = (दुकूल) वस्त्र । १०-३५
दुचित = दुश्चित्त, अस्थिरचित्त । २-६०
दुज = (द्विज) पक्षी । २-१५
दुज = (द्विज) ब्राह्मण । ८-४१
दुजराज = (द्विजराज) चंद्रमा । ६-२५
दुजराज = बड़ा दाँत । ६-२५
दुज-लात=(द्विज = ब्राह्मण भृगु + लात=पैर) भृगुलता । ३-२२
दुजेस=(द्विजेश) श्रेष्ठ ब्राह्मण । १३-३८
दूजो = (द्वितीय) दूसरा । २-२०
दुतिय = (द्वितीय) दूसरी । २-२६
दुतिय = (द्वितीय) (नल के बाद) दूसरा । २१-२५
दुती = (द्युति) ज्योति । २१-२७
दुद्वै = दो दो । २१-२६
दुनौने = झुकने । ४-१६
दुपंचस्यंदन = दुपंच (दश) स्यंदन (रथ), दशरथ । २३-३१
दुपहरी = दुपहरिया का फूल, बंधूक । १७-५०
दुबर्न = दो वर्ण (रा + म) । २५-२७
दुरन = छिपने (के लिए) । ३-११
दुराइ = छिपाकर, निषेध कर । ३-१२
दुराइबे=छिपाने (को) ।१२-४३
दुराए=छिपाए । १७-३६
दुरैं दुरैं=छिपे छिपे । ५-१०
दुरेफ= (द्विरेफ) भ्रमर । ८-४३
दुस्तर=कठिन । १७-२४
दुहुँ=दोनों (को) । १-७
दुहुँघा = दोनों ओर । १०-३५
दूनो = दोनों । १५-२३
दूनो = दूना, दुगुना । १५-२३
दूषन = कर्णकटु आदि दोष । १-१३
दूषि = निषेध करके । १२-३६
दृग बचाइ = आँख बचाकर, छिपकर । ४-४६

दृगमीचनो = आँखमिचौली का खेल। १२-४३
देव = कवि देवदत्त। १-१६
देव चतुर्भुज = चार भुजाओं वाले देवता, विष्णु। ३-३८
देवनदी = गंगा। १२-३७
देवसरि = गंगा। ६-२०
देवसेव = देव (आप) की सेवा। ४-३२
देहरी = देहली। २-१६
दोर = दौड़। १७-३६
दोहद = गर्भावस्था। २३-८२
दौर = तेजी, प्रबलता। ४-४७
दौर = दौड़, पहुँच। १०-१५
द्यौस = दिवस, दिन। २-१७
द्रुत = शीघ्र। ४-४६
द्रुपदजा = द्रौपदी। १०-३०
द्रुपल = नकली रत्न। २३-६६-अ
द्वादसादित्य = विवस्वान् आदि बारह सूर्य। १-१
द्विज = पक्षी; ब्राह्मण। २५-१७
द्विजेस = द्विजराज, चंद्रमा। १८-७
द्वै = दो। २-२२
द्वैक = दो एक, एक दो। ४-३८
द्वैज = द्वितीया तिथि। १४-२२
द्वैमातु = द्वैमातुर, जिसकी दो माताएँ हों, (गणेश जी का विशेषण) १-१
धंध = ज्वाला। ८-७६
धंधु = (धंधा) उद्यम, काम। ७-६
धकधकी = (हृदय की) धड़कन। ४-३६
धनंजय = अग्नि, आग। २-८
धनु = धन; धनुष। २०-५
धनेस = (धनेश) कुबेर। ५-४
धर = (धड़) शरीर। २४-१२
धरकत = धड़कती है, तीव्र होती है। ४-३६
धरन = धारण करनेवाले। ३-५४
धरमनि बाहिर हैं = धर्मों से बाहर हैं; धर्म को निबाहते रहते हैं (धरम निबाहि रहैं)। ३-५२
धरती = रखती है। २३-८२
धलकत = दहलते हैं। ११-३५
धवर = एक पक्षी जिसका कंठ लाल और सारा शरीर सफेद होता है। २१-७२
धाइ = धाय, दाई। २-५६
धाम = घर। २१-५५
धार = धारण करो। ५-२
धारा = (तलवार की) धार। ११-१६
धावन = दूत। १२-३२
धीवर = पंडित, विद्वान्; मल्लाह। १५-८
धीरपरसंत = धीरप्रशांत। २५-३१
धीरे = मंद। २१-५५
धुकारी = नगाड़े का शब्द करनेवाला। १०-३७
धुधुकारती = धू धू की गर्जना करती। १५-३४
धुनि = ध्वनि। १-१८
धुनि = पीटकर। ६-६७
धुरंधर = धुरी धारण करनेवाला, बैल। १-१२
धुरवा = मेघखंड। १०-३७
धुरीन = (धुरीण) बैल। ८-६६

धुरेटति = धूल धूसरित करती है। १७-४०
धूत = (धूर्त) चालाक। ६-३३
धूम = धुआँ। २-८
धूरिधारा = धूल का स्तंभ। ११-३५
धूसरित=मटमैला। १०-३६
धृग = धिक् (धिक्कार)। ५-२२
धौं = न जाने। ४-४६
नँदनंद = श्रीकृष्ण। ४-२२
नकमोतियै = नाक के आभूषण मैं का मोती ही। १८-१६
नकलोन = नकलोल, नकलनोर, मुनिया पक्षी। २०-१३
नकारै = 'न' अक्षर। २१-३८
न की = नहीं की। २१-२६ अ
नखचंद = नखाकृति चंद्रमा, द्वितीया का चंद्र; नखक्षत। ६-४१
नग = रत्न। ३-१८
नगधर = गोवर्धनधारी, श्रीकृष्ण। २१-६१
नगन = नग्न, नंगे। २१-४५
नगराजसुती = हिमालयपुत्री, पार्वती। २१-२७ अ
नछत्र = (नक्षत्र) ग्रह। १-१२
न जा = मत जा। २१-२६ अ
नजीक = (नजदीक) निकट। ११-१०
नत = (नतु) नहीं तो। २१-७१
नतरु = नहीं तो। २२-७
नति = नम्रता। १६-५१
नथुनी = नथ, नाक का एक आभूषण। १४-२६
नबसी = नवश्री, नवीन छटा। २१-८२
नभ = आकाश मैं, अधर मैं। ८-३०
नमामि = प्रणाम करता हूँ। २५-४४
नय = नीति। २१-२६ अ
नयरित्यन = राक्षसों का। २१-६६
नयहु = नवीन (से) भी। २१-७०
नयो = (दिन) ढल गया (शाम होने को आई)। १६-१२
नरक = एक असुर। २१-६६
नराच = बाण। ११-२५
नरु-ती = पुरुष और स्त्री (मैं)। २१-२७
नव = ९, नौ। २१-२६ अ
नव = नवीन, नई। २१-८६
नवनिद्धि = (नवनिधि) नव प्रकार के पद्मादि खजाने। १-१
नव बाल = नवोढ़ा। ३-३४
नवला = नवेली, नवोढ़ा। ४-१६
नवेली = नवोढ़ा। ६-२
नहनि = डोरी मैं। २४-८
नहि रह्यो = नध (रहा), लग रहा। २४-८
न हेलियै = तिरस्कार मत करो। २०-१०
नाँगो = नग्न, नंगा। २३-११
नाईं = तरह। १-१०
नाक = नासिका। १६-६०
नाक = स्वर्ग। १६-६०
नाग (भाषा) = नागों की भाषा, पिंगलभाषा, अपभ्रंश। १-१५
नागर = चतुर। २०-६
नागरी = नगर मैं रहनेवाली। ६-६६
नाथप्रान = प्राणनाथ, प्रियतम। २३-[illegible]
नारी = स्त्री, गोपी। ८-६३

नारी=नाड़ी । ८-६३
नासा = नासिका, नाक । ३-४७
नास्यो = नष्ट हो गया, समाप्त हो गया। ३-३३
नाह = (नाथ) स्वामी । २१-३०
निकर=समूह । ११-१०
निकाम= हे निकम्मे । ८-७३
निकाय=समूह । ६-७ ।
निकारि=निकालकर । ६-६
निकेत=घर । २-६३
निखरी=साफ, स्वच्छ; नि + खरी (चमत्कारार्थ) । २०-१०
निखोटि=दोषरहित । १२-४३
निचोने=निचोड़ने । ४-१६
निचोल=ओढ़नी । ६-३६
निचौंहीं=नीचे की ओर झुकने मैं प्रवृत्त । २५-३अ
निजा सरा=अपने बाणों से । २१ ८७
निजु=निश्चय । १५-४७
नितंब=चूतड़ । ६-३६
नित्त=(नित्य) सदा । १८-१०
निदरि = निरादर कर, अपमानित कर । ६-२
निदानी=आदिकारणरूपा । २१-८६
निदानु=अंततोगत्वा, अंत मैं । ६-१२
निदाह=(निदाघ) ग्रीष्मकाल । ११-२१
निद्रा तज्यो = विकसित हुआ । २५-१५
निधि=कविनाम । १-१६
निपटि = (निपट) अत्यंत । ६-१६
निपाट=केवल । २-१२
निपात=पतन, गिरना, दूर होना । १५-४८
निबारिबे=निवारण । १२-१२
निबाहु=(निर्वाह) । ११-२२
निबिड़=घना । २३-२२
निमिष=क्षण भर, पलक भाँजने भर का समय । ३-१७
निमोही = निर्मोही, मोहरहित । २१-५२
नियरो = निकट, समीप । १३-३६
निरंजन=मायारहित । २१-६६
निरखनि = दृष्टि, कटाक्ष । २१-६७
निरसंक=(निःशंक) शंकारहित, निर्भय । ३-४१
नींब=(निंब) नीम । ८-८६
नीठि=कठिनाई से । २-५६
नीप=कदंब (पुष्प) । ४-१७
नीबी=फुफुँदी । ४-१८
नीरचर=जलचर, मछली । १३-४६
नीरज=कमल । १६-२२
नीरद=(नि + रद) दाँतरहित । २३-१०
नीरप्रद=पानी देनेवाला, बादल । २१-७०
नीरे=निकट, पास । २१ ५५
नीवर=निर्बल, कमजोर । २१-७१
नील = नील (रंग); नील (संख्या) । २०-१६
नीलकंठ = कविनाम । १-१६
नीलक = नीलम (नीला रत्न) । ६-३७
नीलगुन=नीला तागा । १०-३६
नृत्तित (करत)=नचाती हुई । १६ ४
नेगी=नेग पानेवाले । (नेग=शुभ कार्यों के अवसर पर संबंधियों, आश्रितों आदि का देने पाने का हक) । १५-५१

नेम=नियम । ४-१२
नेरै=(निकट) पास । ६-४४
नवाज=कविनाम । १-१६
नवारी=चमेली से मिलता जुलता एक सफेद पुष्प । २१-७२
नेसुक=थोड़ा । १२-१८
नेह=स्नेह, प्रीति । ४-२८
नैन-बारि = अश्रु, आँसू । १६-५६
नौमु = नवमी (नवरात्रवाली) । १०-३६
नौनि = नमित होने का भाव, झुकने का भाँव । १८-३१
नौलबधू =(नवलवधू) नवोढ़ा । ६-३६
न्याइ =(न्याय) उचित, ठीक । १०-१०
निलै=(निलय) घर, स्थान । १५-२३
निवारे = (निवारण) दूर किए (रहो) । १८-३२
निसतारक=निस्तार करनेवाले, अंत तक पार लगानेवाले । २५-३७
निसरि गो=निकल गया । २१-५५
निसर्ग = स्वाभाविक । १६-५
निसा = इच्छापूर्ति; रात्रि । १५-३१
निसि=(निशि) रात । २-१७
निसेनी = (निःश्रेणी) सीढ़ी । ८-६२
निसेस =(निशा + ईश) चंद्रमा । १५-५०
निस्चल=अटल । २-४
निहचल=निश्चल । २-६६
निहचै = निश्चय ही । ६-२४
निहारि लही= हारि ल) हारिल पक्षी; देखकर जाना । २०-१३
निहाल=परितुष्ट । २२-३
निहिया = (नि + हिया) हृदयहीना । २१-८२
निहोर = एहसान, कृतज्ञता । १७-३६
निहोरो=निहोरा, प्रार्थना,बिनती । १६-१२
पंगति =(पंक्ति) श्रेणी । ७-१२
पंगु = जिसके पैर चलने की शक्ति से रहित हों । १३-७
पंचकर =जिसके पाँच हाथ हों (चार हाथ और एक सूँड़) । १-१
पंचदसहूँ =पंद्रहो । १-१
पंचबान =कामदेव । १७-४५
पंथ =मार्ग (के) । २३-८२
पंननि =हरे रंग के रत्न । ६-३७
पक्को =(पक्क) मजबूत, सशक्त । २१-७६
पक्ष =पंख, पाँख । २-१३
पच्छ =ओर, तरफ । ४-३४
पखनि =पंखों में । १५-८
पखा = पंख । ६-३४
पखान =(पाषाण) पत्थर । ४-७
पषान=पाषाण; कड़े, कठोर । १६-२३
पखारैं =धोते हैं । ८-८५
पग-ठौनि =पैर रखने की मुद्रा । १५-३४
पगि रहीं =मीठे की भाँति चाशनी में डूब रही हैं; लीन हो रही हैं । २-२५
पगु सों =पैरों को । २-६३
पचिकै =परेशान होकर । २१-७१
पचै कै =पचाकर, समाप्त कर । २-२५
पछारु =पछाड़ो । ४ ३५
पजरावत =एकदम जला देता है । २१-३१
पटा =दुपट्टा । १२-४२

पटीर = चंदन । ६-६८

पटैत = पटेबाज, पटा खेलनेवाला । १५-५१

पट्टत = पाटते हैं । १६-८

पतंग = पतिंगा । ८-७६

पतनै = पतन से, गिरने से, मूर्छित या मृत होने से । १५-२१

पतियाँ = पत्रिकाएँ । ५-२४

पद = शब्द । ४-१६

पदारथ = (पदार्थ) वाच्यार्थादि । १-१८

पदिक = रत्न । १४-४१

पदुम = पद्म (कमल); पद्म (संख्या) । २०-५, २०-१६

पदुमिनि = पद्मिनी, नायिका; कमलिनी १०-१२

पन = प्रण, प्रतिज्ञा । ४-३४

पनहा = चोरी का पता देनेवाली । १७-३६

पना = (पन्ना) हरे रंग का रत्न । १८-१६

पनारो = पनाला । ३-४८

पनु = प्रण, प्रतिज्ञा । २१-६८

पबि = वज्र । १५-२७

पयोधर=बादल; स्तन । १६-२३

पयोधि=सागर, समुद्र । ६-१५

पयान = (प्रयाण) प्रस्थान । १२-३७

पर = पंख । ५-६

पर = शत्रु । २१-१३ अ

परगुन = दूसरे का गुण । २-२८

परचंड = (प्रचंड) भीषण । ४-३४

पर जाहिर हैं = पर जाहिर (प्रकट) हैं; परजाहि रहैं, प्रजा ही बने रहते हैं । ३-५२

परतीति = (प्रतीति) बोध । २३-४

परदा=वस्त्र; आड़ । १३-१६

परदे (सौं)=परदा करके गुप्तरूप (से) । ५-६

परदेसौं=परदेश में भी । ५-६

परपंची = (प्रपंची) प्रपंच रचनेवाला, बखेड़िया । ४-४६

परपिंड-प्रबैसी=परकाय में प्रवेशवाला । ६-७

परपुरुष=दूसरे पुरुष; परमपुरुष, विष्णु । २३-५२

परब-गन=(पर्वगण) सूर्यग्रहण; चंद्र-ग्रहण; पुण्यकाल; प्रतितिथि । २०-७

परबत=पर्वत, पहाड़ । २१-१३ अ

परबतसरदार = पर्वतों का नेता हिमालय । २१-१३ अ

परबीन =(प्रवीण) चतुर । ११-५

परबीनता=प्रवीणता, चतुराई । १७-३३

परभृत=दूसरे को भरनेवाला; दूसरे के प्रकाश से भरा हुआ; (कात्यायिनी द्वारा) पोषित; (यशोदा द्वारा) पालित । २०-७

परसैन=शत्रु की सेना । २१-६५

परांग = अपरांग, जहाँ रस-भाव किसी अन्य के अंग हों । १-१८

परा=दूसरे की । २१-५५

पराए = दूसरे, अन्य । १२-११

पराग=१—(परा + आग) तेज आग ।
२—(प्र + राग) विशेष लाल ।
३—पुष्पधूलि । २१-१६

पराधु=अपराध । ५-२०

परावन = भगानेवाला २१-३१

परि=पड़कर, लेटकर । ५-४

परि=पर । २२-१६
परि गो=बंद हो गया । २०-५५
परिपाटी=रीति, नियम । २५-३५
परिमान=परिमाण, बराबर । २२-१६
परिवारु=वंश, समूह । १६-२४
परु=पर । २३-८२
परेवे=परेवा पक्षी; वे पड़ गए । २०-१३
परै=पर ही, पंख ही । २-१३
परै=दूर । २०-१०
पवारी=(प्रवाली) मूँगा । ३-५४
पल=पलक । १०-३६
पल=क्षण । १६-५५
पलो=पल भर, क्षणमात्र । २१-८१
पसुनाथ=पशुपति, शंकर । २१-६५
पस्यतोहर=देखते हुए (वस्तु) हर लेने-वाला; सोनार । १०-२७
पहाऊँ=प्रातःकाल । ५-१८
पहिराउ=पहिरावा । ६-३४
पहुँचनि=कलाइयों मैं । ११-४१
पाइ=(पाद) पावँ, पैर । ३-२६
पाकी=परिपक्व, पकी हुई । १-१८
पाग=पगड़ी । २०-१७
पागि रही=पग रही है, अनुरक्त हो रही है । ४-२२
पागी=पगा हुआ, लीन । १३-३३
पाटल=गुलाब । १४-२६
पाटी=लकड़ी की पट्टी । २५-३५
पात=पतन; पत्ता (चमत्कारार्थ) । २०-१६
पात्रता=योग्यता । १८-१०
पाथ=पंथ, मार्ग । १४-४
पान=तांबूल । २१-१५
पानि=(पाणि) हाथ । ३-३६
पानिप=जल; आभा । ८-३६, १०-२७
पानिप=आब, चमक; शोभा, छटा । ८-५३
पानिप=द्युति, कांति; जल । १०-१०
पानिप=पानी (तलवार की आब); जल । १३-२२
पानिप=कांति; पानी; चमक । २०-६
पा पलुटैबो=पैर दबवाना । ५-४
पाय=(पाद) पाँव, पैर । ३-४५
पारद=पारा । ८-१६
पारसीक-बासी=फारस के रहनेवाले । २१-१६
पारस्यौ=पारसी (फारसी भाषा) भी । १-१४
पाल=नाव का पाल । ६-४१
पावक=अग्नि, आग । २-८
पावड़े=संमान के लिए किसी के आने के मार्ग मैं बिछाया हुआ कपड़ा । ८-२८
पावनता=पवित्रता । २५-४३
पावनो=(पावन) पवित्र । ४-३८
पावसै=(प्रावृष्) बरसात ही ।२२-१६
पाहन=(पाषाण) पत्थर । १३-२१
पिक=कोयल । २१-७१
पिखि=देखकर । १६-८
पित्रिगृह=पिता का घर, पीहर; पितर-लोक । २५-१६
पियरे=पीले । ६-३४
पियूषमयूष=अमृत की किरणोंवाला, चंद्रमा । १३-११

पी=(पिय) प्रियतम । ८-७०
पीउ=(पिय) प्रियतम । २१-१०
पीतपटा=पीला वस्त्र, पीतांबर । १०-५
पीत-पटी=पीतांबर । ५-११
पीतमुख=पीले मुँह वाला, भौंरा । २५-१५
पीन=स्थूल । ६-३६
पीयूष=अमृत । ८-७८
पीर=पीड़ा, वेदना । १२-१२
पीरे पीरे=पीले पीले; पी (प्रिय) रे पी (प्रिय) रे । २०-१५
पील=(फील) हाथी । १०-३५
पुंज=समूह । १०-२६
पुरंदर=इंद्र । ५-६
पुर=नगर । ६-४१
पुरहूत=इंद्र । १२-२७
पुरैनि=(पुरइन) पद्मिनी-पत्र । ६-६
पुष्कर=दिग्गज, हाथी । १६-१७
पुष्करपाउ=कमलवत् चरणों वाले । १६-१७
पूजहिगी=पूजेगी, पूजा करेगी । २१-२७
पूतरी=आँख की पुतली; प्रकाशदायक, प्रिय । २-३४
पूनो=पूर्णिमा । ६-१५
पूर=पूर्ण, पूरा । २१-७५ अ
पूरिकै=पूर्ण होकर, भरकर । ४-३०
पेखि=देखकर । १७-६
पेच=उलझन । १७-६
पेस=(पेश) आगे । १५-५२
पैंड पैंड=कदम-कदम (पर) । १६-४०
पै=पर, परंतु । १-१४
पै=पास । २३-५३
पैजनियाँ=बजनेवाले खोखले कड़े । २५-२१
पैने=तीखे, तीक्ष्ण । २१-५५
पोटि पोटि=फुसला फुसलाकर । १२-४३
पौढ़ी=सोई । २३-६३
पौरिकै=तैरकर । १६-१५
प्यादे=हरकारा । ६-३४
प्यो=प्रिय । १६-४७
प्यौ=प्रिय । २१-८६
प्रगट=चालू, चलती । १-१४
प्रजंक=(पर्यंक) पलंग । ५-४
प्रतच्छ=प्रत्यक्ष । ८-२५
प्रतिद्वंदी=(प्रतिद्वंद्वी) विपक्षी, शत्रु । १५-५
प्रतीति=ज्ञान । २-१५
प्रतीति=विश्वास । १३-२१
प्रनतारतै=प्रणत और आर्त ही । २१-६६
प्रफुल्लित=फूले; आनंदित । २-२४
प्रबाल=किसलय । ४-४२
प्रबास=परदेश में बसना । ४-२१
प्रबिसी=पैठी । १६-७
प्रबीन=निपुण, पंडित । १-८
प्रबीन=वीणा बजाने में निपुण । ४-१६
प्रभा=दीप्ति । २-४८
प्रभाकर=सूर्य । ४-५१
प्रभु ज्यौं=स्वामी की भाँति (प्रभु-संमित) । १-११
प्रमान=प्रमाण, प्रकार । २-२
प्रलंब=प्रलंबासुर, जिसे बलराम ने मारा था । २१-२५

बघंबरी = बाघ की खाल वाला; पीले रंग का पीतांबर । १३-१४
बघनहा=बाघ के नख से बना एक आभूषण । १०-३६
बजनी = नुपूर । १४-४३
बजाइ = डंके की चोट पर, खुल्लम-खुल्ला । ६-३६
बटसाखैं = बरगद की डालैं । १३-१६
बटा = गेंद । १८-३४
बटे = (वटक) गोले । ८-८६
बड़रे = बड़े । १६-४१
बढ़ती=वृद्धि, बढ़ाव । १८-२१
बढ़ाउ=बढ़ाव, विस्तार । ४-४३
बत=बत्तक । २१-१३ अ
बतरानि=वार्ता, बात । ७-१४
बतसासुर=वत्सासुर । ५-६
बदन=मुँह । ४-५१
बदर=बेर (फल) । १६-३८
बदाबदी=लागडाट । १३-२०
बन=जंगल । २१-२६ अ
बनक=सजधज, बनाव, छटा । ४-१६, २०-१०
बनकवारे=सजावटवाले । १५-३४
बनमाल=घुटने या पैर तक लंबी माला । २-२५
बनिता=स्त्री । ४-१७
बनीन=सुशोभित । २५-२१
बन्यो=बना हुआ, ठीक, बढ़िया । १-७
बपु=देह । ६-३८
बपुख=(वपुष) देह । ६-६७
बफारो=भाप । १८-१५
बमैं=उगलते हैं । १३-४८
बयारि=(वायु) हवा । ५-१४
बरकि=बलक (उठे), उमंगित हो (उठे) । १६-८
बरजनवारी=मना करनेवाली । ६-३८
बरजो=मना करो । १६-५५
बरजोर=बलपूर्वक, जबरदस्ती । ८-२३
बरजोरी=बलपूर्वक, जबरदस्ती । १६-५६
बरजोरैं=बलपूर्वक, जबरदस्ती । ५-१४
बर तरिबर=बरगद का वृक्ष । १६-३२
बरदा= बैल । १३-१६
बरदायक=वर देनेवाले । १३-१६
बरदे=बलीवर्द, बैल । ५-६
बरन=(वर्ण) अक्षर । ६-७० अ
बरनी=वर्णवाली । ६-३५
बरन्यो = वर्णन किया । २-६४
बरबंधु=ज्येष्ठ भ्राता । १-१
बर बाहन=सुंदर बाहें; उत्तम सवारी । २०-५
बरबीर=कवि वीरबल । १-१०
बरमा=लकड़ी छेदने का औजार । २५-३५
बरसाने=बरसाना गाँव । १३-५२
बरसो=बरसौं, कई वर्ष । १६-६२
बरहि=बल से, बलपूर्वक । ६-३८
बरही=(वर्ही) मयूर, मोर । १६-४७
बराइ=बराकर, चुनकर । १२-१०
बराए=बचाकर । २३-४१
बराह=सूअर । ४-३७
बरिबंड = बली । ४-३४
बरी=(बली) जली हुई । १-२३

बरुनी=बरौनी, पलक के किनारों के बाल । १९-४१
बरैती= ज्यादती । २२-८
बरो=बड़ा (खाया जानेवाला)। २१-१५
बरोबरी=बराबरी, समानता । १०-१०
बरोरिकै=मरोड़कर । १६-२५
बर्ननीय=वर्णनीय, उपमेय । १६-२८
बर्यारो=बरियारा, बली । १५-१८
बलकत=उमंगित होने पर । ११-३५
बलकि=आवेश मैं, जोश मैं भरकर । ४-३४
बलभी=अटारी, छत । ११-१०
बलया=चूड़ियाँ । ११-१२
बलाइ=(बला) दुख, पीड़ा । १५-३१
बलाक=बलाका, बगुला । २-६६
बलाहक=मेघ, बादल । ७-१८
बलि=बलिहारी । ४-२८
बलित = आच्छादित, घिरी । ६-२०
बलित = युक्त । १२-६
बवैं = बोते हैं । ६-४६
बस = बसता है । २१-२६
बस = वश; [बन = जंगल] । २१-३८
बसन = वस्त्र (द्रौपदी का चीर) । १५-५२
बसन = वस्त्र । २०-१६
बसाइ = वश, जोर । ६-३६
बसानी = सुगंधित; बसी हुई । २०-५
बसीठी = दूतत्व, दौत्य । २०-१७
बसुमती = पृथ्वी । ७-६
बसेर = बसेरा, यहाँ पहनावा । १५-५४
बहम = संदेह । ११-३
बहराइकै = बहलाकर, भुलावा देकर । ५-६
बहु = अत्यधिक; बहुतों (को) । २०-१०
बहुरि = पुनः, फिर । ६-४८
बाँ = बार । २१-२३
बाँकी = टेढ़ी । १५-१७
बाँचि (आई) = बच (आई) । ६-५६
बाँचि (लेहु) = बाँच (पढ़) लो । ६-५६
बाँध = बाँधने का महीन डोरा । १८-२३
बा = (वा) । २१-२३-अ
बाइ = (वायु) हवा । ६-२८
बागवान = माली; वनमाली (श्रीकृष्ण) । २०-१५
बाचतो = बचता । २३-५
बाज = एक शिकारी पक्षी; बाज आए, परेशान हो गए । २०-१३
बाजी = बजी,ध्वनित हुई । २-१८
बाजी = घोड़ा । २-१८,२३-६२
बाड़व = बाड़वाग्नि । ६-३८
बाड़ौ = बाड़वानल, समुद्र की आग । ११-२५
बाढ़ि = वृद्धि, बढ़ती । ३-४५
बात मंद = बुरी बात; धीमी हवा । २०-१५
बातुल = उन्मत्त । २१-३७
बादि = व्यर्थ । ५-४
बादी = मुद्दई । ३-५५
बाध = बाधा, रुकावट । २-२२
बान = बानि, प्रकार । २१-७२

बानक = वेश । १०-३०
बानन = बाणों (कटाक्षों) । २२-१३
बानि = टेव, आदत । ५-१५
बानि-बानि = वर्ण वर्ण के, तरह तरह के । १६-५३
बानी = वाणी, रचना, कविता । १-१६
बानी = बनिया, वणिक । २-१२
बानी = (वाणी) सरस्वती; बनिया । ६-६६
बानी = बोली, बचन । १७ ३०
बानी = (वाणी) सरस्वती । १७-३०
बाने = वेश । १४-२६
बाफते = कलाबत्तू और रेशमी बूटियाँ वाले रेशमी कपड़े (की) । २२-६
बाम = (वाम) स्त्री । ३-१६
बार = (द्वार) दरवाजा । २-१६
बार = देर । ५-२४
बार = (बाल) केश । ६-६८
बार = दिन । २१-२३ अ
बारत = जलाता है । ६-३८
बारन = हाथी । १३-१६
बारन बद = बद (बुराई) के वारण के लिए । २१-२३ अ
बारनबदन = गजमुख, गणेश । २१-२३ अ ।
बार नव = नव बार । २१-२३ अ
बारनै = हाथी ही । २३-६२
बारबनिता = वेश्या । २०-५
बारि = पानी, जल । १३-७
बारिजात = बारिज, कमल । १६-४१
बारिद = बादल । १४-५
बारि (देति) = जला (देती है) । ५-१४
बारिबाहक = बादल । ४-१७
बारी = वाटिका; नायिका । १३-४४
बारी = छोटी । २०-१६
बारी = वाटिका । २१-३५
बारुनी = (वारुणी) मदिरा । १६-४१
बाल = बाला, नायिका । २१-७७
बालबिधु = द्वितीया का चंद्रमा । १०-३६
बालम = (वल्लभ) प्रिय । २५-१२
बाल-सुधाकर = द्वितीया का चंद्रमा; बाल + सु + धाकर = नीच ब्राह्मण । २३-२८
बालिन्ह = बालों (को) । ६-६७
बावनो = (वामन) बौना, वामनावतार । ४-३८
बास = वस्त्र । ४-३२
बास = वासस्थान । ४-१७
बास = गंध, महक । ४-१७
बास = गंध; डेरा । २०-५
बास = निवास; सुगंध; वस्त्र (म्यान का कपड़ा) । २०-६
बाससी = वस्त्र । १३-७
बासुदेव = कवि विशेष । १-८
बाहन = सवारी (सिंह) । ६-३८
बिंब = बिंबा, कुँदरू । ३-५४
बिंबाधर = बिंबा (पके कुँदरू) के समान लाल ओठ । ७-२१
बिकयो = बेचा । २१-८२
बिगोई = नष्ट कर दी, खो दी । १६-४१

बिचच्छन = (विचक्षण) निपुण, चतुर। ४-३४
बिछल्यो = फिसल गया। १६-३१
बिजन = (व्यजन) पंखा। ६-३१
बिजै-दसैं = विजयदशमी। १-४
बिज्जु = (विद्युत्) बिजली। ३-१६
बित = (वित्त) धन। ६-५७
बितान = चँदोवा। २-५७
बिथकी = स्थकित, रुकी हुई। २-४८
बिथा = व्यथा को। २-२५
बिथुरी = बिखरी हुई। १२-२०
बिथोरैं = विस्तार करने पर, बढ़ाने पर। ११-३६
बिद = (विद्) पंडित। २१-३१
बिदग्ध = विद्वान्, पंडित। १६-२
बिदारिबे की = विदिर्ण करने की, नष्ट करने की। ५-१५
बिद्रुम = प्रबाल, मूँगा। ६-२
बिधना = ब्रह्मा। ११-४
बिधातैं = ब्रह्मा ने। १-१२
बिधान = प्रकार। २-१
बिधि = प्रकार। ३-२६
बिधि = (विधि) ब्रह्मा। ६-६७.
बिधि-बासर = ब्रह्मा का दिन जो एक कल्प का होता है। १६-६२
बिधुंतुद = चंद्रमा को सतानेवाला राहु जिसका रंग काला है। १८-१६
बिधो = बिद्ध हुआ। १६-३१
बिनै = (विनय) विनती, प्रार्थना। २-६१
बिपच्छ = शत्रु। ४-३५
बिप्र पा परत = विप्रपापरत, ब्राह्मणों के लिए पाप करने मैं लीन; बिप्र पा परत, ब्राह्मणों के पैर पड़ते हैं। ३-५२
बिफली = असफल। १६-४३
बिबिध = भिन्न भिन्न प्रकार की, अनेक तरह की। १-१७
बिभिचारी = (व्यभिचारी)। ५-२५ अ
बिभूति = भस्म, राख। १०-३६
बिभूति = संपत्ति। २५-१५
बिमोहित = मूर्छित। ११-१४
बिय = दो, दोनों। ३-४२
बियो = दूसरा। २१-६५
बिरमे = रमता है, ठहरता है। २१-६०
बिलगाइ = पृथक् प्रतीत होता है। ३-३०
बिलपनि = विलाप, क्रंदन। १०-३६
बिललाति = व्याकुल होती है। ५-२५
बिलोकियत = दिखलाई पड़ती है, देखी जाती है। ३-४७
बिष = जल; जहर। ७-१८
बिषतरु = विषवृक्ष। २३-५०
बिषमहय = ताक संख्या के घोड़े जिसके रथ मैं हों, सूर्य। २३-१५
बिषरीति = विष का रंगढंग। १३-११
बिषैं = (विषय) विपय मैं। ४-२०
बिष्नुधाम = विष्णु का घर, आकाश। २३-१५
बिसदजस = निर्मल यश वाला। १२-१३
बिसन = व्यसन, बुरी लत। २३-८६
बिसनी-पत्र = कमलिनी का पत्ता। २-६६

बिसराम = विमुखता; विश्राम, शांति। ३-५२
बिसवासी = विश्वासघाती। १६-५५
बिसाखा = विशाखा, राधिका की सखी। १२-४३
बिसासिनी = विश्वासघातिनी। १५-२५
बिसूरति = सोच करती रहती है। १५-१३
बिसूरि = स्मरण करके। ५-१८
बिसेषि कै = अत्यधिक। २१-१६
बिस्तर = फैलता है। १-१
बिस्वै = विष्णु ही। २-७
बिहंग = पक्षी। २-१५
बिहरै = फटे। ११-१४
बिहाइकै = छोड़कर। १२-२६
बिहान = प्रातःकाल (वाला)। २०-६
बिहारियै = विहारी (श्रीकृष्ण) ही। १७-४५
बिहारी = कवि बिहारी। १-१६
बिहाल = बेहाल, व्याकुल, बेचैन। ४-१६
बीचि = तरंग; त्रिबली। ८-३०
बीचि = लहर। २३-७२ अ
बीजहास = विद्युद्हास; हासरूपी बीज (अन्न)। १०-३२
बीजुरी = (विद्युत्) बिजली। ३-४७
बीत्यो = व्यतीत हुआ। ४-३२
बीथिन = गलियाँ। १२-४३
बीनि = बीनकर, चुनकर। २१-८७
बीस बिसे = अधिक संभवतः। ७-६
बीसहूँ बीस = बीसो विस्वा, पूर्णरूप से। १६-३२
बुध=बुध ग्रह, जिसका रंग हरा माना गया है। १८-१६
बुधिवंतनि = बुद्धिमानों को। १-१०
बूढ़नि=वीरबहूटी; बूढ़ों में। ४-१७
बृंद=समूह, (अपनी) मंडली (में)। ५-१३
बृज-अवतंसु=ब्रज के आभूषण, श्रीकृष्ण। २१-७२
बृजइंदु=ब्रजचंद्र, श्रीकृष्ण। १३-२०
बृजबास=ब्रज प्रदेश में निवास। १-१६
बृत्थ=वृथा। २१-६१
बृष=बैल। २१-३२
बृषभ=बैल; मूर्ख। २-४०
बृषो=बैल ही। २३-६७
बेगारी=बेगार, पारिश्रमिक बिना दिए काम लेना। २२-१५
बेचावत=बिकवाता है। १२-१२
बेदरदे=(बेदर्द) निर्दय। ५-६
बेन=वेणु। २१-६२
बेनी=त्रिवेणी; चोटी। ८-५३
बेनी=त्रिवेणी तीर्थ। ८-६२
बेनी=चोटी। ८-६२
बेनीमाधव=प्रयाग। २-६
बेनु=बाँस। १४-११
बेर=(बेला) समय। १५-५४
बेर=बार। २४-११ अ
बेस=उत्कृष्ट। ३-४७
बेसरि=छोटी नथ। १६-६०
बेही=बिना ही। २०-१६
बै=बोकर, उत्पन्न कर। २२-८
बैकल=विकल, पागल, उन्मत्त। १३-२३

बैजयंती=पताका, झंडा। १३-७
बैन=वचन, शब्द। २-४३
बैबर्न=(वैवर्ण्य) विवर्ण अथवा मलिन होना। ४-१३
बैयर=स्त्री (सखी)। २३-६
बैरिनि=शत्रुणी। २-३६
बैसंदर=(वैश्वानर) अग्नि। २३-५
बोधब्य=जाननेवाला, श्रोता। २-५०
बोर्‌यो=डुबोया। ४-१८
बौर=मौर, आम की मंजरी। ४-३७
बौरई=पागलपन। ११-४
बौरई=(बौर ही) आम की मंजरी ही। २२-१७
बौरी=हे पगली। २-६०
बौरौ=बौरयुक्त, मंजरीयुक्त; पागल। २-४५
ब्यक्त=प्रकट, जाहिर। १६-४६
ब्यक्ति=अभिव्यक्ति। ६-१५
ब्याज=मिस, बहाना। १२-२४
ब्याध=बहेलिया। २१-३२
ब्याल=हाथी। २-१४
ब्याल=हाथी (कुवलयापीड़)। ४-३६
ब्यालबंस=सर्पवंश। १७-४३
ब्यालबिछावनो=(बहुव्रीहि समास) सर्प (शेष) जिसका बिस्तर है, विष्णु। ३-२२
ब्यालसुंड=हाथी की सूँड़। ६-३६
ब्यालिनी=सर्पिणी। ३-४७
ब्यौंत=उपाय, घात। ७-१२
ब्योर=ब्यौरा। २५-४४
ब्रह्म=कवि वीरबल। १-१६
भँवती=भ्रमण करती। २२-१२
भईँ=हुईँ। १५-४६
भईँ भईँ=चक्करदार। १५-४६
भगत नहीँ=भगत नहीँ, अभक्त; भगतन हीँ, भक्तों से ही। ३-५२
भजत=भागते हैँ; भजन करते हैँ। ३-५२
भजतु=भाग जाते (हैँ)। ११-१६
भजावत=भाँजता है, घुमाता है। ११-१६
भजि=भागकर। ११-३६
भट=योद्धा। ४-३५
भटभेरो=मुठभेड़। १० ४०
भटाक्षन=नेत्र रूपी योद्धा। १०-४०
भतियाँ=(भाँति) रीति, सजावट। ५-२४
भन=कहो, बताओ। २१-२५
भभरि=घबराकर। ८-३६
भरभरी=आकुलता। ४-३६
भरु=भार। २३-८२
भल्लर=भद्दा। २३-१७
भव=संसार; शिव; जीव; जगत्। २०-७
भव=संसार। २३-१०
भवानी=दुर्गा। ६-३८
भाँग=(भंग) विजया। १३-१६
भाँतउ-सार=रंगढंग, रीतभाँत। २१-८१
भाँतिन=रीतियाँ, शैलियाँ से। २१-८२
भाँवरी=फेरी, चक्कर काटना। २२-८
भाइ=प्रकार। २-५१
भाइ=हे भाई, भई। २३-१७
भाई=अर्थात् उपमान। १२-४२

भाकसी = भट्ठी । १३-१५
भाजन = पात्र, बरतन । २-४१
भान = (भानु) सूर्य । ६-३७
भानुमानु = सूर्य का गर्व । २१-६०
भामिनी = स्त्री, नायिका । ३-४७
भाय = (भाव) प्रकार । १०-३८
भारतियौं = भारती भी, सरस्वती भी । १-१८
भारती-धाम = सरस्वती के घर अर्थात् विद्वान्, पंडित । ६-३
भारथ = भरत पक्षी; लड़ाई । २०-१३
भारैगी = सहेगी । १६-५६
भाल = (भल्ल) बाण का फल । ३-४७
भाल = ललाट । ३-४७
भावती = प्रिया, नायिका । १०-२२
भावते = भानेवाले, प्रिय । ८-७८
भावी = होनहार । १३-१२
भाषा=हिंदी । २२-१
भिरै=भिड़ता है, टकराता है । ५-७
भीखमु=भीषण, प्रचंड । २१-८१
भुअ=(भू) भूमि । १६-४६
भुआर = (भुआल, भूपाल) राजा । २१-२०
भुआल=(भूपाल) राजा । ८-५१
भुजंगी=भुजंगा पक्षी; नागिन । २०-१३
भुजा=उपमान गदा । १२-४२
भुक्ति=सुख-भोग । २५-३८
भूत=पंचभूत, पंचतत्त्व; प्रेत । ५-७
भूति=भस्म । २५-१५
भूमिधर=पर्वत । ११-३५
भूरि=प्रचुर, अत्यंत । १०-३६
भूषन=कवि भूषण । १-१०
भूषन=(भूषण) अलंकार । १-१३
भूषन=आभूषण, गहना । १-१३
भूषन-मूल=अलंकार के मूल तत्त्व । १-१८
भृंग=भौंरा, भ्रमर । १६-४५
भृंगनी=बिलनी, पतली कमर वाला एक कीड़ा । १२-१८
भृकुटी=भौंह । ३-४७
भृत्य=सेवक । १४-२६
भेद=रहस्य । १-११
भेद=बैर, विरोध । २२-१५
भेय=(भेद) प्रकार (अलंकार का) । ८-३१
भेवैया=भिगोनेवाला । २५-३८
भैकारिये=भयावनी । २३-७०
भौंडो=भद्दा, बुरा । २३-८७
भोग=भोजन । २१-२५
भोर=सबेरे । ६-२०
भोराई=भुलावे में डाला । १२-४३
भोराई=भोलापन । १७-६
भोरी=भोली । २५-१६
भौन=(भवन) घर । २-५७
भ्रुअ=भौंह । २१-६७
मंगन = माँगनेवाला, याचक । ११-१८
मंजीर = नूपुर । २३-४४
मंजुघोषा = एक मृदुभाषिणी अप्सरा । ८-३७
मंडन = कवि-नाम । १-१६
मंडैं = मड़राते हैं । ४-१७
मकरध्वज = मदन, कामदेव । ४-२४
मकराकृत=मगर या मछली के आकार के । १०-१६

मखतूल = काला रेशम । ६-२
मखाति = अमर्ष करती है, बुरा मानती है । २-२५
मग = (मार्ग) रास्ता । ४-२४
मगद्वार = (मग = मार्ग + द्वार = दरवाजा) फाटक । ३-१८
मगन = (मग्न) डूबना; लीन होना । २-२५
मगग्राम=मार्ग की स्त्रियाँ । २३-४१
मगरूरि = गर्विली । ११-३४
मजीठी = मजीठ के रंग का गहरा लाल । २०-१७
मझार = मध्य, बीच । २-३२
मड़े = मंडित, युक्त । ८-४३
मड़ो = मंडित, शोभित । १०-५
मतंग = हाथी । १०-३७
मतिकोष = बुद्धि के खजाने । १४-२
मतिबसि=बुद्धिवश्य । ३-४४
मतिराम=कवि-नाम, भूषण के भाई । १-१६
मत्तगमै=मतवाली चाल वाली । २१-३७
मथ्थनि=(मस्तक मुंडों को । ४-३५
मदंध=(मदांध) मत्त । ४-३४
मद=हाथी की कनपटी से निकलनेवाला द्रव । ९-३१
मवि=माय । २५-४०
मधु=वसंत । १५-३१
मधु=राक्षस विशेष । १५-५२
मधु-चंद्रिका=चैत्र की चाँदनी । २-५५
मधुप=भौंरा (उद्धव) । १५-१०
मधुमाखी=मधुमक्खी, शहद की मक्खी । १२-२५
मधुपाली=मधुपों-मधुमक्खियों की पंक्ति (समूह) । १७-२६
मधुमास=बसंत । २१-५५
मधूकै=महुआ ही । ६-२
मनकामना=इच्छा, अभिलाषा ।२-२४
मनमथ=मन्मथ, कामदेव । १५-३१
मनमानी=स्वेच्छाचारिणी; शक्तिमती मान ली गई । २०-५
मनमोहनै=मन को मोह लेनेवाले को; श्रीकृष्ण को । ३-३६
मनरोचक=मन को रुचनेवाली ।१-१२
मनरौन =(मनरमण) प्रियतम ।६-२६
मनरौनि=मन को रमानेवाली । १८-३०
मनहर्न=मनहरण । २१-४४
मनिवारे=मणिवाले, मणियुक्त । १०-३६
मनुजाद=मनुष्य को खानेवाला राक्षस (हिरण्यकशिपु) । १८-३८
मनेस=मन के ईश, कामदेव । ५-४
मनोज=काम । १०-२२
ममोलन=खंजनों । ८-७८
मयंक=(मृगांक) चंद्रमा । ३-१५
मयंकमुखी=चंद्रमुखी । ५-४
मयूख=(मधूक) शहद । ८-७८
मयोलाज=लाजमय, सलज्ज । २१-८२
मरकत = पन्ना । २-६६
मरकत = पन्ना (यहाँ नीलम) । ८-१८।
मरजाद = (मर्यादा) प्रतिष्ठा । ६-४१
मरीचि = किरण । १४-३४
मरु = मरुस्थल, रेगिस्तान । २-१६
मरुअ = मरुवा । २१-७२
मरुधर = मरुभूमि, रेगिस्तान ।१०-३०
मरोरे = मरोड़ से । २१-५२

मर्कट=बंदर । १९-४६
मर्म=रहस्य, तत्त्व । २-४
मलिंद=(मिलिंद) भौंरा । ४-५१
मलै=(मलय) मलयवायु, दक्षिणपवन । १३-११
मलैज=(मलयज) चंदन । २१-८१
मसक=मच्छर; मसलन । १६-२३
महरि = गोपी । २१-५२
महाई = अतिशय, अधिक । २५-२
महाजन = धनी; पराक्रमी । २० ५
महातम=गहरा अंधकार; घना अंधकार; महात्म्य; विशेष तमोगुण । २०-७
महाराय = महाराज । ६-३५
महाबिष-हालाहल, समुद्र मंथन से निकला विष । ११-२५
महावरिही = महावर लगाई हुई थी । १२-१७
महिदेव = ब्राह्मण । १६-१४
महिपाल=राजा । ४-२०
महीरुह=वृक्ष, पेड़ । १५-३७
महीसुत=पृथ्वी का पुत्र मंगल, जिसका रंग लाल माना गया है । १८-१९
महुज्जल=(महत् + उज्ज्वल) अत्यंत श्वेत । २२-९
महै=मथ उठता है । २१-८४
माँजि=माँजकर, मलकर । ९-२५
माँझ=(मध्य) बीच । २-५८
माँह=मैं, बीच । ४-५२
माखियौ = मक्खी भी । ८-७५
माड़े = लगाने पर । १३-३९
माति = मत्त होकर । ५-२५
माते = मत्त, मतवाले । ४-२६
माथ = सिर । ११-१५
माद्री = पांडु की पत्नी । ४-२९, ८-३७
माधुर्जोज=माधुर्य और ओज । १९-३०
मान=परिमाण । २०-१५
मान=मानने का भाव । २०-१५
मान = रूठना । २१-५२
मानवी=नारी । ११-४
मानस=मन, हृदय । १०-७
मानिक=माणिक्य, लाल । ४-४२
मानु=मानो, समझो । २१-६०
मार=कामदेव । ४-५३
माह=माघ (मास) । ११-२२, २१-२५
माह = मैं । २१-३०
मित्त= हे मित्र । ४-१
मित्र=सूर्य; साथी । ८-६७
मिथ्याबादी=कर्कश बोली बोलनेवाला । १२-३१
मिलापी = संयोगी । ४-१७
मिलित=मिला हुआ, युक्त । ३-२९
मिस=बहाना । २-६३
मिसी=एक प्रकार का काला रंग (कालिमा) । ९-२५
मिसु=बहाना । १२-४१
मीच=(मृत्यु) मौत । १५-२९
मिचाइ=मुँदवाकर । १२-४३
मीचु=(मृत्यु) मरण; अति कष्टदायक । २-३४
मीड़ि=मलकर । ६-६७
मु=मुँह । २१-८७

मुकताहल=(मुक्ताफल) मोती। ८-५३
मुकुत=मुक्त, पृथक्, दूर। ६-२१
मुकुत=मुक्त, मोती। ६-२१, १६-६०
मुकुत=मुक्ति, मोक्ष। १६-६०
मुकुर=दर्पण। ३-४७
मुकुरि=मुकरकर, नटकर। ३-२३
मुकुले=कलीवत् हो गए। २-४८
मुक्त=मोती। ३-२८
मुक्ति=मोती; मोक्ष। १७-४४
मुखंबुज=(मुख + अंबुज) कमलमुख। ४-२४
मुख-हरि=हरि (श्रीकृष्ण) का मुख। २३-२५
मुखागर=(मुखाग्र) मुख से। ६-५६
मुग्ध=मूढ़। २-४६
मुग्धनि=मुग्धा नायिकाओं को। २-४६
मुद्यो जात=डूबा जाता है, अस्त हो रहा है। २-६७
मुनिबीसु=(मुनि + विष) मुनियों के शत्रु राक्षसों को। २१-८७
मुनीप=(मुनिपति) श्रेष्ठ ऋषि। ४-१७
मुर=राक्षस विशेष। १५-५२
मुरज=मृदंग। २१-५६
मुरा=(मुर) राक्षस। २१-८७
मुरार=कमलनाल के (टूटने पर निकलनेवाले) रेशे। ८-१८
मुरार-तार=कमलनाल के भीतर के वे बाल से भी पतले-रेशे जो उसे तोड़ने पर निकलते हैं। १८-२३
मुरारि=श्रीकृष्ण। २१-५०
मुरि मुरि=मुड़ मुड़कर (जगत्प्रपंच से)। २१-५०
मुरी=मुड़ गई (अपने को छिपाने के लिए)। १६-२१
मूठिएमैं=मुट्ठी मैं ही। २१-८६
मूरि=(मूल) जड़। ६-८
मृग=पशु। २३-५६
मृगपति-लंक=सिंह सी कमर। १६-४६
मृगबाल=हिरन का बच्चा (नेत्र)। १६-४६
मृगमद=कस्तूरी। १६-४८
मृगया=शिकार। १६-४८
मृगांकमुखि=चंद्रमुखी। १६-४६
मृगेंदु=(मृगेंद्र) सिंह। २०-७
मृडानी=पार्वती। २१-१३
मृत्तिका=मिट्टी। ४-४२
मृनार=(मृणाल) कमलनाल। १३-८
मृनाल=कमलनाल। ८-४२
मेचक=श्याम, काला। ८-२०
मेद=चरबी। १३-१३
मेरु=मेरु पर्वत। ११-२३
मैगलगौनि=(मैगल=मदगलित) मत्त हाथी की चाल। २१-५३
मैगल-गौनि=मस्त हाथी की सी चाल वाली (नायिका)। २१-५३
मैन=(मदन) कामदेव। २-५७
मैन=मदन; मैं न। ३-५२
मैनका=मेनका अप्सरा। २१-५३
मैनधुज=कामदेव की ध्वजा। १८-७
मैनमई=मदनमयी, काममयी; मोम के समान कोमल। ६-५३
मो=(मम) मेरा। २-३४
मोद=आमोद-प्रमोद। १०-३६

मो मतौं = मेरे मतानुसार । ६-२०
मो=मैं । ३-६
मो मन=मेरा मन । ३-६
मोर=मोरपंख । २१-८०
मोरपच्छ=मोरपंख । २-२१
मोष=मोक्ष । १४-६
मोहन = बेहोशी । १५-८
मोही=मुझसे । २-५६
मौने मौन=मौन से सिक्त, मौनयुक्त अर्थात् धीमे । ४-१६
य=यगण (।ऽऽ) । २१-३२ अ
यकंक = निश्चय । १-६
यति=योगी, संयमी । २१-७६
यन = जन, सेवक । २१-२६ अ
यल=जल, पानी । २१-३२ अ
यवा=जवा, जौ । २१-३२ अ
यवाल=जवाल, ज्वाला । २१-३२ अ
यस=(यश) कीर्ति । २१-२६ अ
या=इस । ४-१७
यातैं=इससे, इस कारण से । १-७
रँगजाल=रंग का समूह । ६-३५
रंचक=अल्प, थोड़ा । ४-६
र की='र' अक्षर की । २१-२६ अ
रत्त = (रक्त) लाल । ४-३५
रगरो = रगड़, संघर्ष । १४-११
रज=रजपूती, क्षत्रियत्व; पराग, धूलि-कण । २०-६
रजत-अचल-चाँदी का पर्वत, कैलास । २१-४५
रजधानी=(रज + धानी) रंजन का आधार; राजधानी । २०-५
रजनीचर=निशाचर । १३-११
रजवती=१—रजपूतीवाली, शौर्यवाली ।
२—रजस्वला ।
३—धूलिवाली । २१-१७
रति=प्रीति । १-१८
रतिभाउ=रतिभाव, प्रेम । ४-२०
रती=रति, प्रेम । २१-७५
रतीलिहु = लाल रंग की भी । १४-३४
रतौं धिहे = हे रतौंधीवाले । २-६५
रथंग = (रथांग) चक्र, चकवा । ६-६
रद = दंत, दाँत । २३-३३
रदछद = (रदच्छद) ओष्ठ । १७-६
रदछद=दंतक्षत । १७-६
रबि = सूर्य । १८-१६
रमक=झकोर । ८-१४
रमनी=हे सखी । २१-५५
रमा=लक्ष्मी । ११-३३
रमानाथ=लक्ष्मीपति, सीतापति, रामचंद्र । २१-६३
रमो=रमण करो । २१-७६
रटै=रटे । २१-५०
रलतु है=मिलता है । १४-२६
रलावई=मिलाया जाय । ११-३३
रलित=सहित; युक्त; अधिष्ठित; समन्वित । २०-७
रली=लीन, युक्त । ३-५, ६-२०
रव=शब्द, नाद । २१-२६ अ
रवनी=(रमणी) स्त्री ! २१-७१
रवी=रविवंश के । २१-८७
रसखानि=प्रसिद्ध हिंदी कवि । १-१०
रसना-उपकंठ=जीभ पर । १-६
रस-भीर=आनंदातिरेक । ४-१८

रसमोयो=रस मैं भीँगा हुआ। २५-५
रसराज=कवि-नाम। १-८
रसराज=शृंगार। २०-१२
रस-रास=आनंदक्रीड़ा। ४-१७
रसलीन=कविनाम। १-८
रससंत=शांतरस। ४-४१
रसांग=रस के अंग, स्थायी भाव आदि। १-१८
रसाने=रसयुक्त रहने पर, अनुकूल होने पर। ४-४२
रसाल=रसीले, आकर्षक। २-३०
रसाल=आम; रसिक। २-४५
रसे=भीने हुए। २१-४१
रहीम=कविविशेष। १-१०
राई लोन वारती=नजर बचाने के लिए राई नमक सिर पर से घुमाकर आग मैं डालने का टोटका करती है। १७-६
राउ=(राव) राजा। ६-३७
राकै=पूर्णिमा को (पूर्णचंद्र को)। ८-८४
राग=अनुराग। ३-४०
रागी=अनुरक्त। १३-३३
रागै=राग मैं, प्रेम मैं। २५-१५
राज=मकान बनानेवाला कारीगर। ७-२८
राज=राजा; मकान बनानेवाला कारीगर। १२-१४
राज=राजती है, सोहती है, होती है। २२-२
राजमनुष्य=राजकर्मचारी। १७-४३
राजी=प्रसन्न, अनुकूल। ५-१८
राजी=पंक्ति। १२-४२
राजी=शोभित हुई। २०-१२
राजु=राजती है, सोहती है, होती है। १२-३५
राजैं=शोभित। १०-२७
रात=(रक्त) लाल। २२-५
राते=लाल। २१-४१
राम=परशुराम। २५-२३
रामा=सीता; राधा। २१-५०
रामा=स्त्री, ताड़का। २१-८७
रारि=टंटा, झमेला (जगत्)। २१-५०
रावरो=आपका। ६-३७
रास=नृत्य। २१-७३
रास=क्रीड़ा, खेल। २१-८७
रासि=(राशि) ढेर। ४-४६
राहु=राह, मार्ग; राहु। २३-२२
राहुसंक=राहु से ग्रस्त होने की आशंका। ११-२६
रिझवारि=रिझानेवाली। १५-४२
रितुरीति=मौसम का व्यवहार। २०-१५
रिन=(ऋण) कर्ज। १२-३३
रिसवंत=क्रोधी। २५-३१
रिसाने=क्रुद्ध। ४-४२
रिसौ=(रोष) क्रोध भी। ४-१
रीझिहैं=प्रसन्न होंगे। १-८
रीति=रिक्त, खाली। १६-४
रीत्यो=घट गया, कम हो गया। ४-३२
रुंड=धड़, कबंध। ४-३५
रुख=ओर। २१-६८
रुचि=इच्छा, अभिलाष। ६-१४
रुचि=शोभा, छबि। ६-१४

रुचिर=मनोहर । १-१४
रुचिराई=मनोहरता, सुंदरता । ११-३०
रुद्र इग्यारह=अजादि रुद्र ग्यारह (महादेव) हैं । १-१
रुरै=पुकारे । २१-५०
रुसि=रुष्ट होकर । ५-२४
रूखी=चिकनाहट से रहित; विरक्त । १३-३०
रूठिए=रूठने से ही । २१-८३
रूढ़ि=निरुढ़ि लक्षणा । २-२२
रूप=चाँदी; समान । २०-५
रेखत=स्पर्श करने से । २१-७८
रेत=बालू । २१-७८
रेफ=अधम । २१-७८
रैल=समूह, झुंड । ८-६
रोचन=लोचन । १०-२८
रोचन=रुचनेवाले । १०-२८
रोचन=लोचन; रुचनेवाली । ११-२७
रोम उठै=रोमाँच होता है । ५-११
रोमराजी=रोओं की पंक्ति । २०-१२
रोरमार=चिल्लाकर । २१-५०
रोह=आरोह, चढ़ाव । १९-२०
रौनि=रमणीयता । १८-२१
रौरो='र' अक्षर (से युक्त नाम) । २१-५०
लंक=कटि, कमर । ११-८
लंक=लंका; कमर (चमत्कारार्थ) । १७-२४
लंबोदर=गणेश । ९-३१
लकुट=(लगुड) लाठी । ३-३९
लक्ष=लाख । ४-३५
लक्षन=लक्षणलक्षणा । २-२७
लक्षन=लक्ष्मण । ४-३४
लखाई=दिखाई पड़ता है । २-५२
लगालगी=पारस्परिक लगाव । १३-२१
लटि गो = हीन हो गया । १४-१५
लचि जाति=झुक जाती है । ११-८
लपट्टत = लिपटते हैं । ४-३५
लपनो=कथन, कहना । १५-१५
लपै=कहता है । ८-७३
लय=गति । २१-३२अ
लयवा=लेवा । २१-३२ अ
लरन=लड़नेवाले । ३-५४
लरबरी=टूटी फूटी । १२-४३
ललचौहैं=ललचाने को आए हुए । २-६३
ललिता=राधा की प्रिय सखी । १२-४३
ललौहैं=ललाई लाने में प्रवृत्त (रोष-युक्त) । ५-२०
लवन=लोन, नमक । २१-२३
लवा=एक पक्षी । २१-३२ अ
लवाय=(लव + आय) हे लव आओ । २१-३२ अ
लहते=ठीक बैठते । ६-६६ अ
लहि=पाकर, अनुभव कर । ४-१७
लहुलोक=निम्न श्रेणी के लोग । २३-१७ अ
लहैं=प्राप्त करते हैं । १-१०
लहै=शोभित होता है । २१-३१
लह्यो=पाया । २-५४
लाइकै=लगाकर । ५-६
लाखन=लाख की चूड़ियाँ; लाखों (संख्या) । २०-१६
लागि=लगकर । २२-५
लाजको=लाजक, लावा । ६-२१
लाल=प्रिय, नायक । २-५६

सँदेसऊ = संदेश भी । ५-२४
संदेहिल = संदेहवाला । २३-१८
संधिवत = भावसंधिवत् । ५-२
संध्या सुमन = संध्या का फूलना; संध्या-राग । ३-५४
संनिधि = सांनिध्य, निकट । १४-४३
संपा = (शंपा) बिजली । ४-१७
संभु = शिव (स्तन के उपमान) । १०-२२
संसकृत = संस्कृत भाषा । १-१४
संसै = (संशय) । २१-५४
सकंट = कंटकयुक्त । २१-२५
सकति = शक्ति । २-४२
सकल = समस्त; [नकल = स्वाँग (नाटक)] । २१-३८
सकारै = 'स' अक्षर । २१-३८
सकुच = संकोच । ३-३४
सकुरत = सिकुड़ते हुए । ४-३६
सकस = (सरकश) कठिन । ४-३४
सक्ति = (शक्ति) प्रतिभा । १-१२
सखन = मित्रों को; [नखन = नाखूनों को] । २१-३८
सगलानि = ग्लानियुक्त । ५-२५
सगुनौतियो = शकुन का विचार । १६-१४
सचान = बाज पक्षी । १३-४६
सचि = संचित करके, युक्त करके । ११-८
सचिव = मंत्री, वजीर । १०-३५
सची = (शची) इंद्राणी । ११-१०
सचेत = चेतनायुक्त । २-५
सचै कै = (संचय) एकत्र कर; अत्यधिक अनुभव करके । २-२५
सज = सजधज । २१-२६ अ
सजैं = सजते हैं, छजते हैं । २-३०
सज्जा = (शय्या) चारपाई । २-६५
सज्यो = सजाया । १-७
सत = सज्जन, साधु । ३-८
सतकथा = उत्तम कथा, भली बात । १-११
सतजन = (सत् जन) अच्छे जन, वीर पुरुष । १६-२
सतावन = सतानेवाला, दुख देनेवाला । २१-३१
सति = (सत्) सत्य । २१-८९
सतिभाम = (सत्यभामा) श्रीकृष्ण की एक पटरानी । २३-८
सति भामती = सत्यभामा । २१-७२
सदन = घर, धाम । २३-५२
सदेह = सशरीर, शरीरधारी । १०-१६
सधरम = धर्म के सहित; [नधरम = अधर्म] । २१-३८
सनि = सनकर, मिलकर । ७-२८
सनी = शनिग्रह । १८-१६
सपूत = (सुपुत्र) अच्छा लड़का । २१-१०
सप्तार्चिभालधर = (सप्त=सात + अर्चि= लपट अर्थात् अग्नि + भाल=ललाट + धर=धारण करनेवाला) गणेश का विशेषण । १-१
सफरि = (शफरी) मछली । ६-२०
सफरे = करने पर । २१-७८
सब = संपूर्ण; [नब = (नव) नवता है, झुकता है] । २१-३८
सबल = शबल (चित्र विचित्र) । ४-४८
सबलवत = (शबलवत्) । ५-२

सविराग=उदासीनतासहित । ५-२५
सब्द अलंकृत=अनुप्रासादि शब्दालंकार । १-१८
सभाग=बढ़िया, उत्तम । २१-१६
सभेरे=भिड़ी हुई, सटी हुई, समीप । १८-७
समता=बराबरी । २-३३
समतूल=समान । २-४७
समत्थहूँ=समर्थ होते हुए भी । ५-१८
समथ=समर्थ । १६-४६
समर=युद्ध । ६-३५
समर=(स्मर) कामदेव । ६-३५
समरथ=समर्थ; सम+रथ, रथों से युक्त । २०-५
समर्थ=उपयुक्त, सबल । २-१३
समसरी=समता, समानता । २०-१०
समान=सामान्य । ३-२६
समिध=(समिधा) लकड़ी । १०-३६
समीरकुमार=पवनकुमार, हनूमान् । १०-२१
समुदाउ=समुदाय, समूह । १६-२४
समैं=समय में । ४-१७
समोयो=सना हुआ । २५-५
समौरध=(सम्+ऊर्द्ध)=ऊपर, स्वर्ग । २१-७८
सयन बर की न जा=पति की शय्या पर मत जा । २१-२६ अ
सयान=चतुराई । १४-१३
सयानी=सज्ञानता, चतुराई । ८-३७
सयानै=चतुरता को । २-२५
सर=तालाब; नाभि । ८-३०
सर=बाण । १३-१५
सर=सरकंडा । १८-२३
सर=तालाब । २१-१३ अ
सर=चिता । २५-२२
सरकि=चलाकर । १६-८
सरदार=अगुआ, मुखिया । २१-१३ अ
सरदे=शरद् ऋतु । ५-६
सरबंग=सर्वांग । ६-३५
सरब=सर्व, सब । २१-८०
सरबट्टत=सरबोटता है, एक साथ छिन्न-भिन्न करता है । ४-३५
सरसजन=१—सस=(शश) खरगोश ।
२—रज=रजपूती ।
३—सन=(सन) ।
४—जस=(यश) कीर्ति ।
५—नर=मनुष्य ।
६—सरसजन=रसिकजन, कलाविद् । २१-२०
सरबरी=(शर्वरी) रात । १६-५६
सरबरी=कहासुनी । १६-५६
सरबरीति=(सर्वरीति) सब ढंग । १६-५६
सरव (री)=हटो (री) । १६-५६
सरसाइ=बढ़ता है । ४-२५
सरसिज=कमल । ८-३८
सरसी=तलैया, छोटा तालाब । ८-५८
सर सी=बाण के समान । १६-५७
सरसी=रसमयी (सुखद) । १६-५७
सरसी=सरोवरी । १६-५७
सरसीरुह=कमल । १६-५७
सरसुति=सरस्वती । २-१२
सरसे=बढ़ने से । १३-२१

सरारी = (शराली) बाण की पंक्ति । १०-३७
सरि = सदृश, समान । १६-६०
सरि = समानता । २१-४१
सरि गो = प्रविष्ट हो गया (गए)। २१-५५
सरित = सरिता, नदी । १०-२६
सरिस = सदृश, समान । १२-४
सरी = सरई, पतला सरकंडा । १८-२३
सरे सी = चिता के समान दाहक चिंता । ८-२८
सरोवरी = तलैया । १३-३५
सर्ग = (स्वर्ग) वैकुंठ । ६-३७ अ
सर्पिष = घृत, घी । ८-८६
सर्बरीनाथ = (शर्वरीनाथ) चंद्रमा । २१-७०
सलच्छन = (शुभ) लक्षणों से युक्त; [न लछन = अलक्षण] । २१-३८
सलोनी = (सलावण्य) सुंदरी । ५-६
सलोने=लवणयुक्त; सुंदर । १०-२८
सवारहि = (सँवारहि) सँवारती है । २१-७८
ससधर = शशांक, चंद्रमा । २१-४३
ससा = खरगोश । १३-५१
ससि = चंद्रमा (मुँह) । ६-८
ससितूल = (शशितुल्य) चंद्रमा-सदृश । १८-१६
ससिरेख = (द्वितीया के) चंद्रमा सी रेखा (नखक्षत) । १३-४२
ससुरसाखि = (स + सुरसाखि) कल्पवृक्ष से युक्त । २३-८
सहबास = साथ बसना । १४-११
सहर्ष = प्रसन्नतापूर्वक; [न हर्ष = प्रसन्नतारहित] । २१-३८
सहल = साधारण । ११-३३
सहस = सहस्र, हजार । २०-५
सहस = सहास; (सहस्र) हजार । २०-१६
सहसपान = सहस्रपत्र, कमल । २५-१५
सहाब = (फारसी शहाब) एक प्रकार का गहरा लाल रंग । ३-५४
सहिंमति = साहस के साथ; [न हिंमति= साहस से रहित] । २१-३८
सहेट = संकेतस्थल । २५-२६
साँकरे=संकट । १३-२३
साँचु=सत्य; [नाँचु=नाच] । २१-३८
साँप=सर्प; केश । ६-८
साँवरे = श्रीकृष्ण । ११-४२
साँवरो चंद=श्रीकृष्णरूपी चंद्र । १३-१२
साँसरी = फूँकनी । १८-२३
साकत = शाक्त, शक्ति के उपासक । २१-२५
साखी=साक्षी, गवाह । १७-४८
साज = सजावट । २-१०
साज = साजसज्जा; [नाज = गर्व] । २१-३८
साजु=साजसज्जा । ३-३२
सातकुंभ = (शातकुंभ) सोना । १८-१८
साध = (श्रद्धा) प्रबल इच्छा । ११-२७
साधु=सज्जन, निपुण, योग्य १७ ।
सान=(शाण) । ८-२६
सामुहे = संमुख, सामने । १२-१७
सायर = (शायर) कवि । ८-६६

सारद = (शारदा) सरस्वती । ८-१६
सारस = कमल । ८-६४
सारस = क्रौंच पक्षी; कमल । २०-१३
सारसपात = कमल की पंखड़ी । २२-५
सारसी = सारस (कमल) वाली (द्युति)। ८-७८
सारसी = सारस पक्षी की मादा। १६-६६
सारि = साड़ी । ४-१६
सारो = सारिका, मैना; सब । २०-१३
साल = (शल्य) काँटा । ४-४२
साल = शाल-दुशाला । १४-१५
सावक = बच्चे । ८-५८
साहि=शाह, राजा । १०-३५
साहिब = स्वामी । ३-५४
सिँगारत=शृंगार करते समय । ११-८
सिंजित=नूपुर । २३-८२
सिंघीसुत=सिंह । १३-५१
सिंघीसुत=राहु । १३-५१
सिंधुर=हाथी । ८-६६
सिकारी=(शिकारी) शिकार करनेवाली। ५-१५
सिखवै=सिखाता है । १-११
सिखिपच्छ=(शिखीपच्छ) मोरपंख। ५-११
सिखी=(शिखी) शिखावाला, मोर। २-१३
सिख्यो=सीखा । १-१२
सिगरी=सब, सारी । १-६
सिता=चीनी, मिश्री । ८-८६
सितासित=उज्ज्वल और काले। १०-२७
सितौ=श्वेत भी (चाँदनीयुक्त भी)। २३-७४ अ
सिधारे=गए । ४-२४
सियरावै=शीतल करती है । ८-२७
सिरताज=शिरोमणि । १२-२५
सिरताज=श्रेष्ठ; [निरताज=मुकुट-रहित] । २१-३८
सिरफूल = सिर का एक आभूषण। १८-१६
सिरातु है = समाप्त होता है । ४-३६
सींक = घास का महीन डंठल, तिनका। १८-१३
सीँव=(सीमा) हद । १०-३५
सीँवा = (सीमा) । ६-४६
सी = श्री । २१-८१
सीअरी = सीतल । १६-५८
सीकर = जलकण । २१-१८
सीचनिहारु = सींचनेवाला । ३-६
सीठी = निःसार । २०-१७
सीढ़ी-सीढ़ी = क्रम क्रम से । २३-२३
सीत दिन = जाड़ा । १०-२६
सीतल = शीतल (सुखदायक बात); ठढ़ी (हवा) । २०-१५
सीर = शीतल । १५-२१
सीरी = शीतल, ठंढी । १६-५७
सीरे=शीतल । २१-५५
सीरो=शीतल । १३-११
सीलतन=शिष्टाचारमूर्ति, अत्यंत सुशील; [नीलतन=नीला शरीर]। २१-३८
सीस=(शीश) माथा । २१-८१
सुंडादंड=सूँड़ । ६-३१

सुंदर=कविनाम । १-१६
सुंदर=एक पर्वत । ११-१३
सुंदरी=स्त्री । १८-३०
सु=सो । २१-८७
सुअ=(सुत) पुत्र । १६-४६
सुक=(शुक) सुग्गा । ३-४८
सुकबीन सौं=श्रेष्ठ कवियों से । १-१२
सुकिया=स्वकीया (नायिका) । २३-८४
सुकृती=पुण्यात्मा । ४-३१
सुकेसी=(सुकेशी) सुंदर केशों वाली एक अप्सरा । ८-३७
सुक्र= शुक्र जिसका रंग श्वेत है । १८-१६
सुखदेव मिश्र=कविनाम । १-१६
सुखन लेखैं=सुखों को समझते हैं; सुख नहीं समझते । ३-५२
सुख-सिखदानि=सुख से सीख देने-वाली, सरलता से संकेत करनेवाली । १-११
सुघर=चतुर । २१-?६
सुघराई=कौशल ।८-२
सुघरी=सुष्ठु घड़ी; सुंदरी । २४-४
सुचित=स्थिर चित्त से । २-६०
सुचितई=निश्चिंतता । ६-१०
सुज=(सु+ज) सुजन्म । २१-२७ अ
सुजान=सज्ञान, चतुर । २-?
सुडार=सुंदर डाल । ८-७८
सुढार=सुडौल । ८-२०
सुतंत्र=स्वतंत्र, स्वच्छंद । १७-१२
सुतनुतनु=सुंदरी (नायिका) का शरीर । ११-४२
सुती=पुत्री । ?१-२७ अ
सुथलगति=सद्गति । ८-८०
सुदार=सुष्ठु लकड़ी । २५-३५
सुदेश=सुंदर; स्वदेश । २०-५
सुधा=अमृत; मीठी, आकर्षक । २-३४
सुधाई=सीधापन, सिधाई । १५-४६
सुधाधर=चंद्रमा । ४-४६
सुधाधार=अमृत की धारा । ६-३१
सुफल चारि=धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष । १३-१३
सुबरन=स्वर्ण; सुष्ठु वर्ण । ८-५३,१०-२७
सुब्बरन=स्वर्ण, सोना; श्रेष्ठ या बली सैनिकों । २०-५
सुबासता=सुगंधत्व । २-४८
सुबृत्त=अच्छे गोल गोल; सच्चरित्र । १०-२२
सुबेल=त्रिकूट पर्वत का एक शिखर । इसके तीन शिखर थे—सुबेला, लंका, निकुंभिला । ११-१३
सुबेस=(सुवेश) उत्कृष्ट, उत्तम । २-४६
सुभगता=सुंदरता । १६-१०
सुभाग=सौभाग्यशालिनी । ४-२३
सुभाय=स्वभाव से । १२-११
सुमति=अच्छी बुद्धि वाले । १-१४
सुमन=पुष्प; (सु+मन) । ६-५२, २०-१५
सुमनधनुधारी=पुष्पधन्वा, कामदेव । २१-५५
सुमनमई=सुमनमयी, जिसके अंग पुष्प के ही हों । ११-१६
सुमिरन=स्मरण । १-८
सुमेध=सुबुद्धिवाला । १५-३

सुरंग = (सु + रंग) सुंदर रंग, सुष्ठु वर्ण। २-४८
सुर = स्वर। २१-२७
सुरआपगा = देवनदी, गंगा। ८-७६
सुरकी = बाण के फल के आकार का तिलक। २५-२१
सुरतरु = कल्पवृक्ष। २१-७२
सुरपति = इंद्र। २१-७२
सुरपुर = देवलोक, स्वर्ग। २३-८
सुरबाजि = इंद्र का घोड़ा। १५-८
सुरराइ = (सुरराज) इंद्र। २२-१५
सुरलोक=देवलोक, स्वर्ग। ३-३२
सुरापी=सुरा पीनेवाला, मद्यप। ८-८५
सुरालय=स्वर्ग। १५-१८
सुरीति = अच्छी रीति से। २-१५
सुरुचि = (स्वरुचि) अपनी इच्छा से। १-५
सुषमा = अत्यंत शोभा। ३-४७
सुसम = (सुषमा)। २१-७०
सुहृद = मित्र। ३-५५
सूत = सारथी, रथ हाँकनेवाला। १-१२
सूधी = सीधी, सरल। ३-३६
सूधो = सीधा, सरल। २-४३
सूम = कंजूस। ६-३३
सूर = सूरदास। १-१६
सूर = (शूर) वीर, बली। २-३६
सूरता = शौर्य, वीरता। ६-३८
सूर-सुअन=बाल सूर्य। ३-५४
सूल = (शूल) पीड़ा। ४-३३
सूल = (शूल) काँटा। ४-४२
सूली = त्रिशूली, महादेव। १३-३२
सूली = दंड देनेवाला। १३-३२
सेजकली=शय्या मैं बिछी फूलौं की कली। १३-४७
सेत = (श्वेत) उज्ज्वल। ३-११
सेद = (स्वेद) पसीना। १२-२०
सेनापति = प्रसिद्ध कवि सेनापति। १-१६
सेव्य=सेवा के योग्य। १-१
सेर = (शेर) सिंह। २-३६
सेली = सूत, रेशम या बालौं से बनी माला जिसे योगी गले मैं पहनते हैं। २५-१५
सेवँर = (शाल्मली) सेमल। ३-२०
सेवैया = सेवक, सेवा करनेवाला। २५-३८
सेस=शेषनाग। ११-३५
सै = से। २१-८६
सैन=(शयन) सोना। २-६५
सैन = संकेत। २१-७६
सैरस = सरस, रसयुक्त। २१-६२
सैल = (शैल) पहाड़। ३-१७
सैल = सैर, यात्रा। ६-१८
सोइ = वह। २-२८
सोग = (शोक) दुख। १५-५१
सोती = (स्रोत) धारा। १०-४२
सोतो = (स्रोत) सोता। २५-३६
सोदर = सहोदर, सगा भाई। १-३
सोध = (शोध) खोज। ११-१२
सोधि लेहिँगे = सुधार लैंगे। १-७
सोनजुही = (सुवर्णयूथिका) पीली जूही। २२-१७
सोम = चंद्रमा (मुख)। ६-२०

सोसनि = सोसन, एक फूल जिसके दल नीचे होते हैं। ६ ३७
सोहाई = सुहावनी। ११-२०
सौँ=शपथ। २२-५
सौँहँ=संमुख। २१-८०
सौँहबादी = शपथ लेनेवाला। १७-२६
सौति = (सपत्नी) सौत। ४-२७.
सौतुख=प्रत्यक्ष। १५-१५
सौध = महल। २-३२, ११-१०
सौ हजार मन = सौ हजार (लक्ष) मन (मण), लक्ष्मण। २३-२१
सौहैँ=शपथैँ। ३-३७
सौहैँ=संमुख; शपथ। २०-१५
स्याम=(काले रंग वाले) कृष्ण। २-३
स्याम=काला दाग। २१-१६
स्यामा=राधिका। ३-३७
स्यामा=षोड़शवर्षीया नायिका। ५-२५
स्यारपन=स्यार की वृत्ति, डरपोकपन। ४-३६
स्यौँ=सहित। १-१८
स्रमसलिल=स्वेद, पसीना। २-५३
स्रवती=टपकती। २२-१२
स्रवहिँ=गिराती हैँ; गिराते हैँ। ५-१७
स्रापु=(शाप, श्राप)। ४-२१
स्रुति=(श्रुति) कान। २४-३
स्रुतिबसि=श्रुतिवश्य, वेद के वश मैँ रहनेवाली। ३-४४
स्रुवा=होम मैँ घी डालने का उपकरण १०-३६
स्रोतस्विनी=नदी। १६-४६
स्रोनित=(शोणित) रुधिर। ४-३४
स्रौन=(श्रवण) कान। ५-१८
स्वरादिक=स्वर आदिक, मात्रा आदि। २-१८
स्वाँग = वेश। १६-२६
स्वाऊँ = सुलाऊँ। २-५६
स्वेद-खेद = पसीने का कष्ट। २-५६
स्वैही = सोकर ही। १२-३८
हकीकति = असलियत, वास्तविक स्थिति। २१-४१
हजूर = सामने। ५-१५
हतन = मारनेवाले। २१-४५
हति = मारकर। १२-२१
हद = सीमा, पराकाष्ठा, अत्यधिकता। ११-२३
हनन = मारने, बध करने को। ६-१४
हनि = मारकर। १६-२४
हनु = हनन करनेवाले, दूर करनेवाले। २१-६०
हन्यते = मारा जाता है। १७-१६
हन्यात=हनन करता (मारता) है। १७-१६
हय=अश्व, घोड़ा। ६-४६
हर = शिव। २१-२७
हरकोदंड = शिव का धनुष। १८-३६
हरबर दान = शीघ्र दान; हर (हल) बरदान (बर्धा = बैल)। ६-४६
हरायल=पराजित उपमान (चंद्रमा)। १२-४२
हरि = इंद्र; सूर्य; घोड़ा (घुड़सवार की कृपाण होने से)। २०-६
हरि=हरण कर; दूर कर; संहार कर; मिटाकर। २०-७

हरियारी = हरी; हरि+यारी (श्रीकृष्ण से मैत्री)। ६-१६
हरिरूप = श्रीकृष्ण का सौंदर्य । २-२४
हरीरी = (हरीली) हरी । १८ ३४
हरुवो = हलका, अप्रतिष्ठित । ८-४६
हरैं हरैं = धीरे धीरे ।
हरे वै = हरेवा; वे हर लिए । २०-१३
हरे हरे = धीरे धीरे । २१-५२
हरौल = (हरावल) सेना का अगला भाग । १०-४०
हलकत = हिलते हैं । ११-३५
हलायुध=(हल + आयुध) हल का हथियार । २१-२५
हलाहल = महाविष । १०-३६
हलुके = हलके, कम प्रभाव वाले । २२-४
हलोरैं = समेटते हैं । ६-४६
हलोरै = हिलोरैं । ६-४६
हवेल = हुमेल, गले में पहनने का गहना । २५-२१
हाँति = दूर । ४-३१
हाँसो = हंस; हँसने की क्रिया । २०-१३
हाट = बाजार । २-१२
हामि भरौ = हामी भरो, स्वीकार करो । २५-४४
हायलताई = शिथिलता । १२-४२
हार = माला । २१-३६
हारु = हार, माला १६-७०
हारु = पराजय, हार । २१-८४
हाल = हालत, दशा । ४-२४, ६-५७
हाल = तुरंत । ४-२४
हास = हँसी । २१-८४

हितू = हितैषी, मित्र । ४-४२, २१-१५
हितै = हित ही, कल्याणकारी ही । १-७८
हितो=प्रेम ही । २१-७१
हिमंचल=हिमालय । २२-६
हिमकर=चंद्रमा । २३-६०
हिमिबाइ=(हिम + वायु) शीतल हवा, बर्फीली हवा । ३-१२
हिरन्यलता=(हिरण्यलता) सोने की लता । ८-२८
हिरानो=खो गया । १७-३६
हिलिमा=हरिमा, पीतिमा । २१-८२
ही = थी । ८-२८
ही=हृदय । १६-१०
हीअ=हृदय । २२-४७
हीन=रहित । २१ ८१
हीरन=हीरा रत्नों से । ११-३३
हीरा=उज्ज्वल रत्न; हियरा, हृदय । १०-२७
हीरो = हियरा, हृदय । ६-२६
हीरो=हियरा, हृदय; हीरा । १५-१५
हुतासन=(हुत + अशन) आग । ८-७६
हुती=थी । २१-२७
हुतो=था । २१-१५
हुत्यो=था । ४-५१
हुनि देती = आहुति देती, स्वाहा कर देती । ६-६७
हुल्लास = उल्लास, उमंग । १४-३
हुस्यारपन=(होशियारपन) चतुरता, चातुर्य । ४-३६
हेत=(हेतु) कारण । २३-८८

हेम=सोना । २१-६१
हेरन=देखने । २२-८
हैहै=हाय हाय । २१-४७
होतो=हो जाता । ४-२६
होम कै=आहुति देकर । ८-७३
हौं=मैं । २-६२
हौं=हूँ । २-६२
ह्याँ=यहाँ । १६-१२
ह्वै=होकर । २-६०
ह्वैबो=होना । ६-२० अ